मई, १९३१
वर्ष ६, खण्ड २]



Our London Office :
11, Aldwych W. C. 2
[संख्या १, पूर्ण संख्या १०३

वार्षिक चन्दा ६॥) }
छःमाही चन्दा ३॥) }

सम्पादक :—श्रीत्रिवेणीप्रसाद, बी० ए०

{ विदेश का चन्दा ८॥)
{ इस अङ्क का मूल्य ॥=)

Printed at The Fine Art Printing Cottage, Chandralok—Allahabad



क्रमाङ्क लेख लेखक पृष्ठ

१—नूरजहाँ (कविता) [श्री० रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०] १

२—सम्पादकीय विचार १

३—प्रोवेट [श्री० भोलालाल दास जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०] ६

४—वीर-नख-शिख (कविता) [राजकवि पं० अम्बिकाप्रसाद जी भट्ट, "अम्बिकेश"] ... १६

५—प्रेत-छाया-चित्रण अर्थात् मृत व्यक्तियों की फ़ोटोग्राफ़ी [डॉक्टर गोरखप्रसाद जी, डी० एस-सी०, प्रयाग-विश्वविद्यालय] ... १७

६—वेदना-गान (कविता) [श्री० दिवाकरप्रसाद जी विद्यार्थी] २२

७—एशिया में राष्ट्रीयता का विकास [श्री० शङ्कर-दयालु जी श्रीवास्तव, बी० ए०, विशारद] २३

८—ईश्वर-भक्ति [श्री० नयनसिंह जी नेगी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०] ३७

* * *

विविध-विषय

९—कान्यकुब्जों में एकता [श्री० रामदुलारे जी दीक्षित, बी० ए०, बी० एल०] ... ५३

१०—वृद्ध-विवाह-निषेध क़ानून की आवश्यकता [श्री० रामसकलसिंह जी, बी० ए०, बी० एल०] ५६

११—सनातन-धर्म और अछूत [श्री० श्यामसुन्दर लाल जी दीक्षित] ६२

१२—वात्स्यायन-कामसूत्र [श्री० विद्याधर जी, विद्यालङ्कार] ६५

१३—शक्ति-सञ्चय की आवश्यकता [श्री० हज़ारी-लाल जी जैन] ७३

१४—स्त्री-सामुद्रिक [श्री० गणेशदत्त जी शर्मा गौड़, "इन्द्र"] ७७

१५—कान्यकुब्जों में सहभोज्यता [श्री० शालि-ग्राम जी दुबे] ७८

१६—जागृति-गीत (कविता) [श्री० सोहनलाल जी द्विवेदी] ९३

१७—दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह ["पागल"] ९५

१८—घरेलू दवाइयाँ [कुमारी लक्ष्मीदेवी; श्रीमती चम्पावतीदेवी; श्रीमती शुभङ्करी देवी]... ९९

१९—संसार-चक्र [श्री० मुन्शी नवजादिक लाल जी श्रीवास्तव] १००

२०—गृह-विज्ञान [श्री० बी० एल० शर्मा, मेडि-कल ऑफ़िसर, चुनार] १२१

२१—सङ्गीत-सौरभ [सम्पादक तथा स्वरकार—नीलू बाबू; शब्दकार—'हरीदास'] ... १२५

२२—श्रीजगद्गुरु का फ़तवा [हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द विरूपाक्ष]... ... १२७

* * *

चित्र-सूची

तिरङ्गे

१—नूरजहाँ

२—यौवन का मोल

आर्ट-पेपर पर रङ्गीन

३—तीन आदर्श बहिनें

४—साक़ी

सादे

५-४०—कराची कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी ३६ चित्र

४१-४७—स्वर्गीय सरदार भगतसिंह तथा स्वर्गीय शिव-राम राजगुरु का वंश-परिचय—७ चित्र।

४८-८४—विगत सत्याग्रह आन्दोलन सम्बन्धी ३७ चित्र

८५-१३०—अन्यान्य प्रतिष्ठित स्त्री-पुरुषों के चित्र तथा भिन्न-भिन्न ग्रुप—४६ चित्र।

१३०-१३२—प्रेत-छाया-चित्र सम्बन्धी २ चित्र



नूरजहाँ

नूरजहाँ तेरा सिंहासन था कितना अभिमानी,
कितने हृदय-प्रदेशों की थी, एक साथ तू रानी !!

—कुमार

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी
प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं,
तब तक हमें इसका डर नहीं, कि हमारे विरोधियों
की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ८, खण्ड २,	मई, १९३१	संख्या १, पूर्ण संख्या १०३

नूरजहाँ

[प्रोफ़ेसर रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

कहता है भारत तेरे गौरव की एक कहानी।
वैभव भी बलिहार हुआ, पा तेरे मुख का पानी॥
नूरजहाँ, तेरा सिंहासन था कितना अभिमानी!
तेरी इच्छा ही बनती थी, जहाँगीर की रानी!!

फूलों के यौवन से सज्जित केश-राशि थी खोली।
तन से तो तू युवती थी, पर मन से कितनी भोली!!

एक स्वप्न था, कभी आगरे ने जो भी था देखा।
मुग़लों के भाग्यों में थी बस, एक सुनहली रेखा॥
उस रेखा से ही सज्जित थी, तेरी आकृति आई।
जिस पर छवि-विभूति सोई थी, यौवन में अलसाई॥
सिंहासन के मणियों ने थी शोभा वही निहारी।
जिसके लिए सलीम, शाहज़ादे से बना भिखारी॥

कान्तिमती थी, मानो शशि-किरणों पर तू सोती थी।
राजमहल की सरस-सीप में, तू जीवित-मोती थी॥
वह मोती का हार, चुप रहो ऐ सलीम, मत बोलो!
इस सौन्दर्य-सुधा में मत विषमयी वासना घोलो!!
वह मोती का हार, सजा है जिसमें छवि का पानी।
कैसे रक्षित होगा, यह दुनिया तो है दीवानी?

सच्ची छवि का मोल, वासना ही के उपहारों में।
और प्रेम का मोल, रत्न के हीरों के हारों में
करता है संसार, यही है उसकी रीति निराली।
अन्धकार से तारों का विक्रय करती निशि काली॥
यह स्थान है, जहाँ प्रेम का मूल्य लगाया जावे।
नूरजहाँ, तेरे मन का सौदा सुलझाया जावे॥

जहाँगीर क्या समझ सका था, तेरे मन की बातें!
तेरे साथ उसे भाती थीं, बस चाँदी की रातें!
सारी रात देखते थे तारे, तेरे दृग-तारे!
प्रातः तेरे आँसू बन कर, बिखर गए थे सारे॥
इस रहस्य में ही करुणा की, थी अव्यक्त कहानी!
कितने हृदय-प्रदेशों की थी एक साथ ही रानी!!

सदियों के सागर में डूबी, तेरी गौरव गाथा!
उफ़, तेरे चरणों पर था किस-किस प्रेमी का माथा!!
जगत देखता रहा, फूल वह तोड़ ले गया माली!
हाथ बढ़े ही रहे, गिर पड़ी यौवन की वह प्याली!!
नूर-रहित हो गया जहाँ, तेरे जग से जाने से!
नूरजहाँ, तू जाग! जाग फिर मेरे इस गाने से!!





मई, १९३१

स्पेन में प्रजातन्त्र की विजय



न्याय एवं अत्याचार की भित्ति पर टिका हुआ शासन एक अनिश्चित काल तक देश-वासियों को त्रस्त भले ही करे; किन्तु अन्त में उसका करुणा-जनक विनाश अवश्यम्भावी है, इसमें सन्देह नहीं। सारे ब्रह्माण्ड का इतिहास हमारी इस धारणा का पोषक है। इस रहस्यपूर्ण इतिहास में १४वीं अप्रैल, सन् १९३१ को एक और स्वर्ण-पृष्ठ जोड़ दिया गया है। पूरे आठ वर्ष की घोर एवं नारकीय यन्त्रणाएँ भोगने के पश्चात् इस दिन स्पेन के अत्याचारियों की पराजय और लोकमत की शानदार विजय हुई है। पशुबल का नृशंस उपयोग करने पर भी शासक लोकमत का दमन न कर सके!

स्पेन में होने वाले १४वीं अप्रैल के निर्वाचन ने प्रत्यक्ष कर दिया, कि लोकमत किस ओर है और प्रजा-पक्ष कितना प्रबल है। अपने प्राणों को भी सङ्कट में समझ कर, सम्राट एल्फ़ेन्ज़ो को सकुटुम्ब स्पेन से चुपके से भाग जाना पड़ा। आज तक सम्राट एल्फ़ेञ्ज़ो का ठीक-ठीक पता नहीं चला, कि आख़िर प्राण-रक्षा के लिए उन्हें कहाँ और किसकी शरण लेनी पड़ी? इस प्रकार स्पेन की जनता ने अपने देश में प्रजातन्त्र स्थापित करके संसार को अपनी स्वतन्त्र-प्रियता का जो परिचय दिया है, उससे पूँजीवाद के पोषकों के छक्के छूट गए हैं। यूरोप के, प्राचीनतम राजवंश का इस प्रकार बात की बात में अन्त हो जाना, कोई साधारण बात भी तो नहीं है।

विगत १२ वर्षों के भीतर कितने ही शासकों के राजमुकुट प्रजा द्वारा छीने और ठुकराए जा चुके हैं। नृशंस ज़ार का रूसियों ने बध किया; पुरुषार्थ-हीन और रूढ़ियों की गोद में पले हुए ख़लीफ़ा को तुर्की ने पदच्युत किया, कर्तव्य-विमुख अहमदशाह को ईरानियों ने देश-निर्वासित किया और गत सप्ताह का समाचार है, कि स्पेन की त्रस्त जनता ने अपने ४४ वर्षों तक शासन करने वाले सम्राट एल्फ़ेन्ज़ो को अपने देश से बात की बात में खदेड़ भगाया है! इन सारी घटनाओं से स्पष्ट पता चलता है, कि वर्तमान युग बहुमत और प्रजातन्त्र का महान युग है। सम्राटों और पूँजीवादियों के लिए आज संसार में कोई विशेष स्थान नहीं दिखाई देता। नृशंस अत्याचारों के बल पर देशवासियों को भयभीत एवं त्रस्त करने का युग संसार से लद चुका है

तोप और तलवार के बल पर राज्य करने वालों को इन शिक्षाप्रद घटनाओं से समुचित लाभ उठाना चाहिए। अपना और अपने परिवार का कल्याण चाहने वाले उच्छृङ्खल नरेशों को इन घटनाओं से लोकमत का मान करना सीखना चाहिए और अपनी अनुचित सत्ता को तिलाञ्जलि दे देना चाहिए—जनता को स्वयं उनके कम्पित कर से त्याग-पत्र लिखवाने के लिए अथवा अपने रक्त-रञ्जित करों से उनका राजमुकुट उतारने के लिए वाध्य करना बुद्धिमानी का परिचायक नहीं है—नृशंस शासकों की मनोवृत्ति में परिवर्तन होने से ही संसार में वास्तविक शान्ति की स्थापना हो सकती है, अन्यथा नहीं। हाल का स्पेन का इतिहास भी हमें यही बतलाता है। अस्तु।

सन् १९२३ में जनरल प्राइमो-डि-रिवेरा (Primo-de-Rivera) ने स्पेन की पार्लामेण्ट का अन्त करके सैनिक-शासन स्थापित किया था। एक ओर ज्यों-ज्यों सैनिक-शासन द्वारा नृशंस अत्याचारों का क्रम बढ़ता था, दूसरी ओर त्यों-त्यों जनता में असन्तोष की भीषण ज्वाला धायँ-धायँ करके जलने लगी! भला यूरोपीय महासमर की जागृति के पश्चात् सैनिक-शासन को कौन जीवित देश सहन कर सकता था? वहाँ की गवर्नमेण्ट ने समाचार-पत्रों को सेन्सर करना आरम्भ कर दिया, जनता की ज़बानों पर ताले ठोंक दिए गए, स्वातन्त्र्य-साहित्य को दबाया गया, पुस्तकों और समाचार-पत्रों की ज़ब्ती का बाज़ार गर्म हो गया, स्वतन्त्रता के दीवाने देश के पूज्य नेताओं को जेलों में ठूँस कर नाना प्रकार के कष्ट दिए गए, अनेक नवयुवक फाँसी पर चढ़ा दिए गए! सारांश यह, कि पशुबल द्वारा जैसा और जितना भी दमन किया जाना सम्भव था, उसमें कोई कसर शासकों की ओर से उठा नहीं रक्खी गई; पर इन सारे उपायों एवं साधनों द्वारा भी लोकमत का दमन नहीं किया जा सका। जेल, ज़ब्ती और प्राणदण्ड के भय ने भी आज़ादी के दीवानों को निश्चित-पथ से विचलित करने में अपनी हार मान ली। जन-शक्ति की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई बाढ़ को मदोन्मत्त सम्राट तथा उसके सैनिक-साथियों ने जान-बूझ कर नहीं देखा। वे आँखें मूँद कर वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ बने रहे। फल यह हुआ, कि वह प्रबल तथा दुर्धर्ष बाढ़ एल्फ़ेन्ज़ो को बहा ले गई—अब पता नहीं, वह उसे भवसागर के कौन से तट से टकरावेगी?

जब जनता अपने असन्तोष का प्रदर्शन करती थी और श्रमजीवी लोग अपनी स्थिति के सुधार के लिए हड़तालें करते थे, तो एल्फ़ेन्ज़ो केवल मुस्करा दिया करता था। वह प्रायः कहा करता था—"हज़ार हड़तालें हों, हमें इसकी चिन्ता नहीं; केवल हमारे जनरलों की हड़तालें न होनी चाहिए।" त्रास-नीति के बल पर कई वर्ष तक राज्य कर लेने के कारण उसका विश्वास हो गया था, कि शस्त्र-शक्ति अमोघ-शक्ति है और दमन-नीति ही वास्तविक राजनीति है। "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः" का इसे ज्वलन्त उदाहरण समझना चाहिए। गत १४ अप्रैल को लोकमत की विजय पर जनता हर्षनाद करने लगी, तो पुलिस वाले भी जनता के साथ हो गए और वे भी "प्रजातन्त्र की जय" बोलने लगे। 'राजभक्ति' और 'वफ़ादारी' का मनोहर दृश्य एल्फ़ेन्ज़ो ने भी अपने राजमहल के किसी झरोखे से अवश्य देखा होगा। सम्भवतः हर्ष-ध्वनि में उसने अपने सैनिकों के स्वर को भी पहचान लिया हो। अस्तु।

आर्थिक एवं राजनैतिक सङ्कटों से किंकर्तव्यविमूढ़ होकर, विगत अक्टूबर, १९३० में स्पेन की सैनिक-सरकार ने घोषित किया था कि नवम्बर में पार्लामेण्ट का नया निर्वाचन होगा। समाचार-पत्रों का सेन्सर भी किसी हद तक पहले की अपेक्षा कम कर दिया गया था और दमन-नीति भी एक हद तक स्थगित कर दी गई थी। साथ ही अपनी आर्थिक दुरवस्था को सुधारने के लिए कई अन्तर्राष्ट्रीय बैङ्कों से भी सैनिक-सरकार ने परामर्श आरम्भ कर दिया था; परन्तु इन सारे प्रयत्नों का कोई भी प्रत्यक्ष फल नहीं हुआ। स्वतन्त्रता की प्रबल पिपासा इने-गिने सुधार-बिन्दुओं से शान्त नहीं हो सकती थी। उन्मत्त जनता ने स्वातन्त्र्य-सागर में ही ग़ोता लगाने की ठान ली थी; अतः फिर भी श्रमजीवियों तथा विद्यार्थियों की हड़तालें होती रहीं। सरकार की ओर से इसका कारण साम्यवादियों का कूट-प्रचार एवं विश्वविद्यालयों में आत्म-नियन्त्रण का अभाव बतलाया जाता था; जनता इन हड़तालों का कारण जन-सत्तात्मक शासन की अदम्य अभिलाषा बतलाती थी। समाचार-पत्रों में निरङ्कुश सत्ता की तीव्रतम आलोचनाएँ होने लगीं;

शासन-विधि के विरोध में विराट सभाएँ होने लगीं; स्वयं सम्राट के विरुद्ध रोषपूर्ण भाषण दिए जाने लगे; किन्तु किसी अज्ञात कारणवश इन सारे प्रदर्शनों को दबाया नहीं गया। समाचार-पत्रों को केवल सरसरी तौर से देख कर छोड़ दिया जाने लगा। सार्वजनिक सभाओं के चारों ओर सैनिकों को खड़ा अवश्य रक्खा जाता था—परन्तु उनका उपयोग नहीं होता था! सम्भवतः इसका कारण यह था, कि सरकार पग-पग पर अपने पक्ष की निर्बलता का अनुभव करने लगी थी और धीरे-धीरे अपनी सेना पर भी उसे अविश्वास होता जाता था। वास्तव में राजभक्त सेना और पुलिस के हृदयों में भी असन्तोष की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी थी।

पाठकों को स्मरण होगा, विगत १२वीं और १३वीं दिसम्बर, १९३० को 'ज़का' नामक दुर्ग के सैनिकों ने विद्रोह कर दिया था और सारे अफ़सर क़ैद कर लिए गए थे। इन विद्रोहियों को दबाने के लिए तुरन्त 'राजभक्त' सेना भेजी गई और अन्त में 'बाग़ी' लोगों को बाध्य होकर आत्म-समर्पण कर देना पड़ा। इन बाग़ियों के नेता कैप्टन गलन और गर्शिया हरबॉड्ज़ को प्राण-दण्ड दिया गया और १४वीं दिसम्बर को उन्हें गोली से उड़ा दिया गया। इसके पूर्व, नवम्बर १९३० में देश-व्यापी बलवे और हड़तालें हो चुकी थीं, जिनमें कितने ही मनुष्य मारे गए थे और अनेक घायल हुए थे। मेड्रिड और बारसलोवा नामक नगरों में इन उत्पातों ने बड़ा भयङ्कर रूप धारण कर लिया था। कई दिनों तक बाज़ार आदि बन्द रहे और वहाँ का शासन लुप्तप्राय हो गया था। इन्हीं सब कारणों से पार्लामेण्ट का नया चुनाव अब तक स्थगित रक्खा गया था। यद्यपि ये सारे 'उत्पात' बलवे और हड़तालें स्वतन्त्रता की अदम्य अभिलाषा के परिचायक थे, परन्तु सरकार की ओर से एक विज्ञप्ति निकाल कर संसार को यह विश्वास दिलाने की यथाशक्ति चेष्टा की गई, कि "ये सारे उत्पात योंही अकस्मात हो गए हैं।" आधुनिक संसार में इस प्रकार की सरकारी विज्ञप्तियों पर कोई सहसा विश्वास नहीं करता और ज्यों-ज्यों इस प्रकार की विज्ञप्तियों की निस्सारता और खोखलापन प्रकट होता जाता है, त्यों-त्यों जनता का अविश्वास भी दिनोंदिन बढ़ता जाता है।

गत जनवरी, १९३१ में भी स्पेन की सरकार ने देश के जाग्रत आत्माभिमान को एक बार ही कुचल डालने के अनेक प्रबल प्रयत्न किए। एक बार फिर प्रेसों का गला घोंटा गया और सभाबन्दी का क़ानून जारी कर दिया गया; देश भर के सम्पूर्ण प्रसिद्ध नगरों में ज़ोरों से सैनिक शासन होने लगा; एक नगर से दूसरे नगर जाना, यहाँ तक कि स्वतन्त्रतापूर्वक जनता का पत्र-व्यवहार भी कठिन कर दिया गया। लगभग १०,००० स्वतन्त्रता के पुजारी जेलों में ठूँस दिए गए और कितनों को फाँसी पर लटका दिया गया, परन्तु शासकों के ये सारे प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए; दमन-चक्र इस रण-निनाद को शान्त नहीं कर सका। देश-प्रेमियों के एक नेता मेजर फ्रेन्को ने वायुयान द्वारा मेड्रिड नगर में क्रान्तिकारी पर्चे तथा पुस्तिकाएँ एवं पत्र बरसाए और इसके बाद वे पोर्चुगल चल दिए। उन्होंने एक पत्र के सम्वाददाता को इस युद्ध का ध्येय बतलाते हुए कहा था, कि "हम राजनैतिक और सैनिक विद्रोह के द्वारा स्पेन में पुनः उस न्याय और सम्मान तथा गौरव की स्थापना करना चाहते हैं, जो केवल प्रजातन्त्र शासन-शैली में ही सम्भव है।" इसी समय प्रधान राज-सचिव जनरल बेरङ्गूयर (General Beranguer) ने भी अपना वक्तव्य प्रकाशित किया था, जिसमें उसने कहा था, कि "मुझे शान्ति-रक्षा करनी पड़ती है। जब तक बलवे और उत्पात जारी हैं, तब तक मुझे विवश होकर सैनिक-शासन रखना पड़ेगा। मुझे आशा है, यह स्थिति शीघ्र ही सुधर जावेगी। असाधारण साधनों का मैंने विवश होकर ही उपयोग किया है। मैं यह जानता हूँ, कि स्पेन के लोग स्वाधीनता के प्रेमी हैं और उसकी प्राप्ति के निमित्त वे इस समय अधीर हो रहे हैं। ज्यों ही मैं देखूँगा, कि वे अधिकारों का सदुपयोग करने के योग्य हो गए हैं, मैं उनको सब अधिकार दे दूँगा।" किन्तु इस प्रकार के अनेक आश्वासन सुनते-सुनते स्पेन-निवासियों के कान पक गए थे; उन्होंने राज-सचिव बेरङ्गूयर के इस वक्तव्य को उपेक्षा की दृष्टि से देखा और अपने स्वतन्त्रता के आन्दोलन में किसी प्रकार की शिथिलता न आने दी। अस्तु।

पूरे ८ वर्षों तक निरन्तर दमन-नीति का प्रयोग

करने पर भी, जब परिस्थिति सरकार के वश में नहीं आ सकी, तो हार कर उसे वैध उपायों का आश्रय लेना पड़ा। गत २४ जनवरी, १९३१ को सैनिक-शासन हटा लिया गया और प्रेस तथा सभा-सम्बन्धी क़ानून रद् कर दिए गए। सम्राट एल्फ़ेन्ज़ो अधिक रुचि और कर्तव्य-परायणता के साथ शासन-कार्य देखने लगा और साथ ही अपने सहायकों के दल के सङ्गठन का कार्य भी उसने आरम्भ कर दिया। इन प्रयत्नों के प्रभाव से देश में दो राजनैतिक दल हो गए। एक ओर स्वतन्त्रता के दीवानों का एक दल था, तो दूसरी ओर राजभक्तों का दूसरा दल भी धीरे-धीरे तैयार किया जाने लगा। ८ वीं फ़रवरी, १९३१ को प्रधान-सचिव बेरङ्गूयर ने घोषित किया, कि १ली और १५वीं मार्च को डिपुटी और सिनेटरों का निर्वाचन किया जावेगा और २५वीं मार्च को पार्लामेण्ट का प्रथम अधिवेशन होगा।

आठ वर्षों के निरङ्कुश और नृशंस सैनिक-शासन के पश्चात् इस घोषणा को सुन कर भी स्पेन वालों ने आनन्द नहीं मनाया, वास्तव में अत्याचार की स्मृतियाँ जनता चेष्टा करने पर भी नहीं भुला सकती थी। जनता सम्राट एल्फ़ेन्ज़ो के स्वेच्छाचारी शासन का अन्त करने के लिए कटिबद्ध हो चुकी थी; इसीलिए इस घोषणा का उस पर किञ्चित प्रभाव भी नहीं पड़ा, अतएव हड़तालों और बलवों का क्रम उसी प्रकार जारी रहा। जनता का यह रुख़ देख कर सरकार ने पार्लामेण्ट का निर्वाचन पुनः स्थगित कर दिया और पुनः प्रेसों का गला घोंटा जाने लगा और सभाओं पर कड़ी निगाह रक्खी जाने लगी!

स्पेन में इस समय भी राजभक्तों की कमी नहीं है। सैनिक बल के प्रयोग से थक कर सम्राट एल्फ़ेन्ज़ो ने निर्वाचन द्वारा अपने भाग्य की परीक्षा लेना चाहा। उसने अनेक उपायों द्वारा 'राजभक्त' लोगों के दल को आगे बढ़ाया और इस मास के प्रथम सप्ताह से पार्लामेण्ट के निर्वाचन की बड़ी धूमधाम से तैयारियाँ होने लगीं, किन्तु सम्राट एल्फ़ेन्ज़ो को शीघ्र ही इस बात का पता चल गया, कि प्रजातन्त्रवादी उसको सिंहासन-च्युत करने पर तुल गए हैं। १३ वीं एप्रिल को ही विदित होने लगा था, कि प्रजातन्त्रवादियों का पक्ष बहुत प्रबल है। अनेक राजभक्त लोग भी प्रजातन्त्र दल में सम्मिलित होने लगे। गोडलजर का प्रान्त, जो अपनी राजभक्ति के लिए सारे स्पेन में प्रसिद्ध था, अकस्मात प्रजातन्त्रवादी बन गया। इस समाचार से बादशाह सलामत और प्रधान-सचिव बड़े खिन्न हुए और समस्त "जी-हुज़ूरों" के दल में उदासी छा गई। प्रजातन्त्रवादियों को अपनी शक्ति का परिचय मिलते ही उनके नेताओं ने बड़ी गम्भीरता और धैर्यपूर्वक दूने वेग से अपना आन्दोलन जारी कर दिया। १३वीं एप्रिल को भावी विजय के उपलक्ष में जब जनता ने अपने जुलूस निकालने आरम्भ किए और आमोद-प्रमोद की ध्वनियाँ नगर में गूँजने लगीं, तो साम्यवादी नेताओं ने इस आशय की एक विज्ञप्ति प्रकाशित की, कि "हमें हल्ला और शोर नहीं चाहिए, हमको शान्त एवं दृढ़ निश्चय की आवश्यकता है।" १४वीं एप्रिल को जनता को इस बात का पूर्णरूपेण विश्वास हो गया, कि प्रजातन्त्रवादियों का दल इतना प्रबल है, जिसकी वे कल्पना भी न कर सके थे। ठीक इसी समय मेड्रिड में यह समाचार फैल गया, कि बादशाह सलामत ने अपनी हार मान कर राजपद त्याग दिया है। इस समाचार से जनता को जो अपार हर्ष हुआ, उसे व्यक्त करना सहज नहीं है। सारे नगर में आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ा। इस समाचार का फैलना था, कि पुलिस और फ़ौज भी प्रजातन्त्रवादियों के साथ मिल कर प्रजातन्त्र का अभिनन्दन करने लगी। उसी दिन सायङ्काल को निश्चय रूप से पता लग गया, कि सम्राट एल्फ़ेन्ज़ो ने सिंहासन का परित्याग कर दिया है। बस फिर क्या था? मेड्रिड हर्ष से पागल हो गया। स्वयं राजकर्मचारी ही अपनी-अपनी मोटरों पर प्रजातन्त्र के लाल झण्डे लगा कर सारे शहर में घूमते हुए दिखाई देने लगे और वे ही प्रजातन्त्र की इस विजय की सूचना सर्व-साधारण को देने लगे। जिधर-देखो उधर प्रजातन्त्र का अभिनन्दन होने लगा।

एल्फ़ेन्ज़ो की हार्दिक इच्छा थी, कि राजसिंहासन उसके पुत्र को मिल जाय; परन्तु जनता के नेताओं का कहना था कि त्याग-पत्र में इस प्रकार की कोई शर्त नहीं हो सकती, अतः बादशाह सलामत की यह अन्तिम इच्छा भी पूरी नहीं हुई और १४वीं अप्रैल की रात को उन्हें सकुटुम्ब अपने राजप्रासाद से एक अनिश्चित-स्थान के लिए विदा होना पड़ा। उनके साथ उस समय केवल

उनके तीन पुराने मित्र थे। नए समाचारों से ऐसा प्रतीत होता है, कि बादशाह सलामत सम्भवतः फ्रान्स अथवा इङ्गलैण्ड की शरण लेंगे।

१४वीं एप्रिल की शाम को ही सारे देश में प्रजातन्त्र शासन घोषित कर दिया गया और एल्फ्रेञ्ज़ो के प्रतिनिधि एडमिरल अज़नार (Admiral Aznar) ने प्रजावादियों के प्रतिनिधि सेनोर ज़मोरा (Senor Zamora) को शासन-भार सौंप दिया। नए मन्त्रि-मण्डल में सेनोर ज़मोरा प्रधान-सचिव नियुक्त हुए हैं और ९ अन्य मन्त्रियों का भी निर्वाचन हुआ है। इनमें से ६ को विगत दिसम्बर, १९३० के बलवे में सैनिक न्यायालय ने ६ मास का कारावास-दण्ड दिया था, परन्तु सरकार ने थोड़े दिनों में उन्हें बिना किसी शर्त के मुक्त कर दिया था।

इस राज्य-क्रान्ति से त्रस्त होकर राजपक्ष के बड़े-बड़े अमीर लोग स्पेन छोड़ कर भाग रहे हैं। १५वीं एप्रिल का समाचार है, कि स्पेन की सीमा पर सब रेलगाड़ियाँ इन्हीं लोगों से खचाखच भरी हुई थीं—इसके साथ ही वे देशभक्त लोग स्वदेश लौट रहे हैं, जो दमन-चक्र से बचने के लिए अन्य देशों में भाग गए थे।

१९वीं एप्रिल के समाचारों से पता चलता है कि उरूग्वे, मैग्ज़िको, फ्रान्स, चाईल तथा पोर्चगीज़ की सरकारों ने स्पेन के इस नए प्रजातन्त्र शासन को स्वीकार कर लिया है; किन्तु ब्रिटेन ने अभी तक ऐसा नहीं किया है, इसका कारण उपनिवेशों से इस सम्बन्ध में परामर्श करना बतलाया जाता है।

स्पेन का भावी इतिहास वास्तव में बड़ा मनोरञ्जक होगा। स्पेन का यह प्रजातन्त्र भविष्य में किस मार्ग का अनुकरण करता है, इतिहास के विद्यार्थियों को बड़े मनोयोग से इसका अध्ययन करना चाहिए!

* * *

देश का गलित कोढ़

बीसवीं सदी के मध्याह्न काल में—जबकि पाश्चात्य देशवासी दिनोंदिन अपना क्षेत्र विस्तृत करने की चिन्ता में लगे हैं; अपने अतुल वैभव से सन्तुष्ट न होकर, अन्य निकटवर्ती देशों को हड़प जाने की नित्य नई तरकीबें सोचने में लीन हैं, जबकि बीसवीं सदी का संसार बहुत तीव्र गति से विज्ञान और कला के पथ में अग्रसर हो रहा है; जब कि पाश्चात्य देशवासी अपने हवाई बेड़ों का सङ्गठन करके केवल ४८ घण्टों में इङ्गलैण्ड से भारत पहुँचने की स्कीमें तैयार कर रहे हैं; जबकि छोटे से छोटे राष्ट्र अपने देशवासियों को अधिक से अधिक वैभव, सुख और शान्ति पहुँचाने की चेष्टा में रत हैं—ऐसे उन्नति और विकास के इस युग में अभागे भारत के ३१ करोड़ (नई मनुष्य गणना के अनुसार ३५ करोड़) निवासी, हिन्दू-मुस्लिम की उस घृणित समस्या को सुलझाने का प्रयत्न कर रहे हैं, जिसमें यह निश्चय करना है, कि बाजा मस्जिद के सामने बजे या उसके पीछे! 'मग़रिब' के पहिले बाजा मस्जिद के सामने बजाया जा सकता है या उसके बाद!! गोकुशी आम सड़कों पर क़ानूनन हो सकती है या लुक-छिप कर!!! मन्दिर में केवल शङ्ख बजाया जाय या घड़ियाल भी साथ बजाए जा सकते हैं!!!

जिन उदाहरणों की चर्चा ऊपर की गई है, निस्सन्देह वे साधारण, अतएव उपेक्षनीय हैं, किन्तु इन साधारण घटनाओं के अन्तराल में देशवासियों की जो दूषित मनोवृत्ति छिपी हुई है, और जो ज़रा सा ठेस लगते ही हिन्दू-मुसलमानों के भीषण दङ्गों के रूप में हमारे सम्मुख प्रकट हो जाती है—जबकि देश का मनुष्यत्व पशुत्व में परिणत हो जाता है—तो उस घृणित मनोवृत्ति की उपेक्षा राजनीतिक दृष्टि से नहीं की जा सकती। देश के वक्षस्थल पर हाल ही में अनुष्ठित होने वाले मिर्ज़ापुर, बनारस, आगरा तथा कानपुर आदि के भीषण दङ्गे हमारी आँखों में उँगली डाल कर उनके कारणों पर विचार करने को हमें बाध्य कर रहे हैं। आए-दिन के होने वाले इन भीषण उपद्रवों के अन्तराल में छिपे हुए कारणों पर समय-समय पर विचार करते रहना हमारा भी एक दुखद-कर्तव्य रहा है और अधिक से अधिक चिन्तन करने पर जो निष्कर्ष हम निकाल सके हैं, उसकी चर्चा करना ही इस छोटे से लेख का उद्देश्य है। अस्तु।

हमें सब से पहिले उन कारणों पर विचार करना है, जिनके कारण प्रत्येक राष्ट्रीय आन्दोलन के बाद देश का वातावरण आज की भाँति कलुषित और हिंसापूर्ण हो जाता है? आख़िर वह कौन सा ऐसा रहस्यपूर्ण कारण

था, जिसने सन् १९२१ के सत्याग्रह आन्दोलन के विफल होते ही देश के वातावरण को आज ही की भाँति कलुषित एवं हिंसापूर्ण बना दिया था ? इस प्रश्न का उत्तर ही इन जातीय विभेदों और वैमनस्य का कारण सिद्ध हो सकता है और इसी प्रश्न पर हमें गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।

यदि संसार की समस्त जातियों के उत्थान पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जाय, तो पता चलेगा, कि किसी भी देश में, किसी भी काल में और किसी भी जाति में विभीषणों की, जयचन्दों और अमीचन्दों की तथा मीर-जाफ़रों की कमी नहीं रहती। संसार के किसी भी उन्नतशील देश को उदाहरण के तौर पर ले लीजिए, हम आपको इन 'मीर जाफ़रों' के नाम गिना सकते हैं— जो अपना पेट पालने के लिए, अपना नेतृत्व क़ायम रखने के लिए तथा अपना बड़प्पन जताने के लिए—थोड़े से चाँदी के टुकड़ों पर अपना शरीर और अपनी आत्मा ही नहीं, अपना वह देश तक बेचने को तैयार हो जाते हैं, जिसकी मिट्टी और पानी से उनके शरीर की रचना हुई है ! इस प्रकार के मानव जाति के कलङ्क यदि भारतीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन में रोड़े अटकाते हों तो इसमें कौन सा आश्चर्य है ?

हमारे दुर्भाग्य से पण्डिताई, पुरोहिताई और महन्ती की भाँति नेतागिरी भी आज लोगों का पेशा और जीवन-यापन का साधन हो गया है। एक-दो नहीं, हम कोड़ियों ऐसे स्वयं-निर्मित नेताओं के नाम गिना सकते हैं, जिनको लिए मुट्ठी भर अन्न का ठिकाना नहीं था, वकालत अथवा बैरिस्टरी का पेशा उन्हें नहीं फला और जो कौड़ी के तीन थे—जिनसे कोई बुद्धिमान व्यक्ति अधिक बात तक करने में अपनी ज़िल्लत समझता था— वे आज इसी नेतागिरी के कारण मालामाल हो गए हैं। जिनको बैठने के लिए ज़मीन नहीं मिलती थी, इसी नेतागिरी की बदौलत उनकी कोठियाँ खड़ी हो गई हैं—जिन्हें दूसरों की चाकरी नहीं मिलती थी, उनके आगे दर्जनों नौकर हाथ बाँधे खड़े रहते हैं ! जिस पेशे से बिना हाथ-पैर हिलाए—बिना किसी प्रकार का परिश्रम किए इतना अधिक धन, ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा प्राप्त होती हो, भला कौन मूर्ख उसे ग्रहण करना स्वीकार न करेगा ?

दूसरी ओर देश के उन पूज्य नेताओं के त्याग और तपस्या का उदाहरण है, जिन्होंने अपना सर्वस्व देश के श्रीचरणों पर अर्पित कर दिया है, और जो देश की ग़ुलामी की ज़ञ्जीर को एक बार ही तोड़ कर फेंक देने के लिए कटिबद्ध हो गए हैं—वे जनता के प्रिय हैं, पूज्य हैं और हैं उनके सर्वस्व। इन नेताओं की दृष्टि में हिन्दू और मुसलमानों का प्रश्न एक समान प्रश्न है। वे जो कुछ कर रहे हैं, भारतवासियों के लिए कर रहे हैं; हिन्दुओं और मुसलमानों को लक्ष्य कर नहीं। इनका दृष्टि-कोण राष्ट्रीय भावों से ओत-प्रोत है, वे साम्प्रदायिक झगड़ों को रोष, घृणा एवं ग्लानि की दृष्टि से देखते हैं। किन्तु पहिली श्रेणी के स्वयम्भू नेताओं का सारा नेतृत्व सीमित रहता है साम्प्रदायिकता के सङ्कीर्ण दायरे में। आज हमारे दुर्भाग्य से हमारा देश अविद्या और जहालत का केन्द्र है। यहाँ की अधिकांश जनता हमारे गौराङ्ग महाप्रभुओं की कृपा से इस सङ्घर्ष के महायुग से कोसों पीछे पड़ी है, अतएव इन साम्प्रदायिक नेताओं की पाँचों उँगलियाँ घी में होने का यह अन्यतम कारण है। वे अपने देशवासियों की इस मूर्खता का अधिक से अधिक लाभ उठा रहे हैं और देश में होने वाले इन सारे साम्प्रदायिक उपद्रवों के लिए ये ही 'नेता' ज़िम्मेदार हैं ! जब तक इन स्वयम्भू नेताओं के विरुद्ध एक बहुत ज़बर्दस्त आन्दोलन उठा कर देशवासियों को इनके स्वार्थपूर्ण हथकण्डों से सचेत नहीं किया जायगा, तब तक इस समस्या का सुलझाया जाना सर्वथा असम्भव है। हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में शिक्षा का अधिक अभाव है, अतएव उनमें हठधर्मी का होना भी स्वाभाविक है और जिस जाति में अविद्या और हठधर्मी का सम्मिश्रण हो, उस जाति को मूर्ख बना कर अपना नेतृत्व क़ायम करना भी अपेक्षाकृत सहज है, ऐसी हालत में यदि मुस्लिम कठमुल्ले अपना उल्लू सहज ही में सीधा कर सकें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

यदि सूक्ष्म दृष्टि से विगत राष्ट्रीय आन्दोलनों के इतिहास का निरीक्षण किया जावे तो पता चलता है, कि जब-जब देश में राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ है, तब-तब राष्ट्रीयता के वेग में साम्प्रदायिक नेताओं का सर्वथा लोप हो गया है—केवल लोप ही नहीं, इनका अस्तित्व तक खटके में पड़ गया है; किन्तु जैसे

ही आन्दोलन विफल अथवा स्थगित हुआ, वैसे ही मूर्ख देशवासियों पर इनका आधिपत्य जमता हुआ दिखाई देता है। दूर न जाकर, यदि सन् १९२१ के सत्याग्रह और ख़िलाफ़त आन्दोलन के इतिहास पर विचार किया जावे, तो हमारी इस धारणा का बहुत ही स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है। पाठकों को स्मरण होगा, सन् १९१९-२१ में, जबकि सत्याग्रह आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था—इन साम्प्रदायिक विभेदों का देश में नामोनिशान तक नहीं था, किन्तु जैसे ही चौरीचौरा वाले हत्याकाण्ड के बाद महात्मा गाँधी ने अपने आन्दोलन को स्थगित किया, वैसे ही हिन्दू-मुसलमानों के उपद्रव प्रारम्भ हो गए थे और आज भी ठीक वही समस्या देश के सामने उपस्थित हुई है। पाठक देखेंगे, मिर्ज़ापुर, आगरा, बनारस तथा कानपुर के सारे दङ्गे गाँधी-इर्विन समझौते के बाद ही हुए हैं और आज अनेक शहरों में दङ्गा हो जाने की पग-पग पर सम्भावना दिखाई दे रही है। इसका एकमात्र कारण यही प्रतीत होता है, कि देश के सामने आज जो कार्यक्रम उपस्थित है, उसमें साम्प्रदायिक नेताओं के लिए कोई भी स्थान नहीं है और उनके सामने प्रश्न है अपनी रोटियों का, अपने स्वार्थ का और अपने नेतृत्व का; सन् १९२१ के राष्ट्रीय आन्दोलन के विफल होते ही, 'हिन्दू-सङ्गठन' तथा 'तबलीग़' और 'तनज़ीम' के विषैले आन्दोलनों का जन्म हुआ था और इन साम्प्रदायिक आन्दोलनों का नेतृत्व ग्रहण करने वाले वे ही 'नेता' थे, जिनके लिए कॉङ्ग्रेस में कोई भी स्थान शेष नहीं रह गया था; किन्तु राष्ट्रीयता के इस प्रबल प्रवाह ने इन जातीय आन्दोलनों को पूरी तरह पनपने नहीं दिया। अतएव दिल मसोस कर इनमें से कुछ अधिक दूरदर्शी साम्प्रदायिक नेताओं ने तो राष्ट्रीय महासभा के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया; किन्तु कुछ ऐसे भी नेता थे जिन्होंने अपने अनुचित दम्भ की रक्षा के लिए ऐसा नहीं किया और आज के सारे साम्प्रदायिक उपद्रवों के लिए ये ही मुट्ठी भर स्वयं-निर्मित नेता सर्वथा ज़िम्मेदार हैं और इनके विरुद्ध अगर आज देश की कोई शक्ति आवाज़ उठाने में समर्थ है, तो वह है राष्ट्रीयता की भावनाओं से सनी हुई उन्मत्त नवयुवकों की टोली। जब तक तरुण-भारत इस समस्या को हाथ में लेकर इन साम्प्रदायिक 'नेताओं' के मस्तक पर पाद-प्रहार न करेगा तब तक देश के वातावरण में किसी भी प्रकार का सुधार एक बार ही असम्भव है, अनिश्चित है और बालू में से तेल निकलने की आशा के समान मूर्खतापूर्ण है !!

इस सिलसिले में महात्मा गाँधी से भी हमें एक आवश्यक निवेदन करना है और वह यह, कि उन्हें व्यर्थ में हिन्दू-मुसलमानों की 'समस्या' को सुलझाने के प्रयत्न में अपनी शक्ति और समय का दुरुपयोग न करना चाहिए, बल्कि इसी समय और शक्ति को अशिक्षित देशवासियों को इन साम्प्रदायिक नेताओं के हथकण्डों से सचेत करने में लगाना चाहिए। हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य का प्रश्न तो तब उपस्थित होता, जब कि देश के सारे मुसलमान एक ही विचार में रँगे होते। किन्तु यह बात नहीं है। हम देख रहे हैं, देश के अधिकांश शिक्षित मुसलमान आज देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना सर्वस्व निछावर करने को तैयार हैं और महात्मा गाँधी के नेतृत्व में कार्य भी कर रहे हैं। भारतीय मुसलमानों के प्रतिष्ठित नेताओं में से आज मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद, डॉक्टर अन्सारी, मौलाना कसूरी, डॉक्टर आलम, मौलाना ज़फ़र-अली, मौलाना अताउल्ला शाह बुख़ारी, श्री० आसफ़-अली, श्री० ब्रेल्वी, तथा सर अली और हसन इमाम आदि-आदि अनेक गण्य-मान्य मुस्लिम नेता आज महात्मा गाँधी के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर राष्ट्रोत्थान के इस महान आन्दोलन में उनके सहायक हो रहे हैं। सीमा-प्रान्त के 'गाँधी' ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ—जिनके अधीन सीमा-प्रान्त के लगभग सारे पठान हैं—आज महात्मा जी की आज्ञा पर अपने जीवन तक की भेंट चढ़ाने का आश्वासन कॉङ्ग्रेस के खुले अधिवेशन में दे चुके हैं। आपने अपने दिल्ली और बम्बई के अभिभाषणों में खुले शब्दों में कहा है, कि वे और उनके सारे अनुयायी (ख़ुदाई-ख़िदमतगार) ही नहीं, सीमा-प्रान्त के सारे पठान उस ओर होंगे, जिस ओर स्वतन्त्रता होगी। इस स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए यदि हिन्दू अधिक प्रयत्न करेंगे, तो वे सब उनका साथ देंगे, यदि सिक्ख करेंगे तो सिक्खों का साथ दिया जायगा और यदि स्वतन्त्रता के लिए मुसलमान युद्ध करेंगे तो वे मुसलमानों का साथ देंगे। मुसलमानों की विद्वत् परिषद् (जमायतुल-उलेमा) आज राष्ट्रीयता की भावनाओं से ओत-प्रोत है; स्थान-

स्थान पर राष्ट्रीय मुस्लिम दलों का निर्माण मुसलमान नेता स्वयं बड़े मनोयोग से कर रहे हैं, अखिल भारत-वर्षीय शिया मुस्लिम कॉन्फ्रेन्स का दृष्टि-कोण भी राष्ट्रीय विचारों का पोषक प्रतीत होता है। ऐसी हालत में हमारी तो यह निश्चित धारणा है, कि हिन्दुओं की ओर से समझौता स्थापित करने के लिए जो भी उद्योग किए जायँगे, उनसे लाभ तो कुछ नहीं, किन्तु निर्धारित उद्देश्य-पूर्ति में वे घातक अवश्य सिद्ध होंगे। हमारा अध्ययन तो यह बतलाता है, कि "मर्ज़ बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की" बालक यदि रोता हो तो उसे पेट भर कर रो लेने देना चाहिए। ज्यों-ज्यों आप उसे चुप कराने का प्रयत्न करेंगे, त्यों-त्यों वह और भी अधिक मचलने लगेगा। जो दृष्टान्त बालकों के सम्बन्ध में दिया गया है, आज के साम्प्रदायिक मुल्लाओं के लिए भी वही दृष्टान्त लागू है। इसका कारण भी स्पष्ट है, आज देश के शिक्षित और दूरदर्शी मुसलमान राष्ट्रीय आन्दोलन में देश के साथ हैं; जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। अतएव जब 'समझौते' का प्रश्न उपस्थित होता है, तो उन 'कठ-मुल्लों' की विशेष पूछ होने लगती है, जिनका देश में कोई भी स्थान नहीं है और ऐसे साम्प्रदायिक नेताओं से इस सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का परामर्श करना देश के इस कोढ़पूर्ण अङ्ग को सर्वथा अनुचित महत्व देना है। अपनी इस धारणा की पुष्टि में प्रमाण देने के लिए हमें दूर न जाना होगा। कराची कॉङ्ग्रेस के लिए प्रस्थान करने के पूर्व देहली में जिस दिन महात्मा गाँधी ने हिन्दू-मुस्लिम विषय पर एक व्याख्यान देते हुए अपने महात्मा-सुलभ शब्दों में यह कह डाला कि "हिन्दू-मुसलमानों में एकता स्थापित करने के लिए मैं प्रत्येक मुसलमान के पास घुटनों के बल जाऊँगा और उससे इस सम्बन्ध में अपना हाथ बटाने की भिक्षा माँगूँगा" उसी दिन से साम्प्रदायिक मुल्लाओं की बाछें खिल गई हैं और वे भी अपने को देश का एक अविच्छिन्न अङ्ग समझने और विष-वमन करने लगे हैं।

हम महात्मा गाँधी को सादर विश्वास दिलाना चाहते हैं, कि तरुण-भारत की दृष्टि में इन साम्प्रदायिक मुल्लाओं का कोई भी स्थान नहीं है और वह इस प्रकार के साम्प्रदायिक नेताओं को देश का गलित कोढ़ मात्र समझता है।

राष्ट्रपति का भाषण

कराची कॉङ्ग्रेस के सभापति सरदार वल्लभभाई पटेल के भाषण में जो सब से बड़ी विशेषता है, वह यह है कि पिछले ४४ वर्षों में कॉङ्ग्रेस के मञ्च से जितने भी व्याख्यान दिए गए हैं, उन सभों से यह छोटा किन्तु सारगर्भित है। उसमें एक भी शब्द का निरर्थक योग नहीं किया गया है। यह व्याख्यान नहीं, देशवासियों के सामने जो कार्यक्रम महात्मा गाँधी ने उपस्थित किया है, उसकी पुनरावृत्ति मात्र है।

इस समय कॉङ्ग्रेस तथा महात्मा गाँधी की स्पष्ट नीति है गाँधी-इर्विन समझौते को देशवासियों से स्वीकृत कराके उसी के अनुसार अपने भावी कार्यक्रम का निर्माण करना तथा भारत और ब्रिटेन के बीच सम्मान-पूर्ण समझौता करा के अन्य प्रदेशों को दिखा देना कि भारतवासी व्यर्थ ही देश का वातावरण कलुषित करने के पक्ष में नहीं हैं और वे ब्रिटिश राजनीति को अधिक से अधिक अवसर देकर उसे खोखली साबित करना चाहते हैं।

वास्तव में कॉङ्ग्रेस ने वर्तमान राष्ट्रपति को जो ज़िम्मेदारी सौंपी थी, उन्होंने उसे अधिक से अधिक बुद्धिमानी से निबाहा है। गोरे तथा अर्द्ध-गोरे पत्रों तक को राष्ट्रपति के इस महत्वपूर्ण भाषण की निन्दा करने का साहस नहीं हुआ है। राष्ट्रपति के भाषण के प्रत्येक शब्द में गाँधी-इर्विन समझौते का समर्थन टपकता है और जब कॉङ्ग्रेस और उसके एकाधिपत्य स्वामी का यही आदेश था—तो हमारा ख़याल है, आपका भाषण इससे अधिक अच्छा और स्पष्ट हो ही नहीं सकता था।

अन्तर्साम्प्रदायिक समस्या पर राष्ट्रपति ने जैसे उदार विचार प्रकट किए हैं, वह उन्हीं के योग्य था और इससे उनकी स्वतन्त्र-प्रियता की लगन और निष्ठा टपकती है। आपके व्याख्यान का यह अंश देश-प्रेम की उन भावनाओं का द्योतक है, जो किसी स्वतन्त्रता-प्रेमी के हृदय में हिलोरें लिया करती हैं।

हम हृदय की सारी उमङ्गों से राष्ट्रपति के इस भाषण का स्वागत करते हैं और उनकी इस सफलता पर उन्हें बधाई देते हैं।

प्रोबेट

[श्री० भोलालाल दास जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]



"इतने सोच-विचार का अब समय नहीं है दीदी ! जो कुछ करना हो शीघ्र करो, नहीं तो पीछे काम ख़राब होगा।"—कमला के भाई दिवाकर ने कुछ तमक कर कहा।

"किन्तु मैं तो बराबर मामले-मुक़दमे के विरुद्ध रही हूँ दीवू ! और जब मेरा सौभाग्य ही उठ गया तो इस धन-दौलत से मुझे क्या काम ?"

"तुम्हें भले ही कुछ काम न हो, लेकिन उर्मिला को अपने पैतृक धन से वञ्चित करने का तुम्हें क्या अधिकार है ? फिर यह भी कोई ज़रूरी बात नहीं है कि यदि तुम विधवा हो गई हो तो पथ की भिखारिनी भी बन जाओ। धन-दौलत का अर्थ केवल विलासिता नहीं है। आख़िर तुम्हें घर की प्रतिष्ठा और अपने निर्वाह से भी तो मतलब है।"

"यह सब काम तो गङ्गाधर कर ही रहा है, किन्तु यह तो बताओ कि उर्मिला का हक़ कैसे चला जायगा? क्या यह कुल धन उसके पिता का कमाया हुआ नहीं है ?"

"है तो ज़रूर, लेकिन ख़ान्दान 'इजमाल' (सम्मिलित) रहने से मिताक्षरा-परिवार में किसी हिन्दू स्त्री, कन्या या माता को धन का उत्तराधिकार नहीं मिलता है। उसे केवल परवरिश से मतलब रहता है। कन्याओं को इतना भी अधिकार केवल विवाह पर्यन्त प्राप्त है। विवाह के बाद उनके भरण-पोषण का भार उनके पति-कुल पर चला जाता है। तुम्हें मालूम है कि गङ्गाधर बराबर जीजा के साथ रहा और अब तुम्हारे साथ है।"

"लेकिन इस परिवार में उसकी कमाई कानी चित्ती भी नहीं है, बल्कि उसके पढ़ाने-लिखाने और शादी-विवाह में तुम्हारे जीजा ने कई हज़ार रुपए अपनी ओर से ख़र्च किए थे, तब इजमाल कैसे कहा जायगा ?"

"यह बात ठीक है कि जीजा के पास कोई पैतृक धन नहीं था और न गङ्गाधर ने आज तक कुछ उपार्जन किया है, तथापि उन्होंने उसे बराबर अपने साथ रक्खा और तुम भी रख रही हो। इतने से ही परिवार इजमाल कहा जा सकता है और वस्तुतः इसके लिए यह कोई आवश्यक बात नहीं कि हर एक संयुक्त कुटुम्बी धन कमाए। कई भाइयों या सपिण्डों का एक साथ रह कर खाना-पीना, पूजा-पाठ, और कारबार करना ही अलम् है।"

"यदि ऐसी बात है तो फिर मेरा या उर्मिला का वश ही क्या है? परमात्मा जैसे रक्खेगा, वैसे रहूँगी। अपने लिए मुझे अब कोई सोच ही नहीं है, यदि उर्मिला की शादी किसी योग्य वर से हो जाय तो मैं उसकी ओर से भी निश्चिन्त हो जाऊँगी।"

"तो क्या तुम उर्मिला को भी अपने अधिकारों से वञ्चित रखना चाहती हो दीदी ?"

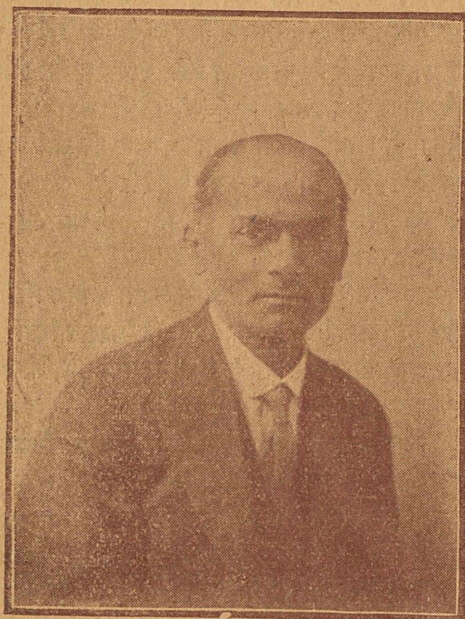
"चाहती तो नहीं हूँ, किन्तु जब क़ानून ही ऐसा बेढङ्गा है कि केवल इकट्ठा रहने के कारण स्त्रियों को अपने उत्तराधिकार से वञ्चित रहना पड़ता है, तो किसी का क्या वश ?"

"क़ानून तो दर-किनार, तुम तो ख़ुद भी संन्यास ले रही हो दीदी—इसी का अधिक भय है।"

"मेरा कुछ भय मत करो दीवू, यदि उर्मिला की भलाई के लिए मुझे कुएँ में डूबने कहोगे तो मैं वह भी करने के लिए तैयार हूँगी, लेकिन मामले-मुक़दमे की बात मैं क्या जानूँ ?"

"यह तो हमने पहले से ही सोच रक्खा है कि बिना मुक़दमा के तुम्हारी और उर्मिला की कोई गति नहीं है। मैं भी मामलेबाज़ी के विरुद्ध हूँ, किन्तु जहाँ स्वत्व की रक्षा बिना युद्ध के नहीं हो सकती, वहाँ युद्ध भी ज़रूरी हो जाता है। गङ्गाधर को जीजा ने अपने साथ रक्खा और तुम भी रखती हो—केवल इतने से ही गङ्गाधर उसका मालिक नहीं बन सकता। यह तो सब कोई जानते हैं और काग़ज़ों से भली-भाँति सिद्ध है कि कुल धन जीजा का अपना कमाया हुआ है और उसको उन्होंने बराबर अपने स्वतन्त्र अधिकार में रक्खा। ऐसी स्थिति में गङ्गाधर इजमाल रहने का लाभ नहीं उठा

सकता है। क्योंकि इजमाल ख़ान्दान में भी हर एक व्यक्ति को धन कमाने की स्वतन्त्रता है और यदि वह कोई धन स्वतन्त्र रीति से कमा कर स्वयं उसका उपभोग करता है—पारिवारिक धन में नहीं मिलाता है और न दूसरे कुटुम्बियों का उस पर संयुक्त अधिकार होने देता है—तो ऐसा धन उसका स्वतन्त्र धन कहा जायगा और ऐसे धन पर उसके बाद उसकी स्त्री, कन्या आदि का अधिकार होगा, न कि उसके इजमाल भाई या भतीजे आदि का। इसीसे यह निश्चय है कि जीजा के कुल धन पर



श्री० एच० सी० देसाँगे

आप संयुक्त प्रान्तीय एङ्गलो-इण्डियन एसोसिएशन के प्रधान हैं, जो एङ्गलो-इण्डियनों की ओर से व्यवस्थापिका सभा (यू० पी०) के प्रतिनिधि चुने गए हैं।

यथार्थ में तुम्हारा और तुम्हारे बाद उर्मिला का ही उत्तराधिकार होगा। किन्तु जो ग़लती जीजा ने कभी नहीं की, उसको तुम अपनी उदासीनता या अज्ञानता से कर रही हो। तुमने कुल काम गङ्गाधर को सुपुर्द कर दिया है। इससे तो सम्पत्ति की स्वतन्त्रता मानो नष्ट हो रही है और यह विदित हो रहा है कि यह वास्तव में दोनों भाइयों की संयुक्त सम्पत्ति है। तुम्हें शीघ्र कुल कारबार अपने हाथ में ले लेना चाहिए या हमीं लोगों के हाथ में दे देना चाहिए, नहीं तो पीछे काम ख़राब हो जायगा।"

कमला ने कहा—दीवू, यदि सुनीति बाबू वकील से पहले पूछते तो अच्छा होता। हाँ, एक बात कहने के लिए तो मैं भूल ही गई थी।

कमला इतनी बात कहती हुई घर के अन्दर चली गई और अपने बक्स से एक काग़ज़ निकाल कर ले आई। उसे दिवाकर के हाथ में देकर कहने लगी—जब तुम्हारे जीजा अधिक अस्वस्थ होने लगे, तो उन्होंने शायद इस काग़ज़ के ज़रिए धन का कुछ बटवारा किया था। उन्होंने इसे मुझे रखने को दिया और कहा कि इसी के अनुसार कुल काम होगा। किन्तु मुझे तो उनकी बीमारी में और किसी बात का ध्यान ही न था। आज दो महीने के बाद अकस्मात इसकी याद आ गई है।

दिवाकर ने उस काग़ज़ को ध्यान से पढ़ कर देखा। वह कमला के मृत स्वामी सुरेश बाबू का अन्तिम "विल" (वसीयतनामा) था। उसके अनुसार जायदाद के एक चौथाई भाग पर गङ्गाधर का और शेष तीन चौथाई पर कमला का अधिकार दिया गया था। उस पर सुरेश बाबू के अपने दस्तख़त के अलावा सुनीति बाबू वकील और श्यामा बाबू डॉक्टर के भी हस्ताक्षर थे।

दिवाकर मामले-मुक़दमे का हाल भली-भाँति जानता था और ख़ुद भी बहुत-कुछ विचार कर सकता था। उसने कहा—तब तो अधिक बखेड़े की आवश्यकता भी नहीं है दीदी!

"तो क्या अब किसी मामले की ज़रूरत नहीं है?"

"है तो ज़रूर, लेकिन बखेड़ा बहुत कम है। तुम्हें अब उत्तराधिकार पत्र (Succession Certificate) के बदले ज़िला-जज के न्यायालय में 'प्रोबेट' के लिए दरख़्वास्त करनी होगी और वह तुम्हें आसानी से मिल सकेगी। इसमें शक नहीं कि तुम्हें सम्पत्ति का ¾ ही मिलेगा, तथापि अब इजमाल या स्वतन्त्र धन का कोई बखेड़ा नहीं रहा। गङ्गाधर के लिए भी अब तुम्हें कोई चिन्ता नहीं होनी चाहिए। उसे भी एक चौथाई दी गई है।"

"यह प्रोबेट का मुक़दमा किसे लड़ना पड़ेगा दीवू?"

"लड़ना तो शायद किसी से नहीं पड़ेगा, किन्तु यदि गङ्गाधर की नीयत ख़राब हो और वह चतुर्थांश से सन्तुष्ट

न हो और इजमाल रहना ग़नीमत समझ कर सारी सम्पत्ति चाहे तो उसी से लड़ना पड़ेगा, और किसी से नहीं।"

कमला को फिर एक बार घृणा सी उत्पन्न हो गई और वह कुछ खिन्न होकर बोली—यही तो भारी आपत्ति की बात है, अपने सगों में लड़ाई उठे। यदि इसका कोई बचाव होता तो बहुत अच्छा था। देखो न दीवू! गङ्गाधर का स्वभाव इतना अच्छा है कि मुझे घर-बार की कोई चिन्ता नहीं रहती है। वह कुल काम मुझसे ही पूछ कर करता है। छोटी बहू का स्वभाव ज़रूर कुछ रूखा है, परन्तु यदि गङ्गाधर ठीक है, तो उसकी क्या चिन्ता है? सच पूछो तो गङ्गाधर के भले व्यवहार के कारण ही मुझे आज तक कोई दूसरा ख़्याल नहीं हुआ है। मैं इस विल को भी इसी कारण भूली हुई थी।"

"दीदी, तुम नहीं समझती हो। 'भानु कमल-कुल पोषण हारा, बिनु जल जारि करहि सो छारा'—क्या तुमने गुसाईं तुलसीदास की इस वाणी को नहीं सुना है? यह सब मीठा व्यवहार केवल इसलिए है कि तुम्हारा वह अस्त्र व्यर्थ हो जाय। नहीं तो पीछे तुम्हें कोई उपाय नहीं रहेगा, और न उर्मिला को ही अपनी पैतृक सम्पत्ति मिल सकेगी।"

"तो क्या उनका लिखा हुआ 'विल' कुछ दिन के बाद तमादी हो जायगा, दीवू?"

"नहीं, 'विल' तो तमादी कभी नहीं होता, फिर उसमें तुम्हारे बाद उर्मिला का उत्तराधिकार दिया गया है और वह अभी नाबालिग़ है। जब वह १८ वर्ष की हो जायगी तो उसके बाद भी वह इसका मामला उठा सकती है, किन्तु अदालत को सभी बातें देखनी पड़ती हैं। यदि 'प्रोबेट' की दरख़्वास्त तुम्हारी ओर से समय पर नहीं दी जायगी और विलम्ब का कोई समुचित कारण अदालत को नहीं बतलाया जायगा, तो उसकी सच्चाई में बहुत सी आपत्तियाँ खड़ी हो सकती हैं और फिर तुम्हें प्रोबेट नहीं मिल सकेगा।"

कमला ने अपने भावों को छिपाते हुए कहा—बहुत अच्छा दीवू, तुम जैसा कहते हो वैसा ही होगा, परन्तु उर्मिला की शादी भर ठहर जाओ। इस बीच में सुनीति बाबू वकील से भी राय ले लो।

दिवाकर से भी यह बात छिपी नहीं रही। वह समझ गया कि अभी कमला किसी भाँति मुक़दमे के लिए तैयार नहीं हो सकेगी। इसलिए उसने कमला को कुछ समय देना ही अच्छा समझा और अन्त में—"जैसी तुम्हारी इच्छा" कह कर उसने बहिन से विदा ली।

२

एक समय था, जब कमला की ज़रा सी हँसी से सम्पूर्ण परिवार में समृद्धि की वर्षा होती थी और उसकी त्योरी चढ़ जाने से प्रलय होता था। परन्तु आज तो वह



श्री० बी० एन० दे
आप कलकत्ता कॉरपोरेशन के स्पेशल ऑफ़िसर हैं।

दिन का चाँद हो रही है। उसे कोई पूछता तक नहीं और न पूछे जाने की उसे कोई स्पृहा ही है। जब से सुरेश बाबू की मृत्यु हुई है, तब से कमला ने अपने को सम्पूर्ण रूप से तपस्विनी बना लिया है। उसने मानो संसार से अपना नेह-नाता तोड़ कर परमात्मा से जोड़ लिया है। एक उच्च कुल की हिन्दू-विधवा के लिए जिन-जिन नियमों और आचरणों की आवश्यकता होती है, कमला ने सबको अङ्गीकार कर लिया है। उसकी सारी आशाएँ-कामनाएँ अब उर्मिला के लालन-पालन और शिक्षण में केन्द्रीभूत हो गई हैं। घर के मालिक अब गङ्गाधर और उसकी स्त्री माया हैं। माया और गङ्गाधर के स्वभाव में बहुत अन्तर था, किन्तु गङ्गाधर अब तक उसके वशीभूत नहीं हुआ

था। उसने अब तक अपने व्यवहारों में कमला के प्रति कोई फ़र्क़ नहीं आने दिया था। हो सकता है, उसकी नीति यह रही हो कि यदि भौजाई से बिगड़ जाऊँ तो कहीं 'प्रोवेट' का मामला न दायर हो जाय। परन्तु ऐसे सन्देह का भी अब तक कोई मौक़ा नहीं आया था। यही कारण है कि दिवाकर के बहुत-कुछ कहने-सुनने पर भी कमला ने प्रोवेट के लिए अदालत में मामला उठाने का विचार सहसा पसन्द नहीं किया।



श्री० ए० एम० राऊज़
आप भारत-सरकार के प्रधान इञ्जीनियर हैं।

परन्तु यह स्थिति बहुत दिनों तक नहीं रह सकी। क्योंकि माया वास्तव में बड़ी मायाविनी स्त्री थी। वह गङ्गाधर को दिन-रात कोसा करती कि इस गुलामी से मर जाना अच्छा है। यदि तुम्हें यों ही ज़िन्दगी बसर करना है, तो तुम रहो, मैं अपने मायके चली जाती हूँ। मुझे तो तुम जैसे गुलामों की गुलामी हर्गिज़ पसन्द नहीं है। जब देखो तब उर्मिला के लिए साड़ी, ज़ेवर और कपड़े चाहिए। मानो दूसरा कोई इस परिवार में है ही नहीं। गङ्गाधर बारम्बार उसे समझाता था कि तुम्हें समझ कर बोलना चाहिए। कुल धन भाई का अपना उपार्जित है और उस पर भाभी का पूर्ण अधिकार है। परन्तु भाभी ने तो कुल भार तुम्हारे और मेरे ऊपर अर्पण कर दिया है। वह तो उर्मिला के लिए भी कुछ नहीं कहतीं। फिर उर्मिला के अतिरिक्त परिवार में है ही कौन, जिसके लिए कुछ किया जाय। इसके लिए तुम्हें असन्तुष्ट नहीं होना चाहिए, बल्कि भाभी के साथ पूर्ण शिष्टता और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए। और यदि उर्मिला का तुम्हें बहुत साल है, तो यह बिल्कुल निराधार है। वह तो घर की पाहुनी है। आज है, कल शादी होगी और चली जायगी।

इस प्रकार की चढ़ा-उतरी दोनों पति-पत्नी में बराबर हुआ करती थी। परन्तु गङ्गाधर इन सब झमेलों को पार करता हुआ किसी प्रकार परिवार का सामञ्जस्य निबाहे चला जाता था। आज एकाएक स्थिति बहुत भयानक हो गई। कारण यह था कि उर्मिला की शादी की बातचीत पालनपूर के एक प्रतिष्ठित रईस के यहाँ हो रही थी। किसी प्रकार सात हज़ार से होते-होते पाँच हज़ार रुपए दहेज पर यह बातचीत प्रायः पक्की हो चुकी थी। आज एकाएक लड़के के बाप ने यह सूचना दी कि तिलक बिल्कुल नहीं लिया जायगा। कमला का तो कुछ पूछना ही नहीं, गङ्गाधर को भी इसकी ख़ुशी बहुत हुई और वह अपनी स्त्री को यह सूचना इस प्रकार देने आया—देखो, तुम बराबर इस सम्बन्ध का विरोध करती थीं कि इसमें बहुत ख़र्च है, घर बर्बाद हो जायगा, किन्तु न जाने परमात्मा ने कैसा चक्र चलाया है कि लड़के के पिता ने ख़ुद ही तिलक की रक़म लेने से बिल्कुल इन्कार कर दिया है। अब तो तुम्हें कोई उज़्र नहीं होना चाहिए।

माया ने विष की हँसी हँस कर कहा—तुम जैसे बुद्धू हो, तुम्हारी भाभी वैसी नहीं हैं। याद रक्खो, यदि वहाँ उर्मिला की शादी हुई, तो मैं ज़हर खा लूँगी और तुम्हारा तो मानो सर्वनाश हो जायगा।

गङ्गाधर—अरी तुम पागल हो गई हो क्या?

माया—पागल तो तुम हुए हो कि अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारने चले हो।

गङ्गाधर—आख़िर बात क्या है? ज़रा मैं भी तो कुछ समझूँ?

माया—तुम क्या समझोगे? तुम्हें तो भाभी की

भक्ति और उर्मिला की उन्नति चाहिए। तुम तो तिलक के बचने पर बाग़-बाग़ हो रहे हो, परन्तु तुम्हें क्या मालूम कि तुम्हारे सत्यानाश का षड्यन्त्र रचा जा रहा है।

गङ्गाधर—आख़िर, कुछ कहो भी तो?

माया—तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गया है। तुम्हें यह भी तो सोचना चाहिए कि पालनपूर के ज़मींदार कुछ देवता नहीं हैं कि ५ हज़ार की गहरी रक़म योंही छोड़ देते हों। ज़रूर ही किसी विशेष लाभ के लिए ऐसा किया जा रहा है।

गङ्गाधर—तो वह कौन सा बड़ा लाभ है? मुझे तो उस आदमी से यही मालूम हुआ है कि और कोई बात नहीं है। लड़के ने स्वयं तिलक लेकर विवाह करना अस्वीकार कर दिया है और उसके पिता को मजबूर होकर छोड़ना पड़ा है।

माया—हाँ, ऊपर से तो कोई कारण दिखाने के लिए अवश्य चाहिए।

गङ्गाधर—तो इसका भीतरी कारण क्या है?

माया—कारण और चाहे कोई समझे या नहीं, मैं तो ख़ूब समझ रही हूँ। इसका असली कारण यही है कि उन्हें "विल" की ख़बर लग गई है और वे धन के लोभ से ऐसा कर रहे हैं। यदि बड़ी बहिन मामला न उठावेंगी, तो वे लोग ख़ुद उठावेंगे और तुमसे भीख मँगवाएँगे।

गङ्गाधर को यह बात बारह आने जँच गई, किन्तु उसने अपने हृदय के भावों को छिपाते हुए पूछा—तो फिर इसका उपाय क्या है? यदि विल के अनुसार चलेंगे तो उन्हें जायदाद का तीन चौथाई मिलेगा—तो भी एक चौथाई तो मेरा ही रहेगा।

माया—इसीलिए तो मैं कहती थी कि मुझे यह ग़ुलामी पसन्द नहीं है। हर एक मुश्किल का उपाय है, किन्तु नामर्दी का कोई उपाय नहीं है।

गङ्गाधर—तो तुम्हारी क्या राय है?

माया—मेरी तो स्पष्ट राय यही है कि यह सगाई रोक दी जाय और मेरे भतीजे गिरधारी से उर्मिला की शादी की जाय। वह भी तो बड़ा अच्छा लड़का है। सब तरह से उर्मिला के योग्य है। कुल बातें अपने घर में रह जायँगी।

यदि आज सुरेश बाबू जीवित होते तो उर्मिला के सम्बन्ध में ऐसी चर्चा स्वप्न में भी नहीं होती। एक निरे मूर्ख और उजड्ड से उर्मिला जैसी सर्वगुण-सम्पन्ना कन्या का विवाह होना सचमुच विवाह की हत्या है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए गङ्गाधर ने पूछा—किन्तु भाभी को यह सम्बन्ध पसन्द हो तब तो?

माया ने ताने के साथ उत्तर दिया—भाभी को तो सूर्य और चाँद का टुकड़ा चाहिए, किन्तु वह मिले तो कैसे? और जब तुम्हीं नापसन्द करते हो तो तुम उन्हें क्योंकर समझा सकोगे? तुमसे यह काम नहीं होगा। तुम चुपचाप बैठो, मैं उन्हें ख़ुद समझा लूँगी।



श्री० रायबहादुर राजा अवधनारायण बिसरिया

आप भोपाल के सुप्रसिद्ध राजभक्त हैं, जो नवाब-साहब की अनुपस्थिति में 'राज्य-सञ्चालन केबिनेट' के सदस्य चुने गए थे।

गङ्गाधर—परन्तु पालनपुर की सगाई के लिए दिन स्थिर हो गया है, उसका क्या होगा?

माया ने निर्भरता के साथ उत्तर दिया—उसे रोकना होगा और यदि ऐसा नहीं करोगे तो मैं विष खा लूँगी।

३

लगन का दिन टलता गया और कमला की बेचैनी बढ़ती गई। उसे अब कई प्रकार के सन्देह होने लगे।

उसने अपने भरसक कोई कष्ट सहने में कोर-कसर नहीं की थी, किन्तु प्रत्येक वस्तु की एक सीमा होती है। आज कमला के दुख की सीमा नहीं है। उसके दिल का केवल एक ही अरमान था—उर्मिला की शादी। माया ने बड़ी चतुरता से पालनपुर की सगाई रोकने और अपने भतीजे के साथ सगाई करने का प्रस्ताव किया। किन्तु इससे कमला का दुख दूना हो गया। उसने अन्त में यह कह कर टाल दिया कि अभी तो शादी नहीं होती है—केवल मँगनी होती है। तो भी यदि तुम्हारी



श्री० जस्टिस पुलन, आई० सी० एस०

आप लखनऊ अवध चीफ़कोर्ट के जज थे, जो इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज नियुक्त किए गए हैं।

ऐसी ही इच्छा है तो गङ्गाधर से पूछ लूँ। कमला को विश्वास था कि गङ्गाधर हर्गिज़ माया का प्रस्ताव पसन्द नहीं करेगा। उसने उसके भावों को जानने के लिए एकान्त में बुला कर पूछा—क्यों लाला, तुम्हें भी पालनपुर की सगाई नापसन्द है?

गङ्गाधर ने उत्तर दिया—नापसन्द होने की तो कोई बात नहीं है, परन्तु जिस बात से और भी ज़्यादे पसन्द होना उचित था, उसीसे मुझे सन्देह हो रहा है।

कमला—क्या तिलक की रक़म उन लोगों ने छोड़ दी है, इसीसे तुम्हें कुछ सन्देह हो रहा है?

गङ्गाधर—हाँ, इसीसे सन्देह में पड़ गया हूँ कि आख़िर जब तक लड़के या घर में कोई भारी ऐब नहीं है, तब तक इस तरह एकाएक वे लोग क्यों गिरने लगे?

कमला—तो तुम्हारी क्या राय है, वही जो माया कहती है?

गङ्गाधर—नहीं, यह तो मेरी राय नहीं है, परन्तु इतना अवश्य है कि गुप्त रीति से पालनपुर के विषय में सभी बातों का पता लगा लूँ—तब पीछे सम्बन्ध स्थापित हो।

कमला ने शपथ देकर पूछा—यदि कोई दूसरी बात हो तो मुझे स्पष्ट कहो। तुम जानते हो कि मैं तुम्हारे प्रति कैसा बर्ताव रखती हूँ और छोटी बहू मेरे प्रति कैसा बर्ताव रखती है। यदि उसकी बातों में पड़ कर तुम ऐसा कर रहे हो तो तुम ग़लती पर हो। तुम मुझसे कोई बात मत छिपाओ।

गङ्गाधर ने शपथपूर्वक कहा कि वैसी कोई बात नहीं है। केवल उर्मिला के हित की कामना से ही ऐसा कहता हूँ।

कमला ने अपने हृदय के भावों को पूर्णतया छिपाते हुए कहा—अच्छी बात है, पता लगाओ।

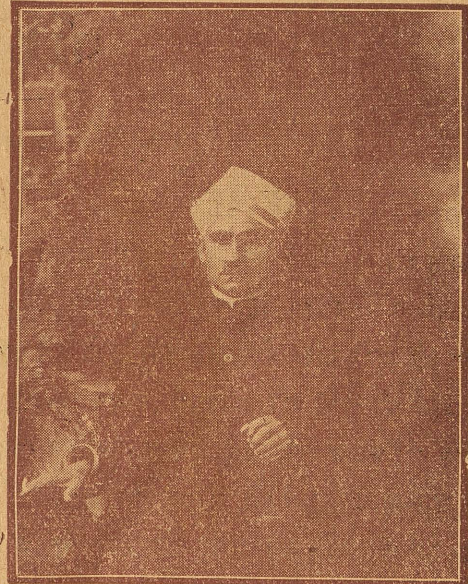
गङ्गाधर चला गया, किन्तु कमला ने एक गहरी साँस लेकर आप ही आप कहा—अब साधुता की भी हद हो गई। मेरे प्राण और प्रण भले ही चले जायँ, किन्तु उर्मिला की शादी मूर्ख वर से नहीं होने दूँगी। अब यदि मुझे मामला ही उठाना पड़े तो मेरा क्या दोष है?

घर की बूढ़ी दाई से कमला को सारे षड्यन्त्र का पता लग चुका था। वह बड़ी ईमानदार थी। कमला की असहायावस्था देख कर वह पहले की अपेक्षा और भी अधिक सचेत हो गई थी और जहाँ जो कुछ सुनती थी, कमला को तुरन्त उसकी ख़बर दे देती थी। कमला ने गङ्गाधर को सिर्फ़ सचाई की जाँच करने के लिए बुलाया था, वरना उसे सभी बातें मालूम थीं। जब गङ्गाधर ने अपने धर्म और ईमान को ताक़ पर रख दिया तो कमला के विषाद का ठिकाना न रहा। उसे दिवाकर की बातों का सहसा स्मरण हो आया और उसने निश्चय कर लिया कि पालनपुर का सम्बन्ध ही पक्का किया जावे।

दिवाकर बड़ा ही कुशल व्यक्ति था। उसने केवल सगाई का ही प्रबन्ध नहीं किया, बल्कि प्रोबेट लेने का भी पक्का इरादा कर लिया। बड़ी शीघ्रता से उर्मिला की शादी पालनपुर हो गई और प्रोबेट का मामला भी दायर कर दिया गया। अब गङ्गाधर भी छिपा हुआ रुस्तम नहीं रहा। उसने अपनी शक्ति भर ख़ान्दान को इजमाल और 'विल' को जाली साबित करने की चेष्टा की। रुपए को पानी के समान बहा दिया। लगभग ३ वर्षों तक मामला चलता रहा। हाईकोर्ट तक लड़ाई हुई। किन्तु अन्त में 'डिक्री' कमला को ही मिली। मामले के ख़र्च में गङ्गाधर का सारा अंश पहले ही बिक चुका था, अब उसके पास फूँक कर खाने के लिए भी कुछ नहीं था। कुल धन की मालकिन कमला क़रार दी गई। उसे 'प्रोबेट' मिल गया।

गङ्गाधर को अपनी करनी का फल पूर्ण रीति से मिला। माया तो उसके समीप सिर उठाने की भी हिम्मत नहीं कर सकती थी। दोनों पति-पत्नी अपने दुर्भाग्य पर असीम चिन्ता करने लगे। सचमुच अब उनका भविष्य नितान्त अन्धकारपूर्ण हो गया। वे जानते थे कि कमला के पास अब भी काफ़ी उदारता है, किन्तु अपनी कृतघ्नता की कालिमा उन्हें उसका उपयोग नहीं करने देती थी। गङ्गाधर जानता था कि कपट की खटाई ने सारे दूध को पानी बना दिया है और वह अब किसी प्रकार दूध के रूप में नहीं लाया जा सकता है। तो भी माया बारम्बार उसे कहती, कि जो कुछ होना था हो गया, अब उनके पैरों पर गिरने से ही हम लोगों की भलाई होगी। तुम अब किसी बात का विचार मत करो—उनसे दया की भिक्षा माँगो। मुझे विश्वास है कि वे तुम्हारा निरादर नहीं करेंगी। मैं स्वयं उनसे कह सकती हूँ, किन्तु मेरी बातों का कोई मूल्य नहीं है। परन्तु गङ्गाधर भाभी के पैरों पर पड़ने का साहस नहीं कर सकता था। अवस्था यहाँ तक पहुँची कि महाजनों ने गङ्गाधर का कुल सामान भी नीलाम करवा लिया और वह निरा कङ्गाल हो गया।

कमला को मामले के दिनों में दिवाकर की राय के अनुकूल चलने की मजबूरी थी, क्योंकि मामले की पैरवी उसीके द्वारा होती थी। कमला के जामाता और समधी ने, जो बड़े उच्च विचार के लोग थे, इस गृह-कलह से सहसा पड़ना अच्छा नहीं समझा। इसलिए यद्यपि उन्होंने समय-समय पर ख़र्च का प्रबन्ध कर दिया था, तथापि मामले का कुल भार दिवाकर के ऊपर ही छोड़ दिया गया था। सुतरां मामला हासिल होने के पूर्व से ही कमला की जायदाद का प्रबन्ध भी दिवाकर ने अपने हाथों में ले लिया था। अब डिक्री मिलने से उसका हौसला इतना बढ़ गया कि वह ख़ुद अपने को कुल धन का मालिक समझने लगा। एक ओर जहाँ गङ्गाधर को



दीवान बहादुर श्री० राजा धर्मप्रवीण

आप मैसूर-स्टेट के चीफ़ जज हैं, जिन्होंने हाल ही में अपनी स्त्री की स्मृति में बङ्गलोर के नए शिशु-रक्षिणी समिति के अस्पताल को २०,००० रुपयों का दान दिया है।

फूटी कौड़ी भी नसीब नहीं थी, वहाँ दूसरी ओर दिवाकर के घर के ऐरे-ग़ैरे सभी लोग वहाँ आकर मौज उड़ाने लगे। कमला को यह बात अखरने लगी। उसने सोचा—आख़िर गङ्गाधर मेरा सपिण्ड है और मरने पर पूरे अशौच का अधिकारी है। यद्यपि उसने कृतघ्नता की है, तथापि उसके लिए कुछ प्रबन्ध करना ही चाहिए। उसने अपने समधी और जामाता को बुला कर अपना वचार प्रकट किया। यह निश्चय हुआ कि एक प्रमाण-पत्र गृह-प्रबन्ध (Family Arrangement) का

लिखा जावे, जिसके अनुसार आधा धन उर्मिला को दिया जाय और शेष आधे के बराबर-बराबर भाग पर क्रमशः कमला और गङ्गाधर का अधिकार हो। कमला ने यह भी निश्चय किया कि उसके मरने पर उसका हिस्सा 'कॉङ्ग्रेस कमिटी' को समर्पित कर दिया जाय।

गङ्गाधर भी बुलाया गया और उसे उस प्रमाण-पत्र में सम्मिलित होने को कहा गया। मानो प्यासे के पास कुआँ आया, उसके हर्ष का ठिकाना न रहा। वह कमला के पैरों पर पड़ कर रोने लगा। कमला ने प्रेम से उठा लिया और उसी प्रकार दस्तावेज़ प्रस्तुत करा दिया। गङ्गाधर बस गया, किन्तु कुछ दिनों के बाद कमला चल बसी। अब उसके स्मारक में कॉङ्ग्रेस कमिटी ने एक मकान बनवाया है, जिसका नाम "कमलालय" रक्खा गया है और उसी में अब कॉङ्ग्रेस ऑफ़िस है।

वीर-नख-शिख

[राजकवि पं० अम्बिकाप्रसाद जी भट्ट, "अम्बिकेश"]

वीर-भृकुटी

वृश्चिक सी व्यालिनी सी, व्याघ्रिनी विघातिनी सो
बैरिन विनाशन की, त्रासन की त्रिकुटी।
काल की छुरी सी, जोर जोगिनी जुरी सी जङ्ग,
धर्म की धुरी सी, धर्मधारिन की मुकुटी।
छीनन की स्वत्व सी, समूल स्वत्व धारिन की,
पालक अधीनन की, दीनन की लकुटी।
वज्र की कनी सी, बड़वागी की जनी सी, घनी
सहस फनी सी बनी, वीर तेरी भृकुटी।

✳

मसकि मरोर जैहैं, शेष के सहस फन,
घसकि बसुन्धरा रसातल को जावैगी।
उथल-पुथल मचि जैहै रत्नाकर मैं,
द्वादश प्रभाकर की प्रभा प्रकटावैगी।
शोणित की सरिता बहैगी दिशि घूमि-घूमि,
भूमि-भूमि जोगिनी जमाति हहरावैगी।
धावैगी तमाम धँधकार सी महीतल पै
तेरी बङ्क भृकुटी कहूँ जो चढ़ि जावैगी॥

वीर-ललाट

कैधौं भ्रू कमान के करन कमनैती हेत,
चौतरो बनायो विधि बैरिन को पाट है।
कैधौं वीर-रस के उमङ्ग ज़ङ्ग सीखिबे को
पट्टिका बनाई अति सुघर सुठाट है।
रोष रसखानी रिपु-रक्त में नहानी दीठि,
ताकी श्रमहानी को बिछाई किधौं खाट है।
वज्र को कपाट, पीठि कच्छप सपाट कैधौं,
वीरवर तेरो यह उन्नत ललाट है।

✳

सुमति सँचारन को, कुमति उचारन को,
जङ्ग जैतवारन बनायो आलबाल है।
बल को जहाज़ है, अबल बलहीनन को,
प्रबल अधीनन को, दीनन को ढाल है।
शत्रुन के शालन को, पैज प्रण पालन को,
कुटिल करालन को काल विकराल है।
लेन को तिलक मनो सारे भूमि-मण्डल को,
विरच्यो विरञ्चि वरवीर तेरो भाल है।

प्रेत-छाया-चित्रण अर्थात् मृत व्यक्तियों की फ़ोटोग्राफ़ी

[डॉ० गोरखप्रसाद जी, डी० एस-सी०, प्रयाग विश्वविद्यालय]



प्रेत-छाया-चित्रण ने अनेक दुखी हृदयों को सान्त्वना दी है। इसलिए कितने लोग इस प्रश्न की जाँच करने में कि, वास्तव में प्रेत-छाया-चित्र खींचे जा सकते हैं या नहीं, हिचकते हैं। परन्तु सच्ची बात क्या है, इसे समझने की अवश्य चेष्टा करनी चाहिए।

इस सम्बन्ध में हमें इस विषय के इतिहास से यथेष्ट शिक्षा मिलती है। प्रेत-छाया-चित्रण का आविष्कार ममलर (Mumler) नामक एक व्यक्ति के द्वारा, सन् १८६१ ई० में हुआ। इस वर्ष उसने अमेरिका के बोस्टन शहर में एक प्रेत-चित्रशाला खोली। उसने अपने जीवन-चरित्र में लिखा है कि एक बार वह किसी मित्र की स्टूडियो (चित्रशाला) में बेकार बैठा हुआ था, एकाएक उसके मन में आया और उसने कैमरा लेकर अपना एक फ़ोटोग्राफ़ उतार डाला। परन्तु जब उसे धोने (डेव्लप करने) लगा तो उसने देखा कि 'प्लेट' (चित्रपट) पर उसके अतिरिक्त उसकी बहिन का भी फ़ोटो खिंच गया है, तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही ; क्योंकि इस घटना से लगभग १२ वर्ष पूर्व वह मर चुकी थी।

ममलर तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रेत-छाया-चित्रण का काफ़ी प्रचार हो जाने के बाद कई वैज्ञानिक भी इस ओर आकर्षित हुए। इनमें से कुछ ने इस प्रश्न का निर्णय करना चाहा कि क्या सचमुच ये चित्र वास्तविक प्रेतों के फ़ोटोग्राफ़ हैं? क्या यह सम्भव है कि प्रेत मनुष्य की आँखों को तो न दिखलाई पड़ें, परन्तु उनका फ़ोटोग्राफ़ खिंच जाय? जे० टी० टेलर (J. T. Taylor) ने इस बात की परीक्षा के लिए दो कैमरों से साथ ही फ़ोटो लेना निश्चय किया। उसे तुरन्त पता लगा कि ये चित्र सच्चे प्रेतों के नहीं हैं, क्योंकि ये दोनों कैमरों में एक से नहीं आते थे और कभी-कभी तो चित्र एक ही कैमरे में आता था, दूसरे में नहीं। फिर दूसरे व्यक्तियों ने पता लगाया कि बॉक्स के भीतर बन्द प्लेटों पर, बिना उन्हें कैमरे में चढ़ाए भी, प्रेतों के चित्र उतर सकते हैं। इन चित्रों को प्रेत-छाया-चित्र या प्रेत-फ़ोटोग्राफ़ नहीं कहते, इनको प्रेत-लिपि (Psychographs) कहते हैं। कभी-कभी इन प्रेत-लिपियों में चित्र के साथ प्रेतों की ओर से सन्देश भी आ जाते हैं। प्रेत-लिपियों के आविष्कार से यह प्रत्यक्ष हो गया कि प्रेत का चित्र नहीं उतरता। प्रेत कैमरों में या बन्द बॉक्स में घुस जाता है और प्लेट पर, अपना या अन्य किसी का, चित्र या सन्देश जमा ("Precipitate") देता है।

प्रेत-चित्रण-कला उन्नति के शिखर पर तब पहुँची जब कि प्रेत दर्शकों की आँखों के सामने ही अपना काम करने लगे। अमेरिका के शिकागो शहर में दो बहिनें रहती थीं, जिनको लोग बैंग्स-बहिनें (The Bangs Sisters) कहते थे। इनमें ऐसी शक्ति थी कि ये दर्शकों के सामने ही, बड़े आकार का रङ्गीन और बहुत बढ़िया चित्र, प्रेतों से खिंचवा देती थीं, कोई मनुष्य चित्र-पट या लेखनी को छूता तक भी न था। यदि प्रत्यक्ष-दर्शियों की गवाही सच्ची मानी जाय, तो इन बहिनों की करामात से सबको विश्वास हो जाना चाहिए कि प्रेत सचमुच होते हैं, और केवल लुके-छिपे, बॉक्स के अन्दर घुस कर ही नहीं, बल्कि आँखों के सामने भी अपना अमानुषिक कार्य दिखला सकते हैं; नहीं तो क्या २० मिनिट में कभी भी ऐसा चित्र बन सकता, जिसके रँगने में चतुर चित्रकार के भी २० घण्टे लग सकते थे।

प्रेतों के अस्तित्व का प्रमाण छाया-चित्रों से भी वैसा ही ज़ोरदार मिलता है, क्योंकि सैकड़ों व्यक्तियों ने

सौगन्ध खाकर इस बात की घोषणा की है कि प्रेत-छाया-चित्र आदि से अन्त तक उनकी उपस्थिति में और ऐसे प्लेटों पर, जिनको उन्होंने स्वयं किसी दूसरे शहर से मोल लिया था, खींचे गए हैं और छल-कपट करने का कोई भी अवसर प्रेत-चित्रकार को नहीं मिलने पाया।

अब विपक्षियों की बात पर भी ध्यान देना उचित होगा। इनका विश्वास है कि प्रेत-छाया-चित्रण केवल धूर्त्तता है। इसके प्रमाण में वे प्रेत-फ़ोटोग्राफ़रों के जीवन-चरित्र पेश करते हैं। ममलर के एक ग्राहक को इस बात का पता लगा कि फ़ोटोग्राफ़ लेते समय कोई चुपके से आकर पीछे खड़ा हो जाता है। इसके फल-स्वरूप ममलर की इतनी हँसी हुई कि उसका रोज़गार ही उखड़ गया। सात-आठ वर्ष बाद उसने फिर सर उठाया। अब की बार उसने न्यूयॉर्क में अपना अड्डा जमाया, परन्तु थोड़े दिनों तक ख़ूब धन कमाने के बाद उस पर सरकार ने धूर्त्तता से पैसा पैदा करने के अभियोग में मुक़द्दमा चलाया। काफ़ी सुबूत न मिलने के कारण वह अदालत से छूट तो गया, परन्तु जनता का विश्वास उस पर से पूर्णतया उठ गया और वह फिर दिखाई नहीं पड़ा।*

बूगे (Buguet), जो फ़्रान्सीसी था, सचमुच बड़ा होशियार था। उसके बनाए छाया-चित्र अत्यन्त आश्चर्यजनक होते थे। इसके काम को सभी प्रेत-विश्वासी और कई एक बड़े आदमी सच्चा समझते थे। १८७४ में वह इङ्गलैण्ड आया और यहाँ भी हज़ारों मनुष्यों के दिलों में यह विश्वास करा दिया कि उसका काम सच्चा है; परन्तु अभाग्यवश उसके फ़्रान्स लौटने के कुछ दिन बाद ही पुलिस ने उसे गिरफ़्तार किया। बेईमानी से धनोपार्जन करने का उस पर अभियोग लगाया गया। इस मुक़द्दमे में उसने सारी बातें स्वीकार कर लीं। उसने बतलाया कि उसके सहायक चुपके से पीछे खड़े हो जाया करते थे, या प्लेट पर दोबारा प्रकाश-दर्शन दे दिया जाता था। कुछ समय बाद जब उसने देखा कि कई सहायक रखने में ख़र्च अधिक बैठता है, तब वह बहुत से गुड्डे और गुड़ियों की सहायता से काम चला लेता था। कचहरी में एक बॉक्स मूर्तियाँ भी पेश की गईं। इन मूर्तियों को उचित कपड़ा पहना कर दोबारा प्रकाश-दर्शन देने से भूत पैदा होते थे।*

इस मुक़द्दमे में सब से अधिक विचारणीय बात यह हुई कि बीसों फ़्रेञ्च प्रेत-विश्वासी भलेमानुसों ने सौगन्ध खाकर यह बात स्वीकार की कि फ़ोटोग्राफ़ में आई हुई सूरतें उनके मृत सम्बन्धियों की हैं। बात यह थी कि बूगे का क्लार्क बड़ा चाईं था। मीठी-मीठी बातें करके आने वालों से उनके मृत-सम्बन्धियों के बारे में वह दो-चार बातों का पता लगा लिया करता था और मूर्तियों को उसी के अनुसार कपड़े पहना दिया करता था।

इस मुक़द्दमे में प्रेत-छाया-चित्रकारों की ऐसी पोल खुली कि उनके विषय में पचीस-तीस वर्ष तक कुछ भी सुनने में नहीं आया। फिर जब अमेरिका में लोगों के छलने की अधिक सूक्ष्म रीतियाँ निकाली गईं, तब प्रेत-छाया-चित्रण की चर्चा फिर उठी।

स्थानाभाव के कारण हडसन (Hudson) और एडवर्ड विली (Edward Wyllie) के भण्डाफोड़ का ब्योरेवार उल्लेख न करके हम केवल होप (Hope) के विषय में लिखते हैं, जो सर आर्थर कोनान डॉयल (Sir Arthur Conan Doyle) के कथनानुसार ग्रेट-ब्रिटेन का सब से बढ़ा-चढ़ा प्रेत-चित्रकार है। यद्यपि होप सदैव ही प्रेत-छाया-चित्रण में लगा रहता है—यही उसकी जीविका है—तो भी ब्रिटिश प्रेत-शोधक-सङ्घ (The Society for Psychic Research) के बार-बार प्रार्थना करने पर भी वह अपने कार्य-क्रम की जाँच करने देना स्वीकार नहीं करता था। सर आर्थर भी इस सम्बन्ध में उसका समर्थन करते थे, क्योंकि उनका कहना है कि विश्वासियों को जाँच की आवश्यकता ही नहीं रहती और श्रद्धा-रहित लोगों में इन जाँचों से भी श्रद्धा नहीं पैदा होती। † मैरियट (Marriot) नाम के एक सिद्धहस्त फ़ोटोग्राफ़र ने होप से प्रार्थना की कि उसे जाँच करने की इजाज़त मिले, परन्तु होप ने इसे भी अस्वीकार कर दिया। तब उसने होप को लल-कारा कि वह एक भी प्रेत-चित्र या प्रेत-सन्देश ऐसी दशा में तैयार नहीं कर सकता, जिसमें छल करने की कोई

* *Scientific American, Oct. 1922.*

* *Podmore Modern Spiritualism.*

† *The case for Spirit Photography, p. 34*

राह न हो। परन्तु होप जाँच के लिए किसी प्रकार भी राज़ी न हुआ। इतने पर भी सर आर्थर ने लोगों को विश्वास दिलाना चाहा कि होप ईमानदार है, क्योंकि सर आर्थर ने स्वयं उसके कार्य-क्रम को आद्योपान्त देखा था और उसमें धोखेबाज़ी के लिए कोई स्थान नहीं था। इस पर मैरियट ने सर आर्थर से कहा कि मेरे ऊपर भी आप ठीक वैसी ही कड़ी निगाह रखिए, जैसी आप होप पर रखते हैं। और देखिए कि मैं भी भूत बुला सकता हूँ या नहीं। सर आर्थर ने यह मान लिया और ब्रिटिश कॉलेज ऑफ़ सायकिक सायन्स (British College of Psychic Science) में मैरियट की जाँच हुई। सर आर्थर के अतिरिक्त चार परीक्षक और भी थे। मैरियट और उसके कैमरे इत्यादि की पूरी छान-बीन हुई, और उसके कुल कार्य-क्रम को लोग ध्यानपूर्वक देखते रहे, परन्तु अन्त में सबने स्वीकार किया कि कहीं भी बेईमानी नहीं की गई। तिस पर भी प्लेटों पर प्रेत-चित्र आ गए! मैरियट ने कह कर धोखा दिया और तिस पर भी सर आर्थर को पता न चला, तब वे भला होप को, यदि वह बेईमानी करता रहा हो, क्या पकड़ सकते, जासूसी उपन्यास चाहे बीसों लिख लें। *

परन्तु होप की क़लई तब खुली, जब १९२२ में प्राइस (Price) और सोसाइटी फ़ॉर साइकिक रिसर्च के अन्य सदस्यों ने उसकी जाँच की। इन लोगों ने अपना नाम होप को नहीं बतलाया और साधारण ग्राहक की तरह ३०) रु० फ़ीस देकर प्रेत-छाया-चित्र खिंचवाया। प्लेटों को मामूली दूकान से ख़रीदने के बदले प्राइस ने उनको प्लेट बनाने के कारख़ाने से (इम्पीरियल ड्राइ-प्लेट कम्पनी से) मोल लिया। प्राइस के कहने पर इस कम्पनी ने प्लेटों पर एक्स-रेज़ (X-Rays) से मुहर कर दी थी। प्लेटों को डेवलप करने पर यह मुहर दिखलाई पड़ती। इसके अतिरिक्त वे प्लेट विशेष श्रेणी के शीशे से बनाए गए थे, जिससे उनकी पहचान सहज ही में हो जाय। कार्य प्रारम्भ होने के पहले होप ने पूछा कि प्लेटों के साथ कुछ गड़बड़ी तो नहीं की गई है? उसको तुरन्त उत्तर दिया गया—"वे प्लेट ठीक उसी तरह हैं, जिस तरह वे कारख़ाने से आए थे।" इस प्रकार बिना झूठ बोले ही प्राइस ने अपना मतलब सिद्ध कर लिया।

भजन-गान और प्रार्थना के बाद होप ने प्राइस को प्लेट-घर (Dark-slide) जाँच करने के लिए दिया। प्राइस ने चुपके से प्लेट-घर को खरोंच दिया, जिसमें पीछे वह उस प्लेट-घर को पहचान सके। फिर दोनों मनुष्य अँधेरी कोठरी में गए और प्राइस ने अपने हाथ से उसमें दो प्लेट चढ़ाया। इसके बाद होप ने प्राइस से



"प्रेत"-छाया-चित्र और "प्रेत"-सन्देश!

प्रेत-छाया-चित्रण पर व्याख्यान देते समय "नए और मुहर किए" प्लेट पर ३०० दर्शकों के सामने एक बार लेखक ने यह फ़ोटो लिया था और किसी को पता न लग सका कि असली बात क्या है।

कहा कि बचे प्लेटों को बॉक्स में फिर बन्द कर दो। इधर यह कार्य होता रहा, उधर होप ने प्लेट से भरे प्लेट-घर को उठा लिया। परन्तु प्राइस था होशियार। वह हाथ से प्लेटों को काग़ज़ में लपेट कर बॉक्स में रख तो रहा था सही, पर दृष्टि उसकी छिपे-छिपे होप पर ही थी। इधर होप, मौक़ा पाकर, ज़रा सा घूम पड़ा, जिसमें उसका हाथ प्रकाश के बदले अँधेरे में हो जाय, और

* सर आर्थर *Adventures of Sherlock Holmes*, इत्यादि, कई प्रसिद्ध जासूसी उपन्यासों के लेखक हैं।

तुरन्त पहले प्लेट-घर को अपने कोट के पॉकेट में रख कर, उसके बदले दूसरा निकाल लिया। जब प्राइस ने बचे प्लेटों को बन्द कर दिया, तब दोनों अँधेरी कोठरी से बाहर निकलने के लिए उठे। अब होप ने प्राइस से कहा कि आप चाहें तो प्लेट-घर में भरे प्लेटों पर अपना हस्ताक्षर कर दीजिए। प्राइस ने कहा—इसकी क्या आवश्यकता है?

साधारण रीति से फ़ोटो खींचा गया। डेवलप करने पर प्रेत भी आए; पर इम्पीरियल कम्पनी की मुहर का कहीं पता न था, साथ ही प्लेट का शीशा भी दूसरे प्रकार का था और खरोंचवाला प्लेट-घर भी नहीं रह गया था, बचे चार प्लेटों को डेवलप करने से उन पर मुहर उभड़ी। होप का पूरा कच्चा चिट्ठा मालूम हो गया, पर इससे क्या होता है। लोगों के अन्धविश्वास पर होप अब भी चला जा रहा है।

वर्नकाम्ब (Verncombe) और मिसेज़ डीन (Mrs. Dean) भी इसी प्रकार धोखा देते हुए पकड़े गए हैं। इनकी जाँच जादूगरों की "मैजिक सरकिल" नामक सङ्घ ने की। डॉक्टर प्रिन्स (Dr. Prince) ने अमेरिका के कीलर (Keeler) की ऐसी पोल खोली कि उसका रोज़गार ही उठ गया।

ममलर से लेकर आज तक संसार भर में कुल बीस-पचीस ही प्रेत-छाया-चित्रकार हुए होंगे और इनमें से केवल पाँच ही छः ने नाम पैदा किया है, परन्तु ये सब, कभी न कभी, धोखा देते हुए पकड़े गए हैं।

अब हमें स्वयं प्रेत-चित्रों पर भी ध्यान देना चाहिए। प्रेत-विश्वासी इस बात पर बहुत ज़ोर देते हैं कि प्रेतों को लोगों ने पहचाना है। परन्तु बात असल यह है कि ये चित्र इतने अस्पष्ट और अधूरे होते हैं कि उन्हें मनुष्य जो चाहे सो समझ सकता है। पॉडमोर ने लिखा है कि बूगे के एक चित्र को एक व्यक्ति ने अपना पिता समझ कर पहचाना था, परन्तु एक दूसरे व्यक्ति ने बतलाया कि यह चित्र उसके ससुर का है, जो उस समय जीवित था, और उसे इस बात से बहुत दुःख हुआ कि समय के पहले ही वह प्रेत बतला कर बेंचा जा रहा था!

प्रेत-विश्वासियों ने स्वयं स्वीकार किया है कि सौ पीछे लगभग केवल ६० चित्र ही पहचाने जा सकते हैं; और जो पहचाने जाते हैं, उनमें कई इतने अस्पष्ट होते हैं कि लोग उन्हें घर पर ले जाकर, सब से सलाह करने पर, निश्चय करते हैं कि यह उनके किस सम्बन्धी का चित्र है। यदि प्रेत की उमर मृत व्यक्ति से कुछ अधिक जान पड़ती है, तब यह कहा जाता है कि समय बीतने के कारण वह अब बूढ़ा हो गया होगा और यदि कुछ कम हुई तब तो कोई कठिनाई ही नहीं होगी; लोग विश्वास कर लेते हैं कि प्रेत ने अपना प्रथम स्वरूप धारण कर लिया होगा।

प्रेत-छाया-चित्रण और सशरीर प्रेत दिखलाने की क्रिया में भी घनिष्ट सम्बन्ध है। इसलिए ज़रा उन माध्यमों (ऐसी माध्यमें साधारणतः स्त्री ही होती हैं) के जीवन-चरित्र को भी देखना चाहिए, जो प्रेत-चित्र उतारने के बदले प्रेत को ही प्रत्यक्ष कर देती हैं। ये सब एकदम अँधेरे में भूत पैदा करती हैं। पहले, माध्यम कुरसी पर बाँध दी जाती है और रोशनी बुझा दी जाती है। माध्यम बेहोश हो जाती है और कुछ समय बाद भूत दिखलाई देने लगता है। परन्तु कोई-कोई दर्शक बड़े निडर भी निकले हैं। उन्होंने भूत को पकड़ लिया है और जब ऐसा किया गया है तभी पता चला है कि माध्यम ही भूत बन जाती है! फ़ॉसफ़ोरस मिले तेल, और इन दिनों बिजली की छोटी सी बत्ती से, वह अपने पर प्रकाश डालती है।

आश्चर्य की बात यह है कि कोई भी माध्यम ऐसी नहीं है, जो एक-दो बार न पकड़ी गई हो। बैंग्स-बहिनों की चालबाज़ी का भी लोगों को पीछे पता चल गया। अमेरिका के नेशनल स्पिरिचुएलिस्टिक एसोसिएशन (National Spiritualistic Association) के सभापति ने कहा है कि ये दोनों बहिनें "The greatest humbug of the kind" (महाकपटी) थीं। कैरिङ्गटन ने अपनी पुस्तक में बतलाया है कि वे किस प्रकार धोखा देती थीं।*

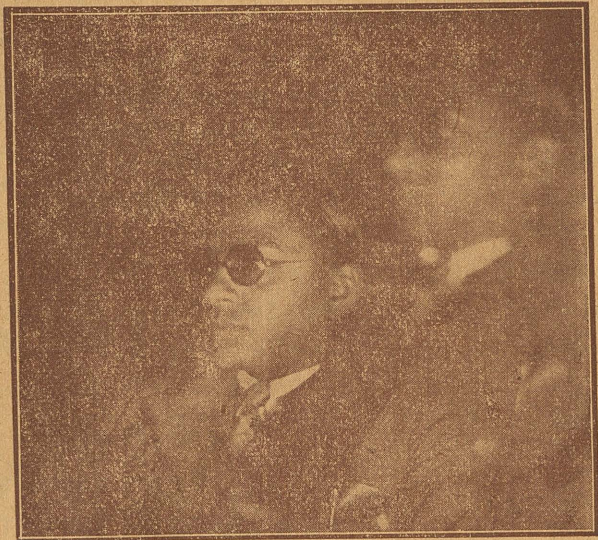
क्या कारण है कि बार-बार पकड़े जाने पर भी माध्यमों और प्रेत-चित्रकारों का लोप नहीं हो जाता? मेरी समझ में, एक कारण यह है कि कितने मनुष्य ऐसी चीज़ों में विश्वास करने के लिए लालायित रहते हैं।

* *Physical Phenomenon of Spiritualism*, by Carrington.

फलतः। थोड़ा भी कारण होने पर वे बिना छान-बीन किए ही तुरन्त विश्वास कर लेते हैं। दूसरा कारण यह है कि सभी जाँच करने वाले धूर्त्तता नहीं पकड़ सकते। लाखों मनुष्यों ने जादूगरों और मदारियों को आश्चर्य-जनक कार्य करते देखा होगा, परन्तु इनमें केवल इने-गिने लोग ही ऐसे होते हैं जो जान सकते हैं कि ये काम किस प्रकार किए जाते हैं। तीसरी बात यह है कि प्रेत-फ़ोटोग्राफ़र दोनों ओर से जीतता है। यदि आपकी निगाह तेज़ है और इस कारण प्लेट पर भूत नहीं आ सकते तो भी फ़ोटोग्राफ़र की कोई बदनामी नहीं होती। यदि भूत आ गया तो उसका पूरा नाम होता है, यदि आप इस प्रेत को पहचानते हैं, तो उसकी और भी प्रशंसा होती है, पर यदि आप उसे नहीं पहचान सकते तो यह कोई दूसरा ही प्रेत होगा, जिसे इस मृत्युलोक में फिर अपना मुँह दिखलाने की प्रबल इच्छा हुई होगी। चौथी बात यह है कि प्रेत-चित्रकारों के यहाँ साधारणतः दुखी जन ही पहुँचते हैं, जिनके किसी प्रिय सम्बन्धी की हाल ही में मृत्यु होगई रहती है। ऐसे व्यक्ति भला कहीं वैज्ञानिक रीति से प्रेत-चित्रण की सत्यता की जाँच कर सकते हैं? वे तो अपने दुखी हृदय को धैर्य देने के लिए कोई अवलम्ब खोजते फिरते हैं और यही कारण है कि यूरोपीय महासमर के बाद प्रेत-चित्रण ने एक बार फिर ज़ोर पकड़ा। अन्त में प्रेत-चित्रकारों और माध्यमों को इस व्यवसाय से इतना लाभ है (होम (Home) नाम के माध्यम ने केवल एक विधवा से पचास लाख रुपया वसूल किया था) कि वे योग्य व्यक्तियों को फँसाने के लिए कोई भी उपाय छोड़ नहीं रखते।

डॉक्टर शिलर (Dr. Schiller), एम० ए०, डी० एस-सी०, सोसायटी फ़ॉर साइकिक रिसर्च के भूतपूर्व सभापति, का कथन है कि एक भी सच्चा प्रेत-चित्र आज तक नहीं बना है। लगभग १० वर्ष हुए एक सज्जन ने १,००० पाउण्ड (१५,००० रुपया) देने के लिए विज्ञापन दिया था कि यह पारितोषिक उसको दिया जायगा, जो एक भी सच्चा अलौकिक (Super-normal) कार्य कर देगा, परन्तु कोई भी इसे लेने नहीं आया। १९२३ में 'सायण्टिफ़िक' अमेरिकन मासिक पत्रिका के प्रबन्धकर्त्ताओं ने ५,००० डॉलर का इनाम अलौकिक कार्य करने वाले के लिए नियत किया। कई माध्यमों ने इसके पाने की चेष्टा की। परन्तु जाँच करने वाली कमिटी में डॉक्टर प्रिन्स ऐसे वैज्ञानिक और विश्व-विख्यात हूडिनी (Houdini) ऐसे जादूगर भी थे। इस कमिटी के सामने इन सब माध्यमों की एक न चली और वे सबके सब धूर्त्त पाए गए।

अब हमारे लिए केवल इतना ही कार्य शेष रह गया है कि हम प्रेत-विश्वासियों का निम्न उत्तर भी सुन लें:—



दो बार प्रकाश-दर्शन एक ही प्लेट पर देने से भी "प्रेत"-छाया-चित्र बन जाता है।

(१) जब रीटा (Rita) नाम का माध्यम भूत बनते पकड़ा गया और उसके साथ एक बोतल फ़ॉस-फ़ोरस-युक्त तेल, एक शीशी इत्र, एक बनावटी दाढ़ी और कई गज़ मलमल भी मिले, तब प्रेत-विश्वासियों ने तेल इत्यादि के पाए जाने के सम्बन्ध में कहा कि प्रेत जल्दी में इन चीज़ों को अदृश्य (Dematerialise) करना भूल गए!

(२) यूसेपिया (Eusapia) नाम की माध्यम के विषय में सर आर्थर कोनन डॉयल ने अपने इतिहास में लिखा है—"इस स्त्री की बात बड़ी विचित्र है। इसके

बारे में पूर्णतया सच्चाई के साथ कहा जा सकता है, कि किसी दूसरे माध्यम में प्रेत-बल होने का इतना ज़ोरदार प्रमाण नहीं मिला है जितना इसमें। साथ ही किसी भी दूसरे माध्यम को अवसर पाने पर धोखा देते इतने स्पष्ट रूप से नहीं देखा गया है, जितना इसको। परन्तु कभी-कभी धोखा देने से क्या होता है ; जब-जब वह धोखा नहीं देती है, तब-तब की ही गणना करनी चाहिए !"*

(३) सर आर्थर लिखते हैं—जब-जब कोई विख्यात माध्यम देखता है कि प्रेत-बल उसमें कम हो रहा है—और इस प्रकार का बल सदा एक सा नहीं रहता—तब-तब वह छल करने लगता है।

(४) सर आर्थर का कथन है कि प्रेत-चित्र अवश्य सच्चे होते होंगे, क्योंकि मिसेज़ बक्सटन ने अपने ख़ास पिता का ही चित्र उतारा है और वे लिखते हैं—"मैं नहीं समझता कि मेरे पाठकों में से अत्यन्त पाषाण-हृदय भी इस सिद्धान्त को मानने पर तैयार होंगे कि कोई लड़की अपने ही पिता का पापमय छल से चित्र बना सकती है।"

सर आर्थर यहाँ भूल गए कि चित्र बनाना तो दूर रहे, धन के लोभ से कुछ व्यक्तियों ने अपने पिता की हत्या तक कर डाली है।

* * *

यहाँ पर दो चित्र दिए जाते हैं। ये चित्र गत वर्ष प्रेत-छाया-चित्रण पर व्याख्यान देते समय लिए गए थे। पहले चित्र में सभापति के फ़ोटो लेने में बिना बतलाए ही, छल से, प्रेत-सन्देश और प्रेत-चित्र उत्पन्न किए गए थे। ३०० व्यक्तियों के सामने इस चित्र के लेने का कुल काम, प्लेट के बॉक्स खोलने से लेकर डेव्लप इत्यादि करने तक का किया गया था। परन्तु एक भी दर्शक न पकड़ सका कि कपट कहाँ किया गया ! दूसरे चित्र में दुबारा प्रकाश-दर्शन (एक्सपोज़र) देने से कैसे प्रेत-चित्र बनता है, यह दिखलाया गया था।

* *History of Spiritualism*, by Sir A. C. Doyle.

वेदना-गान

[श्री० दिवाकरप्रसाद जी विद्यार्थी]

नयन से ढुलक पड़ा अनजान—
सजनि ! तिरस्कृत होकर उनसे म्लान वेदना-गान।

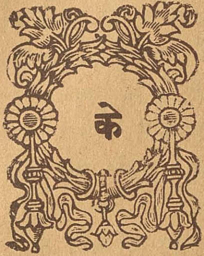
जब कभी उच्छृङ्खल उद्दाम,
फूट पड़ता था मेरा गान ;
निरख कर वह मादक मधु-धार,
हुलसते थे कितने नादान ;
—मचल पड़ते थे पागल प्राण।

जलन है—सर्वनाश है आज,
यहाँ करता अदय खिलवाड़;
लुटा कर अपना अमर सुहाग,
रुदन का हँस-हँस गाती गान ;
—चकित हैं व्यथित विश्व के प्राण।

कामना-मन्दिर को कर भस्म,
हुमकता आता है विध्वंस ;
उसी की अमर गोद में बैठ,
गुनगुनाते जाऊँगी गान ;
—यही तो मुक्ति—यही कल्याण !

एशिया में राष्ट्रीयता का विकास

[श्री० शङ्करदयालु जी श्रीवास्तव, बी० ए०, विशारद]

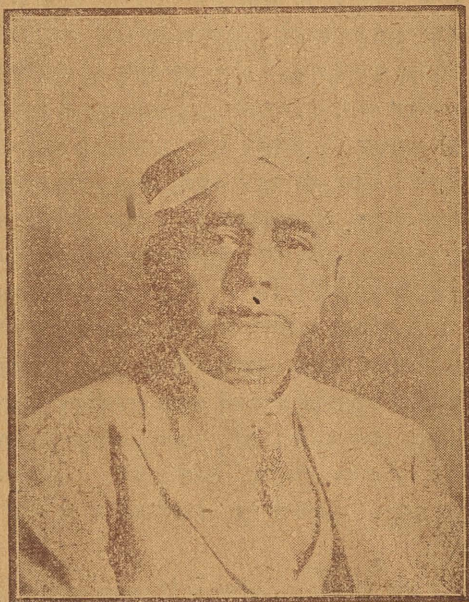


के वल क्षेत्रफल की दृष्टि से ही नहीं, प्रत्युत जन-संख्या के विचार से भी, एशिया महाद्वीप अन्य सभी महाद्वीपों से बड़ा है। अत्यन्त प्राचीन काल की बात जाने दीजिए, ऐतिहासिक काल के प्रारम्भ होने के पश्चात्—आज से प्रायः पन्द्रह-सोलह शताब्दी पूर्व—एशिया-निवासी पर्याप्त संख्या में, यूरोपीय महाद्वीप में पहुँचे थे। भारत-वर्ष के इतिहास में जिस पराक्रमी हूण-जाति की कथा हम पाते हैं, उसने प्रायः समस्त यूरोप को भयाक्रान्त कर दिया था—प्रसिद्ध रोमन-साम्राज्य तक को हिला दिया था। अरब देश में प्रादुर्भूत मोहम्मदी शक्ति ने ही, संसार में अपने अतुल पराक्रम के कैसे-कैसे दृश्य प्रदर्शन किए। ईसा की सातवीं-आठवीं शताब्दी में एशिया के विभिन्न देशों पर ही नहीं, अपितु उत्तरी अफ्रिका, स्पेन तथा पुर्तगाल पर भी उसने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। सत्रहवीं तथा अट्ठारहवीं शताब्दी में तुर्कों ने बालकन प्रायद्वीप के कई प्रदेशों को पराजित कर ऑस्ट्रिया की राजधानी वियना पर आक्रमण किया था। किन्तु उस समय एशिया में न तो कोई सङ्गठित शक्ति थी और न आजकल की भाँति राष्ट्रीय भावनाओं का प्रादुर्भाव था। यों तो चीन तथा भारतवर्ष की पुरानी सभ्यता तथा संस्कृति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी, किन्तु वास्तव में उन दिनों एशियाई देशों में सुदृढ़ और सुसङ्गठित राज्यों तथा पारस्परिक राजनैतिक सम्बन्ध, अन्तर्राष्ट्रीय विधान व लोक-सत्तात्मक शासन का नितान्त अभाव था।

जब यूरोप ने ऐतिहासिक काल के वर्तमान समय में पदार्पण किया और प्राच्य देशों में जाने के लिए समुद्र-मार्ग का अनुसन्धान किया गया, तब पाश्चात्य देश उत्तरोत्तर पूर्वीय देशों के सम्पर्क में आने लगे। पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगाल, स्पेन एवं डच देश के व्यापारी तथा व्यापारिक कम्पनियाँ एशिया तथा अमेरिका में व्यापार-सम्बन्ध स्थापित करने लगीं। कुछ काल के अनन्तर फ्रान्स तथा इङ्गलैण्ड की कम्पनियाँ भी इस क्षेत्र में उतर आईं। इस भाँति व्यापारिक सम्बन्ध के कारण यूरोपियन अमेरिका, अफ्रिका तथा एशिया महाद्वीपों में आने-जाने तथा रहने लगे। उस समय उपर्युक्त यूरोपीय देश व्यापार सम्बर्द्धन-कार्य में ही दत्त-चित्त थे, राजनैतिक सत्ता स्थापित करने की कामना नहीं उत्पन्न हुई थी। किन्तु ज्यों-ज्यों व्यापार में उन्नति हुई, राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने के लिए भी प्रयत्न किया जाने लगा; क्योंकि राजनैतिक प्रभुत्व की छत्रछाया में व्यापार की और भी अधिक उन्नति सम्भाव्य थी। अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में व्यापारिक शक्ति के साथ ही साथ, यूरोप की राज-शक्ति ने भी एशिया में प्रवेश किया। उन्नीसवीं शताब्दी में टर्की से लेकर जापान तक—एशिया के विभिन्न देशों तथा द्वीपों में यूरोपीय शक्तियाँ अपने राजनैतिक प्रभाव का विस्तार करने लगीं। टर्की, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, भारतवर्ष, मलाया प्रायद्वीप, इण्डोचाइना, चीन तथा जापान प्रभृत्ति एशियाई देश विदेशियों के सम्पर्क में आ गए।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, यूरोपीय महाद्वीप के अन्दर, औद्योगिक क्रान्ति ने आशातीत सफलता प्राप्त करके, अपना विजय-शङ्ख बजाया, जिसके उच्च निनाद की प्रतिध्वनि से अल्पकाल में ही, संसार के लगभग समस्त देशों के प्राण दहल गए। विविध वैज्ञानिक अनुसन्धानों के सुदृढ़ आधार पर ही उक्त क्रान्ति का विजय-वैभव अवलम्बित था। इङ्गलैण्ड में तो अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में ही औद्योगिक क्रान्ति प्रारम्भ हो गई थी और यही कारण है कि उस क्रान्ति-बल द्वारा अर्जित विजयश्री में भी उसी देश को अधिक भाग मिला। वाष्प-बल तथा विद्युत-शक्ति के प्रचुर उपयोग से ऊनी, सूती तथा रेशमी वस्त्र और लोहे की चीज़ें उत्पन्न करने के लिए विविध प्रकार के यन्त्रों (Machines) का राज्य स्थापित हो गया। नाना प्रकार की वस्तुओं की

उत्पादन-गति इतनी बढ़ गई कि यूरोपीय देशों को अपना माल खपाने के लिए यूरोप के बाहर मण्डियों की आवश्यकता प्रतीत हुई और उसके साथ ही साथ बाहर से कच्चे माल मँगाने की भी अत्यन्त आवश्यकता हुई। जहाँ-जहाँ, जिस देश का व्यापारिक सम्बन्ध था, वहाँ-वहाँ उसने राजनैतिक अधिकार प्राप्त करके इस बात के लिए प्रयत्न किया कि उस स्थान-विशेष पर किसी दूसरे प्रतिद्वन्द्वी का प्रभाव व अधिकार—व्यापारिक अथवा



श्री० के० श्रीनिवास अयङ्गर

आप मैसूर-स्टेट के चीफ़ इञ्जीनियर हैं, जिन्होंने हाल ही में पेन्शन ली है।

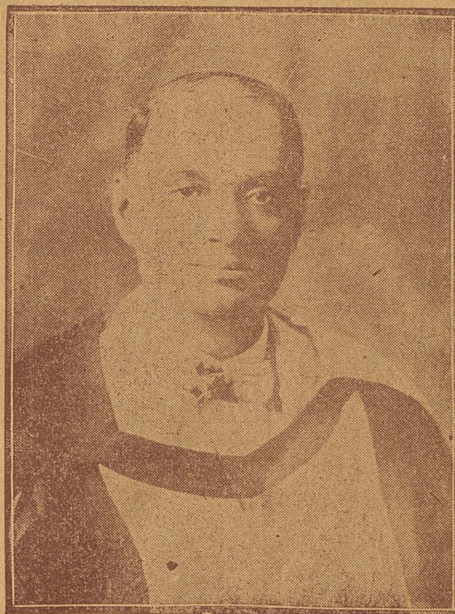
राजनैतिक—स्थापित न होने पावे। संसार के जिन द्वीपों वा देश-प्रदेशों में अभी तक उनका पदार्पण नहीं हो सका था, उन्हें अधिकृत कर राज्य स्थापन करने तथा आर्थिक शोषण (Economic Exploitation) करने की चेष्टा करने लगे। इस आर्थिक एवं राजनैतिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण यूरोपीय देशों में पारस्परिक वैमनस्य के भाव ने भीषण रूप धारण किया, जिसके फल-स्वरूप अभागे अधिकृत देश-प्रदेश उनकी कूट राजनीति तथा कलह-विग्रह के स्थल बन गए। इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स, हॉलैण्ड, रूस, जर्मनी, इटली तथा अमेरिका इस प्रतिस्पर्धा के विस्तृत क्षेत्र में समयान्तर से आकर संलग्न हो गए।

स्थानाभाव के कारण यह सम्भव नहीं कि इस लेख में, एशिया के अन्तर्गत यूरोपीय शक्तियों के क्रमिक विकास का इतिहास वर्णन किया जाय। परन्तु संक्षेप में इतना लिख देना उचित है कि कहाँ पर किन-किन विदेशियों का अधिकार स्थापित हुआ। पुर्तगाल, हॉलैण्ड तथा फ़्रान्स की शक्तियों को पराजित तथा मर्दन कर अङ्गरेज़ों ने भारतवर्ष जैसे धन-जन-परिपूर्ण विशाल देश पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। परन्तु रूस को भारतवर्ष का अङ्गरेज़ों के हाथ में रहना अच्छा न मालूम हुआ। इसका कारण यह था कि अन्य यूरोपीय देशों की भाँति वह भी कुछ देशों को अपनी अधीनता में लाना चाहता था। उत्तरी सागर की ओर रूसी लोग बढ़ नहीं सकते थे, बाल्टिक सागर भी प्रायः वर्ष भर हिमाच्छादित रहता था, इसलिए दक्षिण और पूर्व की ओर ही अपनी शक्ति बढ़ा सकते थे। दक्षिण की ओर भारतवर्ष तक पहुँचने के लिए उन्होंने अथक परिश्रम तथा घोर प्रयत्न किया। टर्की, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान तथा तिब्बत के पार्वतीय प्रदेश तक वे पहुँच भी गए। भारतवर्ष के हाथ से निकल जाने के भय से अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञ उक्त देशों में रूस देश के बढ़ते हुए प्रभाव को न सहन कर सकते थे। इसीलिए ईरान एवं अफ़ग़ानिस्तान में, वहाँ के बादशाहों से सन्धि करके, रूस और इङ्गलैण्ड अपने-अपने विशेषाधिकारों के बल पर प्रभुत्व स्थापित करने लगे। भारतवर्ष के लिए जर्मनी भी लालायित था और इसीलिए उसने टर्की के सुलतान से सन्धि द्वारा विशेषाधिकार और आज्ञा प्राप्त कर ईरान (फ़ारस) की खाड़ी के समीप तक एक लम्बा रेल-पथ निर्माण करने का आयोजन भी कर लिया था। किन्तु अन्त में महायुद्ध के कारण उसका प्रयत्न असफल रहा। पेट्रोलियम तथा मिट्टी के तेल की खानों पर अपना अधिकार जमाने के लिए, टर्की तथा ईरान में, इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स, जर्मनी, अमेरिका तथा रूस आदि सभी प्रयत्न करते थे। अरब का अधिकांश भाग रेगिस्तान होने के कारण वह विदेशियों द्वारा अधिक पददलित नहीं हुआ। तथापि वहाँ भी यत्र-तत्र अङ्गरेज़ों ने अपना प्रभाव जमा लिया।

भारतवर्ष के पूर्व ब्रह्म देश तथा मलाया प्रायद्वीप पर भी अङ्गरेज़ों का अधिकार हुआ। कम्बोडिया, कोचीन चीन, अनाम इत्यादि प्रदेश फ्रान्स के हाथ में आए। स्याम देश प्रायः स्वतन्त्र है, किन्तु राज्य के शासन-विभागों में उसे भी विदेशी मन्त्री नियुक्त करने पड़े थे। ईस्ट-इण्डीज़ द्वीप-समूह का अधिकांश भाग हॉलैण्ड के अधिकार में है; केवल उत्तर में कुछ भाग अङ्गरेज़ों के हाथ में है। फ़िलिपाइन्स द्वीप अमेरिका के अधिकार में है। चीन के विशाल देश में अङ्गरेज़, फ़्रान्सीसी, रूसी, जर्मनी, जापानी तथा अमेरिका वालों ने विशेषाधिकार प्राप्त कर अथवा युद्ध-बल के आधार पर अपना-अपना प्रभाव जमाया। जापान वाले पहले से ही सचेत हो गए थे, इसलिए विदेशी शक्तियाँ वहाँ अपना प्रभाव न जमा सकीं। जापान ने भी यूरोपीय देशों के साथ, विशेषतः चीन देश में प्रतिस्पर्धा करना आरम्भ किया। रूस ने मञ्चूरिया के अधिकांश भाग पर तथा जापान ने दक्षिणी मञ्चूरिया तथा कोरिया पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। सरबिया का विस्तृत प्रदेश भी रूस के अधिकार में है। रूस की राज्यक्रान्ति के बाद से वहाँ की सोवियट शक्ति भी एशिया महाद्वीप की शक्तियों में परिगणित की जाती है।

आज इस बीसवीं शताब्दी में, राजनैतिक संसार के अन्तर्गत प्रतिनिधि अथवा लोकसत्तात्मक शासन-पद्धति का ही बोल-बाला है। शताब्दियों के अनुभव से यह बात सिद्ध हुई है कि अब तक संसार के इतिहास में जितने प्रकार की शासन-व्यवस्थाओं का समय-समय पर अनुसरण किया गया है,उन सब में उक्त शासन-पद्धति ही सर्वोत्तम तथा सब से अधिक सन्तोषप्रद है। सिद्धान्ततः भी यही युक्ति-सङ्गत है। एक देश को दूसरे देश पर, एक जाति को दूसरी जाति पर तथा एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के ऊपर, उसकी इच्छा के प्रतिकूल अपने स्वार्थ के लिए, शासन करना, नैसर्गिक सिद्धान्तों तथा मानव-जाति के जन्म-जात अधिकारों के नितान्त प्रतिकूल है। इस दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि एशिया में यूरोपीय शक्तियों का प्रभुत्व, एशिया-निवासियों की इच्छा के विरुद्ध न्याय-सङ्गत नहीं, वरन् अन्यायपूर्ण है।

यूरोप तथा अमेरिका के साम्राज्यवादी विद्वान राज-नीतिज्ञ अपने असङ्गत कार्यों को न्याय-सङ्गत प्रमाणित करने के लिए ऐसे तर्कों का आश्रय ग्रहण करते हैं, जो कि सर्वथा शिथिल, काव्य, अतः त्याज्य हैं। उनके कथनानुसार एशिया में (अथवा अफ़्रिका में) यूरोप का राजनैतिक प्रभुत्व किसी आर्थिक लाभ की दृष्टि के कारण नहीं है, बल्कि इसका मुख्य कारण यह है कि वे सभ्य हैं, उन्होंने अपने जीवन को उन्नत तथा उज्ज्वल बनाया है। संसार में सभ्यता तथा शान्ति का प्रसार करने के लिए ही वे इन अभागे असभ्य तथा काले



लेफ़्टेनेण्ट-कर्नल सुहरावर्दी

आप कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर हैं, जिनकी 'देशभक्ति-पूर्ण' सेवाओं से प्रसन्न होकर बङ्गाल-गवर्नर ने आपको 'क़ैसरे-हिन्द' का पदक प्रदान किया है।

आदमियों के ऊपर शासन करते हैं। शिक्षा का प्रचार एवं अशिक्षा का विनाश करने के लिए, साम्प्रदायिक वैमनस्य तथा जातीय कलह के निराकरण के लिए ही गौराङ्ग प्रभुगण एशिया में विराजमान हैं। मनुष्य-मात्र का हित करना, उन्हें शिक्षा प्रदान कर, विज्ञानार्जित विविध सुविधाओं से सम्पन्न कर, समस्त संसार को शान्ति, सभ्यता तथा स्वतन्त्रता के उन्नत तथा प्रशस्त पथ पर अग्रसर करना ही उनका ध्येय और ईश्वर-प्रदत्त

अधिकार है। वे संसार के रङ्ग-मञ्च पर मानव सभ्यता की पताका को वहन करने वाले हैं, और इस को गौराङ्गों का बोझ (The White man's burden) कहते हैं।

अमेरिका के साम्राज्यवादी शान्ति-महासागरस्थ फ़िलिपाइन्स द्वीप-समूह पर, लोकमत की उपेक्षा तथा अवहेलना कर अपनी स्थल तथा नाविक सैन्य-बल पर राज्य कर रहे हैं, परन्तु साम्राज्यवाद के तर्कानुसार यह अन्याय नहीं है, वरन् जनता के हित में कल्याणकर है। यदि इन द्वीपों के निवासी अपने जन्म-सिद्ध अधिकार अर्थात् स्वतन्त्रता के लिए वर्तमान शासन का विरोध



कुमारी पेनीरी मोज़ेज़

आप हाल ही में त्रावङ्कोर (मद्रास) की बड़ी व्यवस्थापिका सभा की सदस्या नियुक्त हुई हैं।

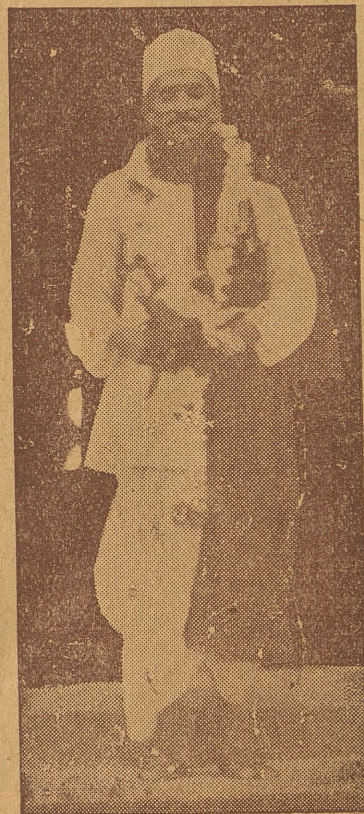
करें, तो यह उनकी अज्ञानता तथा सर्व-साधारण की शान्ति को भङ्ग करना है। इसी प्रकार यदि अङ्गरेज़ भारतीय लोकमत को कुचल कर, उनकी इच्छा के विरुद्ध अपनी प्रचलित शासन-व्यवस्था को स्थिर रखना चाहते हैं, तो यह सब उनके दृष्टिकोण से न्याय-सङ्गत है। क्योंकि भारतीयों में अभी राजनैतिक उत्तरदायित्व वहन करके तथा सङ्गठित शासन स्थापित कर शासन करने की क्षमता नहीं है। यदि अङ्गरेज़ आज अपना शासन-यन्त्र भारतभूमि से हटा कर सीधे अपनी मातृभूमि इङ्गलैण्ड को चले जायँ, तो उन्हें भय है कि भारतवर्ष में विद्रोह तथा वैमनस्य की भीषण ज्वाला प्रज्वलित हो जायगी। साम्प्रदायिक तथा जातीय द्वेष और प्रतिस्पर्धा के भाव भारतीय एकता को विच्छिन्न कर राष्ट्रीय जीवन को समूल नष्ट कर देंगे, सारे देश में अशान्ति तथा अराजकता का राज्य हो जायगा। अथवा कोई दूसरी शक्ति, जैसे रूस, टर्की अथवा जापान, उसे पदाक्रान्त कर अपना निरङ्कुश प्रभुत्व स्थापित कर लेगी और जनता को पीड़ित करने लगेगी।

पाठकगण ! थोड़ी देर के लिए यह भी मान लीजिए कि यूरोप तथा अमेरिका वाले साम्राज्यवादी राजनीति-विशारद बड़े स्वच्छ-हृदय तथा भद्र हैं, उनके तर्क युक्ति-सङ्गत हैं और उनकी यह हार्दिक कामना है कि एशिया के देश भी विज्ञान से लाभ उठा कर, पाश्चात्य जीवन-शैली का अनुकरण कर, उन्हीं की तरह सभ्य बन जायँ, जिससे संसार में उन्नत-जीवन तथा उच्च सभ्यता का विकास और चतुर्दिक सुख-शान्ति का राज्य हो जाय। परन्तु सोचने की बात यह है कि यदि एशिया के सभी देश, पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करने लग जायँ और शासकों से वैसा करने की सुविधा तथा स्वीकृति प्राप्त हो जाय, तो इस महाद्वीप का क्या रूप हो जायगा ? एक छोटे से द्वीप-समूह जापान ने पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण किया है, किन्तु उसका परिणाम यह हुआ है कि वह भी आर्थिक लोभ के मोह-जाल में पड़ कर साम्राज्यवादी बन गया है और चीन के कोरिया प्रदेश को पददलित कर रहा है। ईश्वर न करे कि भारत और चीन जैसे पृथुलकाय देश भी उसी सभ्यता का अनुकरण कर साम्राज्यवादी बन जायँ, नहीं तो यूरोपीय महान शक्तियाँ भी इनकी बढ़ती हुई प्रसार-गति को न रोक सकेंगी। जब एक जर्मनी की शक्ति को ध्वंस करने में इतनी बड़ी-बड़ी शक्तियाँ संलग्न थीं, परन्तु उसका नाश न कर सकीं, तो उसी सभ्यता को प्राप्त, समस्त एशिया के बढ़ते हुए वेग को रोकने के लिए संसार की कौन सी शक्ति अग्रसर होगी, क्योंकि एशिया तो जर्मनी से चालीस गुना बड़ा है।

ऐसी अवस्था में यदि एशिया ने भी यूरोपीय यन्त्र-युग (Machine Age) की सभ्यता का पर्याप्त अनु-

करण कर लिया और आँख बन्द करके यूरोप की राजनैतिक प्रगति की ओर ही अग्रसर हुआ तो समस्त संसार की शान्ति विकटावस्था में पड़ जायगी। आन्तरिक अविश्वास तथा वैमनस्य के कारण प्रत्येक राष्ट्र (यदि सब जापान या टर्की की भाँति स्वतन्त्र हो गए) अपनी स्थल-सेना तथा नाविक शक्ति की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि में ही देश की सम्पत्ति का अधिकांश भाग व्यय कर देगा। अल्प-संख्यक कुटिल राजनीतिज्ञों की वक्र-नीति के कारण असंख्य निर्दोष प्राणियों की शोणित-धारा प्रवाहित होती रहेगी। थोड़े से धन-कुबेरों द्वारा देश की अधिकांश सम्पदा के सञ्चित हो जाने से लाखों मनुष्य दीन-हीन अवस्था को प्राप्त होकर क्षुधा के शिकार बन जायँगे। इसलिए संसार में वास्तविक सभ्यता तथा सुख-शान्ति की स्थापना के लिए परमावश्यक है कि यूरोप तथा अमेरिका के साम्राज्यवादी राष्ट्र अपनी प्रसरण-नीति का त्याग कर दें, पारस्परिक वैमनस्य को सोन्मूल नष्ट कर दें, हृदय को स्वच्छ कर परस्पर प्रेम, मैत्री तथा विश्वास बढ़ाएँ। भौतिकता की मात्रा न्यून कर तनिक और आध्यात्मिकता की ओर अपनी दृष्टि करें।

उपर्युक्त विवेचन इस तथ्य को स्पष्टतया प्रमाणित करता है कि यूरोप की वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति, यूरोप एवं एशिया का वर्तमान पारस्परिक सम्बन्ध तथा एशिया के देशों का उसी नीति तथा सभ्यता का अनुकरण करना संसार की शान्ति तथा मानव-जाति की वास्तविक सभ्यता के घोर बाधक हैं। यदि विज्ञान द्वारा प्रभूत असंख्य, असूल्य सुविधाओं का उपयोग संसार में शान्ति तथा मैत्री-भाव स्थापित करने के लिए सम्भव तथा वाञ्छनीय है, तो यूरोपीय राष्ट्रों को, अमेरिका तथा जापान को अपनी वर्तमान राजनैतिक नीति में विशेष परिवर्तन करना होगा। गत यूरोपीय महायुद्ध ने उपर्युक्त देशों को यह अच्छी तरह बता दिया है कि उनकी नीति में परिवर्तन की आवश्यकता है और इसीलिए युद्ध-समाप्ति के उपरान्त ही राष्ट्र-सङ्घ (League of Nations) जैसे एक बृहद्-यन्त्र का सङ्गठन भी करना पड़ा है, जिसका ध्येय यथासम्भव शीघ्र युद्ध-नीति का बहिष्कार कर, संसार में शान्ति स्थापित करना है। अब पाठक विचार करें कि वास्तव में इस राष्ट्र-सङ्घ ने अपने ध्येय—अपने लक्ष्य—तक पहुँचने में विगत दस वर्षों (१९२०-१९३०) में कितनी सफलता प्राप्त की है? इतना तो मानना ही पड़ेगा कि इसका लक्ष्य अथवा आदर्श बहुत उच्च है और वहाँ तक पहुँचने के लिए दस वर्ष का काल पर्याप्त नहीं है। लक्ष्य तक पहुँचने की बात तो दूर रही, यूरोपीय राष्ट्रवादियों के दृष्टिकोण में—उनके हृदय के अन्तस्तल में—कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ



श्री० आपटे

आप बम्बई तिलक विद्यालय के आचार्य हैं, जिन्हें वर्तमान आन्दोलन में छः मास का दण्ड मिला था।

है, जिसके फलस्वरूप समर-नीति के बहिष्कारार्थ सैकड़ों ओजस्वी भाषण देते रहने पर भी निशस्त्रीकरण के लिए साधारण तथा असाधारण अधिवेशनों के करते रहने पर भी, यूरोप के राष्ट्रों के राजनैतिक वायु-मण्डल में युद्ध के घनघोर बादल अब भी गर्जन-तर्जन कर रहे हैं। यद्यपि

इन पंक्तियों का लेखक यह कहने को तैयार नहीं है, कि सङ्घ की स्थिति संसार में शान्ति स्थापित करने में बाधक हो रही है, परन्तु इतना तो निस्सन्देह है कि वर्तमान राष्ट्र-सङ्घ के द्वारा—जिस प्रकार इसका आधुनिक सङ्गठन है—संसार में शान्ति तथा मैत्री के भावों की स्थापना नहीं हो सकती। राष्ट्र-सङ्घ-विधान गत लक्ष्य श्रेय है, परन्तु अन्ध-राष्ट्रीयता तथा पारस्परिक अविश्वास का बना



बाबू श्रीचन्द्र दोनेरिया

आप आगरे के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता हैं, जिन्हें सत्याग्रह-आन्दोलन में ६ मास का कारावास-दण्ड मिला था।

रहना उसकी प्राप्ति में बाधक हैं। प्रत्येक राष्ट्र इस असफलता के लिए स्वयं अपराधी है, किन्तु वह सारा दोष दूसरों पर आरोपण कर अपने को उससे मुक्त करने की चेष्टा करता है।

राष्ट्र-सङ्घ-विधान (Covenant of the League of Nations) एक धारा द्वारा, सङ्घ-सम्मिलित प्रत्येक राष्ट्र के अधीन-गत भूमि तथा राज्य के संरक्षण का उत्तरदायित्व राष्ट्र-सङ्घ की सामूहिक शक्ति के ऊपर छोड़ता है। प्रत्येक राष्ट्र को अपने देश के आन्तरिक शासन में सर्वाङ्गीय स्वतन्त्रता प्राप्त है। ख़ैर, इतना तो ठीक है, परन्तु दुःख की बात तो यह है कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों को भी अपने अधीन तथा आश्रित देशों-उपनिवेशों पर निरङ्कुश शासन करने की स्वतन्त्रता दी गई है। यदि राष्ट्रसङ्घ संसार का कल्याण करने को उद्यत है और संसार के लोगों में सुख-शान्ति स्थापित करने का दम भरता है, तो उसे उचित था कि या तो अधीन देशों को स्वतन्त्र करने की व्यवस्था करता अथवा उन्हें अपने नेतृत्व में रख कर सभ्य तथा उन्नत बनाने का प्रयत्न करता। किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। आज यदि भारतवर्ष अथवा फ़िलिपाइन्स द्वीप-समूह विदेशियों के कुशासन से असन्तुष्ट होकर तथा अपने शासकों के अत्याचार से ऊब कर राष्ट्र-सङ्घ से अपनी रक्षा के लिए—न्याय के लिए—प्रार्थना करें तो क्या सङ्घ उचित न्याय कर पराधीन देशों का उद्धार कर सकता है? कदापि नहीं, चाहे उसे पूर्णरूप से ज्ञात हो कि विदेशी शासक वस्तुतः अन्याय तथा अत्याचार द्वारा स्थानीय लोकमत को कुचल कर अपने अधीन देशों पर शासन करते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि उसे ऐसा करने का अधिकार ही नहीं है। राष्ट्र-सङ्घ ऐसे प्रश्नों की ओर अपना ध्यान ही नहीं दे सकता। क्योंकि उसकी कार्यकारिणी समिति (Council) के जो पाँच स्थायी सदस्य हैं, वे सभी बड़े-बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधि और जर्मनी को छोड़ अन्य सभी साम्राज्यवादी हैं। जापान कोरिया को अनन्त काल तक अपनी अधीनता में रखना चाहता है। उसी प्रकार इङ्गलैण्ड भारतवर्ष को, फ़्रान्स अल्जीरिया तथा मोरक्को को और इटली ट्रिपोली को अपने शासन के अधीन रखना चाहते हैं। ऐसी अवस्था में यदि आज उक्त सङ्घ की अन्य शक्तियाँ भारतवर्ष की स्वतन्त्रता स्वीकार कर लें और उसे इङ्गलैण्ड की पराधीनता से मुक्त कर दें तो सम्भव है कि दूसरे दिन जापान, फ़्रान्स तथा इटली को भी अपने अधीनस्थ देशों से हाथ धोना पड़े। फलतः यदि किसी प्रकार भारतवर्ष की स्वतन्त्रता का प्रश्न राष्ट्र-सङ्घ के सामने उपस्थित भी हो, तो उचित न्याय होने की आशा नहीं है। वास्तविक बात तो यह है कि राष्ट्र-सङ्घ को

ब्रिटिश साम्राज्य की आन्तरिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करने की क्षमता ही नहीं प्राप्त है। यदि वह कभी हस्तक्षेप करने का प्रयत्न करे तो ब्रिटिश राष्ट्र उसके विरोध में स्पष्टतया कह सकता है कि यह हमारे घर की बात है, हम इसका निर्णय स्वयं कर लेंगे। राष्ट्र-सङ्घ अपने विधान की आज्ञा मान कर उस प्रश्न से तुरन्त तटस्थ हो जायगा। इसीसे हम कहते हैं कि यदि राष्ट्र-सङ्घ की समिति (Council) के सङ्गठन तथा सङ्घ के विधान में उचित संशोधन नहीं किया गया तो वह संसार में शान्ति स्थापित करने की कोई क्षमता नहीं प्राप्त कर सकेगा। संसार में आधे से अधिक संख्या पराधीनता की यातनाओं से पीड़ितों की है। अफ़्रिका ही नहीं, एशिया के भी प्रायः समस्त देश विदेशियों द्वारा पददलित हो रहे हैं। एशिया में सीरिया, पैलेस्टाइन, मेसोपोटामिया, ईरान, भारतवर्ष, इण्डो-चाइना, चीन, फ़िलिपाइन्स, तथा ईस्ट इण्डीज़ द्वीप-समूह पाश्चात्य देशों की राजनैतिक प्रभुता से सन्तुष्ट नहीं हैं, परन्तु राष्ट्र-सङ्घ उन्हें कभी शान्ति दिलाने की आशा और विश्वास नहीं दे सकता। ब्रिटिश शासक-वर्ग चाहे निरपराध स्त्री-पुरुषों और बालकों को लाठी तथा गोली का लक्ष्य बना ले, लाखों मनुष्यों को करागारों में बन्द कर, विविध प्रकार की यातनाएँ देता रहे, अहिंसा-वादी देश-भक्तों तथा निशस्त्र सत्याग्रहियों पर अपनी अमानुषिक नीति का नग्न प्रदर्शन करता रहे, किन्तु राष्ट्र-सङ्घ उस दुख से भारत को मुक्त करने में सर्वथा अशक्त है। यदि वस्तुतः राष्ट्र-सङ्घ संसार में विग्रह, कलह एवं रण-नीति का निराकरण कर, सुख-शान्ति स्थापन करने की क्षमता तथा स्वतन्त्रता रखता, तो सत्य एवं अहिंसा के मूर्तिमान मानव-देव, तपोनिष्ठ संसार-वन्द्य, महात्मा गाँधी यरवदा कारागार में न बन्द रहते; प्रत्युत जेनेवा में राष्ट्र-सङ्घ के अधिवेशनों एवं सम्मेलनों में आमन्त्रित किए जाते और उनके सत्परामर्श से यूरोपीय राजनीतिज्ञ लाभ उठाते। राष्ट्र-सङ्घ वास्तव में संसार का राष्ट्र-सङ्घ नहीं, वरन् यूरोपीय राष्ट्रों का सङ्घ है। और उस पर बलवान राष्ट्रों का अधिक प्रभाव है।

अतएव यह प्रमाणित हुआ कि एशिया के भाग्य-विधायक न तो यूरोपीय राष्ट्र हैं और न उनका राष्ट्र-सङ्घ। इसलिए जब तक एशिया के स्त्री-पुरुष अपने पैरों पर खड़ा होने का साहस नहीं करेंगे, तब तक वे पराधीनता की शृङ्खला से विमुक्त न होंगे। वर्तमान समय में एशिया के भिन्न-भिन्न देशों में तथा प्रदेशों में राष्ट्रीय जागृति और उसके विकास का क्रम देख कर आशा होती है कि वह दिन अधिक दूर नहीं, जब कि एशिया के काले देशों से सभ्य गौराङ्ग-समाज का राजनैतिक प्रभुत्व और उनके विशेषाधिकार सदैव के लिए लुप्त हो जावेंगे।

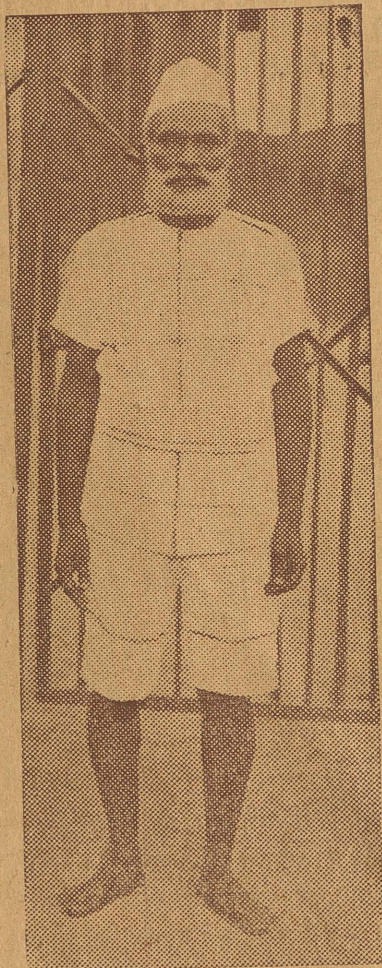


श्री० जयकिशन नन्द

आप फ़िल्म सम्बन्धी अध्ययन के लिए इङ्गलैण्ड गए हैं।

एशिया के पश्चिमी कोण पर स्थित तुर्किस्तान तथा पूर्व की ओर का जापान पूर्ण स्वतन्त्र है। इन्होंने विदेशी प्रभुत्व को नष्ट कर अपना सुदृढ़ राज्य स्थापित कर लिया है। आज से पचीस वर्ष पूर्व जापान जैसे छोटे से देश ने यूरोप के रूस-जैसे विशाल देश को युद्ध में पराजित किया था और तभी से पाश्चात्य शक्तियों में, एशिया की सुप्त शक्तियों के अनुमान मात्र से आतङ्क छा गया है। उसी समय से एशिया के अन्य देशों को भी अपने बल का अनुमान हुआ है और यह सिद्ध हो गया कि पाश्चात्य शक्तियों को पराजित करना चाहे कठिन क्यों न हो, किन्तु असम्भव कदापि नहीं है। जैसे यूरोप के पश्चिमी महाद्वीप से तनिक पृथक, अटलाण्टिक सागर में स्थित इङ्गलैण्ड की शक्ति महाद्वीपीय (Continental)

शक्तियों में सब से अधिक बलवती है, उसी प्रकार एशिया महाद्वीप के पूर्व, उससे तनिक विलग, प्रशान्त महासागर में सुस्थित जापान का राष्ट्र-बल भी एशिया के अन्य राष्ट्रों



श्री० बाबू तोताराम जी सुखदाने

आप नीमार (सी० पी०) ज़िला काँङ्ग्रेस कमिटी के वयोवृद्ध डिक्टेटर थे, जिन्हें जङ्गल-क़ानून तोड़ने के अपराध में ३ मास का कठिन कारावास-दण्ड दिया गया था।

से बढ़ा-चढ़ा है। जापान में राष्ट्रीय भावों का उतना ही प्राबल्य है, जितना कि यूरोप के बलवान राष्ट्रों में। जापान ने भी औद्योगिक संसार में क्रान्ति मचाई। पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण किया। किन्तु दुःख है कि इस प्रकार पाश्चात्य नीति तथा सभ्यता का अनुकरण कर वह भी साम्राज्यवादी बन गया है और अपने अधीनस्थ कोरिया प्रदेश को वहाँ के लोकमत के विरुद्ध शासित करता है। कोरिया भी अपनी स्वतन्त्रता के लिए यथा-शक्ति प्रयत्न कर रहा है।

१९वीं शताब्दी के मध्यकाल के पूर्व से ही चीन का धन-सम्पन्न विशाल प्रदेश, साम्राज्यवादी शक्तियों की कूटनीति का चौगान-क्षेत्र बन गया था। चीन में अफ़ीम का व्यापार रोकने के कारण चीनियों को अङ्गरेज़ों से युद्ध करना पड़ा था। यह युद्ध (१८३९-४२) 'अफ़ीम-युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है। १८४२ ई० की नानकिङ्ग-सन्धि द्वारा अङ्गरेज़ों को कई अधिकार मिले। अमेरिका, फ़्रान्स तथा रूस इत्यादि देशों ने भी विशेषाधिकार प्राप्त किया। इसी प्रकार १८५७ ई० में चीन तथा विदेशियों के बीच एक और विद्रोह हो गया। फलतः १८५८ ई० की टीन्ट्सिन-सन्धि द्वारा उन्हें और भी अधिकार दिए गए। इन सन्धियों में विदेशियों को व्यापार के लिए स्वतन्त्र बन्दरगाह (Treaty Ports) मिले तथा अपना स्वतन्त्र न्याय-विधान स्थापित करने का अधिकार मिला—उन पर चीन के न्यायालयों का अधिकार न रह गया। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी व्यापारिक सुविधाएँ मिलीं। १८९३ ई० में कोरिया में टाङ्गहाँक नाम के गुप्त दल वालों ने विदेशियों के विरुद्ध विद्रोह फैलाया। १८९४-९५ में कोरिया के लिए चीन तथा जापान में युद्ध हुआ, जिसके फल-स्वरूप कोरिया चीन के अधिकार से निकल गया। जापान को व्यापार तथा निवास करने के लिए ४ और बन्दरगाह प्राप्त हुए। इसके सिवा फ़ारमोसा, लियोटङ्ग तथा पेस्कार्डो भी उसके अधिकार में आ गए। इस युद्ध में रूस, फ़्रान्स तथा जर्मनी ने जापान पर दबाव डाला था, इसलिए युद्ध के बाद ही चीन से इन देशों ने पारितोषिक-स्वरूप कुछ स्थान तथा अन्य अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न किया। जर्मनी को कियोचीन, रूस को पोर्ट आर्थर, ब्रिटेन को विहैवी (Weihaiwei), कावलून तथा फ़्रान्स को क्वाङ्गचाव-वान नामक बन्दरगाह मिले। उस समय प्रतीत होता था कि सारा चीन विदेशियों में विभक्त हो जायगा। इधर चीन से विदेशियों को निकाल बाहर करने के लिए कई गुप्त संस्थाएँ सङ्गठित थीं। सारे चीन

में विदेशियों के प्रति क्रोध की आग भभक उठी और १६००-१६०१ में बाक्सर-विद्रोह के नाम से एक भयङ्कर विद्रोह हुआ। विदेशियों को इसमें पर्याप्त क्षति उठानी पड़ी। किन्तु अन्त में चीन-स्थित लगभग ११ विदेशी शक्तियों ने मिल कर एक बड़ी सेना तैयार करके, विद्रोह को शान्त करके अपना उद्धार किया। उधर मञ्चूरिया प्रदेश में रूस अपना अधिकार बढ़ाता चला जाता था। यहाँ तक कि कोरिया प्रदेश तक अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न करने लगा। जापान यह किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकता था। समझौते की चेष्टा की गई, किन्तु कुछ परिणाम न निकला। अन्त में रूस-जापान युद्ध (१६०४-५) हुआ, जिसमें जापान की विजय हुई। एशिया की जाग्रति में इस जापान-विजय ने पर्याप्त उत्तेजना उत्पन्न की। कहाँ एक छोटा सा द्वीप-समूह जापान और कहाँ महाकाय रूस! अब तो अमेरिका, इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स तथा जर्मनी आदि सभी जापान के बल से भयभीत हुए और सभी ने यह आशङ्का की कि जापान एशिया से विदेशियों को निकाल बाहर करेगा, और फिर यूरोप पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित करेगा। एशिया के राष्ट्रीय दलों को बड़ा प्रोत्साहन मिला। चीन, भारतवर्ष, ईस्ट-इण्डीज़, ईरान तथा टर्की पर भी इसका प्रभाव पड़ा। साढ़े चार सौ वर्षों के पश्चात्* यह एक पहली घटना थी कि एशिया की साधारण शक्ति ने यूरोप की एक महान शक्ति को पराजित किया।

अब चीनवासियों को यह विश्वास हो गया कि जब तक चीन पर मञ्चू-वंश का राज्य रहेगा, तब तक वह कदापि विदेशियों के पञ्जे से मुक्त न हो सकेगा। १६११-१२ में चीन की क्रान्ति हुई। मञ्चू-वंश का राजतन्त्रीय शासन विध्वंस हुआ और उसके स्थान पर प्रजातन्त्र राज्य (Republican Government) की स्थापना की गई। अमेरिका के उत्साहित करने पर चीन ने भी गत यूरोपीय महायुद्ध में मित्र-राष्ट्रों की ओर से भाग लिया था—इस आशा से कि उसे विदेशियों के विशेषाधिकारों से मुक्ति मिल जायगी तथा बॉक्सर-सन्धि (Boxer Botocal) द्वारा चीन को विदेशी शक्तियों को, उनकी क्षति-पूर्ति के लिए जो धन देना पड़ता था, वह कुछ वर्षों के लिए स्थगित कर दिया जायगा। पेरिस-सन्धि-सम्मेलन (१६१६) में तो नहीं, किन्तु वाशिङ्गटन-कॉन्फ़्रेन्स (१६२१-२२) में चीन को कुछ-कुछ सफलता प्राप्त हुई। उसकी उपर्युक्त पहली माँग के लिए विश्वास दिलाया गया कि जब चीन देश में सुदृढ़ शासन स्थापित हो जायगा, तो विशेषाधिकार छोड़ दिए जाएँगे। इसके अनुसार क्रम-क्रम से चीन को युद्ध की क्षति-पूर्ति करने से मुक्ति मिलने लगी। देश में राष्ट्रीय दल ने क्रमशः और भी अधिक ज़ोर पकड़ा और विदेशी-प्रभुत्व के विरुद्ध



श्री० आनन्दपाल शाह

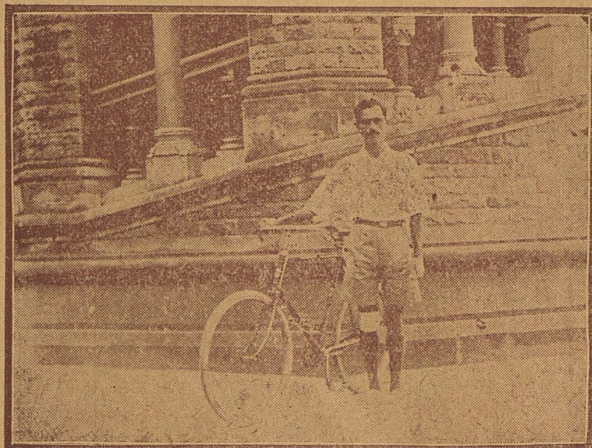
आपने विलायत में डेयरी तथा मुर्ग़ा-मुर्ग़ी पालने की सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त किया है। आप इस कला में प्रवीण होने वाले सर्व-प्रथम भारतीय हैं, जो विलायत में नेशनल पोल्ट्री का डिप्लोमा लेकर हाल ही में विलायत से लौटे हैं।

आन्दोलन तथा युद्ध-सङ्घर्षण जारी रहे। १६२५ ई० के ग्रीष्म-काल में भी यूरोपियनों के विरुद्ध चीन वालों ने बड़ा भयङ्कर विद्रोह मचाया था। चीन का केन्द्रीय शासन अभी सुदृढ़ तथा बलवान नहीं हो पाया है, इसलिए अमेरिका डरता है कि कहीं ऐसा न हो कि जापान चीन पर अपना अधिकार जमा ले और हमें प्रशान्त महासागर तथा उसके तटस्थ एशियाई प्रदेशों से कूच करना

*कुस्तुन्तुनिया-विजय (Fall of Constantinopole) (१४५३ ई०) भी यूरोप पर एशिया की जीत थी।

पड़े। किन्तु वास्तव में अब चीन पर कोई भी शक्ति, चाहे कितनी भी बलवती क्यों न हो, अपना राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित कर अधिक समय तक शासन नहीं कर सकती। चीन को ही लक्ष्य करके वीर नैपोलियन बोनापार्ट ने कहा था—"There lies a sleeping giant. Let him sleep; for when he wakes he will move the world." अर्थात्—"वह देखो, सामने महाबली दैत्य सो रहा है, उसे सोने दो; क्योंकि यदि वह जाग्रत हो उठेगा तो समस्त संसार को हिला देगा।"

फ़िलिपाइन्स द्वीप-समूह, स्पेन-अमेरिका युद्ध (१८९९) के पश्चात् संयुक्त राज्य अमेरिका के अधिकार में आया। वहाँ के निवासी इसके पूर्व स्पेन की अधीनता में ही पराधीन-शासन का फल भोग चुके थे और १८९६ ई० में स्पेन के विरुद्ध विद्रोह भी किया था। ऐसी दशा में अमेरिका के अधीन वे कैसे रहना पसन्द कर सकते थे? फलतः जिस समय अमेरिका का शिष्ट-परिषद (Senate) स्पेन की सन्धि की स्वीकृति दे रहा था, उसी समय फ़िलिपिन लोगों ने सङ्गठन करके अपने देश में प्रजातन्त्र राज्य की घोषणा कर दी और सेना का सङ्गठन कर अमेरिका के विरुद्ध युद्ध भी किया। किन्तु अन्त में असफल हुए—विद्रोह तथा आन्दोलन को अमेरिका की सेना ने शान्त कर दिया। किन्तु विदेशी शासन से वे सन्तुष्ट तथा शान्त कैसे रह सकते थे? १९१३ ई० में संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रेज़िडेण्ट विलसन महोदय ने विश्वास दिलाया था कि अब से फ़िलिपाइन्स द्वीप-समूह के प्रति जिस नीति का अवलम्बन किया जायगा, वह केवल इस दृष्टिकोण से होगा कि उसे स्वतन्त्रता देनी है और उसे स्वतन्त्रता के उपयुक्त बनाने के लिए ही कार्रवाई की जायगी। किन्तु शायद अभी तक अमेरिका समझता है कि फ़िलिपाइन्स द्वीप-निवासी अपने देश की शासन-व्यवस्था करने की क्षमता नहीं रखते। १९१६ ई० में 'जोन्स ऐक्ट' के द्वारा कुछ अधिकार दिए गए थे, किन्तु सन्तोषप्रद मात्रा में नहीं। उस एक्ट के प्राक्कथन में लिखा गया था कि जितनी जल्दी सुदृढ़ शासन स्थापित हो जायगा, अमेरिका अपना प्रभुत्व हटा लेगा। १९१९ ई० में स्थानीय गवर्नर-जनरल ने लिखा भी था कि द्वीप-समूह में दृढ़ शासन स्थापित हो गया है। विलसन महोदय ने भी कॉङ्ग्रेस को इसका सन्देशा भेजा था और यह भी जोड़ दिया था कि अब हमें अपना कर्तव्य समझ कर फ़िलिपाइन को स्वतन्त्रता दे देनी चाहिए, किन्तु कुछ फल न निकला।



श्री० सी० एम० पटेल

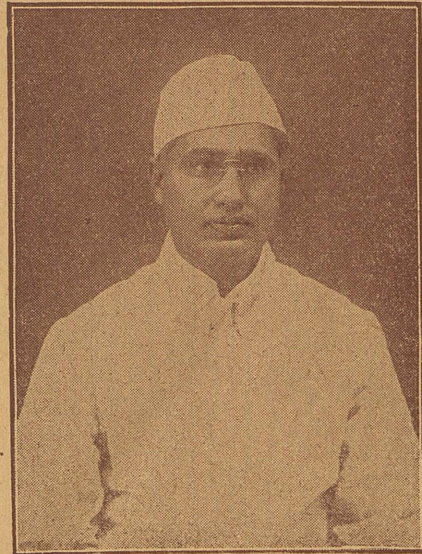
आप साईकिल की दौड़ में सर्व-प्रथम आए हैं। ५० और ४५ मिनिट तक साईकिल पर दौड़ लगा कर आपने यह सम्मान प्राप्त किया है।

१९२७ ई० में फ़िलिपाइन्स द्वीप-समूह की व्यवस्थापिका परिषद ने अपने लोकमत को प्रकट करने के लिए एक बिल पास किया था, जिसका तात्पर्य यह था, कि वोट द्वारा देश की स्वतन्त्रता के प्रश्न का निर्णय कर लिया जाय, किन्तु प्रेज़िडेण्ट कूलिज ने इसे अस्वीकृत कर दिया। आजकल फ़िलिपाइन का राष्ट्रीय दल प्रबल हो रहा है और अब अमेरिका किसी प्रकार भी अधिक समय तक उस पर सुखपूर्वक शासन नहीं कर सकता। फ़िलिपाइन्स द्वीप-समूह अमेरिका के साम्राज्यवाद के लिए, प्रशान्त महासागर में एक सुदृढ़ नाविक सेना के लिए, उपयुक्त स्थान है। अमेरिका के राजनीतिज्ञ जानते हैं कि इसके हाथ से निकल जाने से महासागर तथा उसके तटस्थ एशियाई देशों में (चीन-जापान इत्यादि में) अमेरिका का कुछ भी प्रभाव नहीं रह जायगा। उन्हें यह भी डर है कि यदि हमने स्वतन्त्रता दे दी, तो सम्भव है कि जापान उस पर अपना आधिपत्य स्थापित करके प्रशान्त

महासागर से अमेरिका के सब अधिकारों का मर्दन कर दे।

ईस्ट-इण्डीज़, मलाया प्रायद्वीप तथा फ्रेञ्च इण्डो-चाइना में अभी अधिक जाग्रति नहीं है, यद्यपि राष्ट्रीय भावनाओं ने इन प्रदेशों में भी अपना प्रभाव दिखलाया है। ईस्ट-इण्डीज़ में तो चीनियों द्वारा, जो वहाँ जाते तथा निवास करते हैं, नए भाव फैल रहे हैं। स्याम देश किसी यूरोपीय शक्ति के अधीन नहीं, स्वतन्त्र है। केवल शासन-विभागों में मन्त्रणा देने के लिए कुछ यूरोपीय वहाँ रहते हैं। भारतवर्ष की राष्ट्रीयता के विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। पाठक जानते हैं कि १८८५ ई० से, जब से काँङ्ग्रेस का जन्म हुआ, तब से आज तक राष्ट्रीय भावों ने यहाँ कितना अधिक ज़ोर पकड़ लिया है। बीसवीं शताब्दी—विशेषकर गत यूरोपीय महायुद्ध के बाद से स्वराज्य के लिए प्रबल आन्दोलन द्रुत गति के साथ होने लगा है। असहयोग आन्दोलन तथा वर्तमान सत्याग्रह आन्दोलन स्पष्टतया प्रकट करते हैं कि भारतीयों का हृदय कितना स्वतन्त्र हो गया है। बहुत आशा है कि भारतवर्ष निकट-भविष्य में स्वराज्य अथवा स्वतन्त्रता प्राप्त कर ले।

अफ़ग़ानिस्तान भी, टर्की, जापान तथा स्याम की भाँति स्वतन्त्र राष्ट्रों में है। अङ्गरेज़ तथा रूसी अधिक समय तक इस प्रयत्न में थे कि इस देश पर अपना प्रभुत्व स्थापित करें। रूस चाहता था कि अफ़ग़ानिस्तान के मार्ग से भारतवर्ष पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में ले ले। ब्रिटिश नीति थी कि यदि अफ़ग़ानिस्तान में हमारी शक्ति सुदृढ़ रूप में स्थापित हो जायगी और वहाँ का अमीर अपने पक्ष में आ जायगा, तो रूस द्वारा भारत पर आक्रमण होने का भय न रह जायगा। १९०७ ई० में रूस तथा ब्रिटेन में सन्धि हुई, जो १९१९ तक स्थिर रही। उसी वर्ष अमीर हबीबुल्ला की हत्या हो जाने पर उनके पुत्र अमानुल्ला अफ़ग़ानिस्तान के अमीर घोषित किए गए। १९२७ ई० में यूरोप-पर्यटन के पश्चात् अफ़ग़ानिस्तान लौटने पर उन्होंने अपने देश को पाश्चात्य ढङ्ग पर परिवर्तित करने का प्रयत्न किया। भ्रमण-काल में इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स, रूस, ईरान इत्यादि के अतिरिक्त नवीन टर्की को भी ख़ूब देखा था। सिंहासनारोहण करते ही उन्होंने अपने देश में स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और रूस से सन्धि कर ली। रूस वाले पहिले ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध में एशिया वालों को उत्तेजित कर रहे थे। अमीर ने अङ्गरेज़ों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। २२ नवम्बर, १९२२ ई० को सन्धि हुई, जिसके द्वारा ब्रिटिश सरकार को अफ़ग़ानिस्तान की स्वतन्त्रता स्वीकृत करनी पड़ी। स्मरण रखना चाहिए कि १९२७ ई० के यूरोप-भ्रमण के बाद जब अमानुल्ला अपने देश में लौटे, तब पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावान्वित होकर टर्की की भाँति सुधार तथा परिवर्तन करना प्रारम्भ कर दिया। विदेशों से मन्त्री तथा विभिन्न शासन-विभागों के लिए अनुभवी राजनीतिज्ञों की आवश्यकता हुई, परन्तु अमानुल्ला ने रूस अथवा इङ्गलैण्ड-वासियों को किसी पद पर भी नियुक्त नहीं किया, क्योंकि उनसे भय था। इसलिए फ़्रान्स, जर्मनी तथा इटली आदि से आवश्यकतानुसार कार्यकर्ता बुलाए गए। परन्तु कुछ षड्यन्त्रकारियों को अमानुल्ला का यह सुधार-कार्य अच्छा नहीं लगा, उन्होंने विद्रोह की सृष्टि की और अन्त में अमानुल्ला को भाग जाना पड़ा। अफ़ग़ानिस्तान इस समय विदेशियों के अधिकार

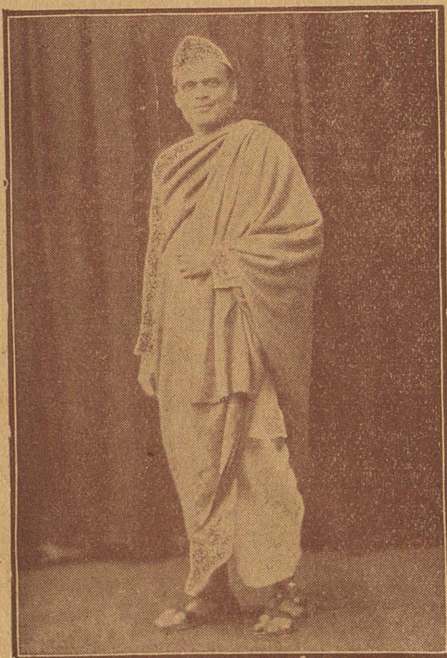


श्री० निश्छलदास, बी० ए०

आप कराची कॉङ्ग्रेस के स्वागतकारिणी सभा की जाँच-कमिटी के मन्त्री नियुक्त हुए थे।

से सर्वथा स्वतन्त्र है तथा अमीर नादिरशाह इस समय उस देश का शासन कर रहे हैं।

ईरान अथवा फ़ारस देश भी धीरे-धीरे अङ्गरेज़ों तथा रूस वालों के अधिकार में जा रहा था। १६०७ ई० में, जब कि इन दोनों शक्तियों में सन्धि हो चुकी थी, ईरान में राष्ट्रीय दल के लोगों ने आन्दोलन किया। फलतः ईरान के शाह को एक राष्ट्रीय परिषद (मजलिस) की स्थापना करनी पड़ी। उस परिषद में राष्ट्रीय दल के



श्री० जी० जी० जोग

आप कानपुर के सुप्रसिद्ध नेता हैं, जिन्हें हाल ही में होने वाले दङ्गे में गुण्डों ने बुरी तरह घायल किया था।

प्रतिनिधि अधिक संख्या में पहुँच गए और एक महत्वपूर्ण आर्थिक सुधार करने पर ज़ोर दिया, जिसका अभिप्राय यह था कि ईरान यूरोप से रुपया ऋण लेकर अपने को धोखे में मत डाले। विदेशियों ने ईरान के शाह को भड़काया और सहायता देने का वचन दिया। फिर क्या था, विद्रोह प्रारम्भ हो गया। अन्ततोगत्वा राष्ट्रीय दल की विजय हुई। ईरान की गद्दी पर एक दूसरे नए शाह बिठलाए गए। मजलिस की बैठक हुई तथा सुधार के कार्य प्रारम्भ हुए। आर्थिक विभाग का प्रबन्ध सुचारु रूप से करने के लिए अमेरिका से एक अर्थशास्त्रवेत्ता को आमन्त्रित किया गया, किन्तु अङ्गरेज़ तथा रूसी इस कार्य से अत्यन्त रुष्ट हुए और उसे निकाल देने के लिए शाह से दरख़्वास्त की और साथ ही धमकी देने के लिए एक सेना भी भेजी। परिणाम-स्वरूप अमेरिकन अर्थ-सचिव अपने पद से हटा दिया गया, मजलिस की बैठक स्थगित कर दी गई और १६११ से १६१४ ई० तक रूस तथा ब्रिटेन के प्रभाव के कारण शासन का स्वरूप अव्यवस्थित रहा।

१६१५ ई० में ब्रिटेन और रूस में एक नया समझौता हुआ, जिसके अनुसार दोनों शक्तियाँ समस्त ईरान देश को परस्पर विभाजित कर अपने-अपने राजनैतिक प्रभुत्व के अन्तर्गत कर लेतीं, किन्तु १६१७ ई० में रूस में बोल्शेविक क्रान्ति हुई। बोल्शेविक लोगों ने इस सन्धि की घोर निन्दा की और ईरान से अपना प्रभुत्व हटा लेने की घोषणा की। फिर क्या था, अङ्गरेज़ी सेना ने ईरान पर अधिकार कर लिया। ईरान वालों ने ब्रिटेन की इस चातुरी तथा नीति पर हैरान होकर पेरिस के सन्धि-सम्मेलन के सम्मुख अपील की, किन्तु इससे लाभ कुछ न हुआ। ६ अगस्त, १६१६ ई० को एक ब्रिटेन-ईरान-सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए ईरान-मन्त्रि-मण्डल अङ्गरेज़ों द्वारा बाध्य किया गया। यदि सन्धि की धाराएँ कार्यरूप में परिणत की जातीं, तो उसके अनुसार शासन के प्रत्येक विभाग में एक अङ्गरेज़ मन्त्री की नियुक्ति की जाती। इधर राष्ट्रीय परिषद के द्वारा रिज़ा ख़ाँ नाम का एक वीर सैनिक बहुत उच्च पद पर पहुँच गया। अक्टूबर १६२५ ई० में शाह को गद्दी से उतार दिया गया और रिज़ा स्वयं शासन का प्रधान बना। १६२६ ई० के अप्रैल मास में रिज़ा तेहरान में ईरान का शाह अभिषिक्त हुआ। उधर बोल्शेविक लोगों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध लोगों को उत्तेजित करना आरम्भ किया। निदान अङ्गरेज़ों की प्रभुता ईरान में स्थापित न हो पाई और रिज़ा ख़ाँ के अध्यक्षत्व में, एक राष्ट्रीय प्रतिनिधि महासभा के मत के आधार पर, ईरान में आज शासन-यन्त्र चल रहा है।

टर्की

सोलहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक टर्की का साम्राज्य बहुत बढ़ा-चढ़ा था। बालकन प्रायद्वीप के

देशों पर, बल्कि कुछ और आगे तक, यूरोप में इसका प्रभाव फैल गया था। अरब देश के उत्तर के कई प्रदेश इसके अधिकार में आ गए थे। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में साम्राज्य-शक्ति का ह्रास होना प्रारम्भ हुआ। रूस टर्की पर बार-बार आक्रमण करने लगा। क्योंकि उसके पराजय से रूस को भारतवर्ष तक पहुँचने की आशा थी। किन्तु ब्रिटेन तथा फ़्रान्स रूस की नीति का घोर विरोध करते थे। साम्राज्य की हीनावस्था में यूरोपीय राष्ट्र तथा राजनीतिज्ञ टर्की को यूरोप का 'बीमार आदमी' (The sick man of Europe) कहा करते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि पोलैण्ड की भाँति टर्की भी यूरोप के बलशाली राष्ट्रों में विभक्त हो जायगा। किन्तु टर्की के सौभाग्य से यूरोपीय राष्ट्रों में परस्पर वैमनस्य था, जिसके कारण टर्की का अस्तित्व बना रह गया। जब जर्मनी के सिंहासन पर विलियम द्वितीय आरूढ़ हुआ तो जर्मनी ने भी टर्की पर अपना अधिकार स्थापित करने की बात ठानी। १८८९ ई० में विलियम ने टर्की देश का भ्रमण किया। १८९५ ई० में लॉर्ड साल्सबरी ने टर्की को परस्पर विभाजित करने का प्रस्ताव विलियम के सम्मुख उपस्थित किया, किन्तु विलियम ने उसे अस्वीकृत कर दिया। सम्राट विलियम ने अपने दूसरे भ्रमण में टर्की-सुल्तान से, एक आज्ञापत्र द्वारा व्यापारिक सम्बन्ध के लिए रेलवे इत्यादि बनवाने का अधिकार प्राप्त किया। रेलवे की लाइन बग़दाद तक आती और फिर वहाँ से फ़ारस की खाड़ी तक उसका सूत्र स्थापित किया जाता, परन्तु रूस और ब्रिटेन आदि यूरोपीय शक्तियों ने इस आयोजना का घोर विरोध किया।

विगत महायुद्ध के प्रारम्भ होने पर जब टर्की ने जर्मनी का पक्ष लेकर युद्ध में भाग लिया, तब मित्र-राष्ट्रों ने टर्की को पराजित किया और उसके कई प्रदेशों पर अधिकार जमा लिया। क़ुस्तुन्तुनिया (Constantinople) तथा अनातोलिया का अधिकांश भाग मात्र ही टर्की के अधिकार में अवशेष रह गया। पराजित टर्की के सुल्तान ने सेव्रेज़ (Sevres) के सन्धि-निर्णय को विवश हो, स्वीकार कर लिया तथा उस पर अपना हस्ताक्षर कर दिया। किन्तु इस समय टर्की में मुस्तफ़ा कमाल-पाशा के नेतृत्व में राष्ट्रीय दल ने बड़ी उन्नति कर ली थी। कमाल पाशा ने उक्त सन्धि-निर्णय की घोर निन्दा तथा विरोध किया और उसे मानने से इन्कार कर दिया। टर्की के कुछ विजित प्रदेशों को लड़ कर पुनः जीत लिया और अङ्गोरा में अपनी राजधानी बना कर टर्की में प्रजातन्त्र राज्य की घोषणा कर दी। निदान टर्की तथा मित्र-राष्ट्रों के मध्य १९२२-२३ ई० लासाने (Laussanne) में एक सम्मेलन हुआ, जिसमें टर्की को, युद्ध में जीते हुए कई प्रदेशों को लौटा दिया गया। इस सफलता के दो-तीन मुख्य कारण थे। कमाल पाशा तथा उनकी राष्ट्रीय सेना की सुसङ्गठित शक्ति का प्रभाव—यह एक कारण था। दूसरी बात यह थी कि मुस्लिम-संसार में टर्की के



श्रीमती मारगथा वल्ली अम्मल

आप रामनद (मद्रास) ज़िला-बोर्ड की सदस्या और ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट भी हैं।

पक्ष में, सेव्रेज़ के सन्धि-निर्णय का विरोध करने के लिए बड़ा आन्दोलन किया गया था। भारतवर्ष में ख़िलाफ़त का आन्दोलन इसी का एक सबल अङ्ग था। तीसरी बात यह थी कि युद्ध के उपरान्त अमेरिका भी टर्की से व्यापारिक-अधिकार की प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर रहा था और लासाने की सन्धि के पूर्व कुछ अधिकार मिल भी गए थे। इसी के फल-स्वरूप लासाने की कॉन्फ़्रेन्स में अमेरिका ने टर्की के पक्ष का समर्थन किया।

१६२१ ई० में टर्की का नया विधान तैयार किया गया था, जिसको आवश्यकतानुसार संशोधित कर १६२४ ई० में और भी परिवर्द्धित किया गया। १६२१ में सुल्तान को गद्दी से उतार कर उस पद को ही मिटा दिया। १६२४ ई० में ख़लीफ़ा का पद भी मिटा दिया गया। टर्की ने राजनैतिक तथा सामाजिक सुधारों में पाश्चात्य सभ्यता का पर्याप्त अनुकरण किया है। १६२३ की लासाने-सन्धि के अनुसार टर्की में विदेशियों के अधिकांश विशेषाधिकारों (Capitulatory Rights) का अन्त



श्रीमती जी० के० चेटियर, बी० ए०

आप मङ्गलोर (मद्रास) की प्रथम श्रेणी की ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं।

हो गया था और जो कुछ अंश अवशेष रहा, उसका भी २८ मार्च, १६२८ ई० के टर्की-राष्ट्रीयता क़ानून (Turkish Nationality Act) के अनुसार अन्त कर दिया गया। इस प्रकार टर्की अब एक स्वतन्त्र राष्ट्र है।

अरब के कुछ प्रदेश, जो कि टर्की-साम्राज्य के अन्तर्गत मिला लिए गए थे, युद्ध के पश्चात् फ़्रान्स तथा इङ्गलैण्ड को राष्ट्र-सङ्घ की ओर से शासन करने के लिए दिए गए। राष्ट्रसङ्घ-विधान की २२वीं धारा में, इन प्रदेशों को पर्याप्त रूप से सभ्य तथा उन्नत माना गया। इनकी स्वतन्त्रता भी आंशिक रूप से स्वीकृत की गई है। मन्त्रणा तथा उचित परामर्श देने के लिए ही इन प्रदेशों को फ़्रान्स तथा इङ्गलैण्ड की अधीनता में रक्खा गया है और यह विश्वास दिलाया गया है कि कुछ समय में उचित योग्यता प्राप्त कर लेने पर ये एकदम स्वतन्त्र हो जायँगे। इन प्रदेशों में सीरिया फ़्रान्स के अधिकार में तथा मेसोपोटामिया (ईराक़) और पेलेस्टाइन अङ्गरेज़ों के हाथ में है। १४ दिसम्बर, १६२७ ई० की सन्धि के अनुसार ब्रिटेन ने ईराक़ की पूर्ण-स्वाधीनता स्वीकार कर ली है।

अरब के और कई प्रदेशों पर अङ्गरेज़ों का किञ्चित अंश में प्रभाव है, किन्तु प्रभुता नहीं। हेजाज तथा नज्द के राज्य स्वतन्त्र हैं।

ऊपर के संक्षिप्त विवेचन से यह स्पष्ट रूप से प्रकट है कि एशिया के देशों में, बीसवीं शताब्दी के अब तक पचीस-तीस वर्षों में पर्याप्त राष्ट्रीय जाग्रति हो गई है। वह समय दूर नहीं है, जब सभी देश स्वतन्त्र होकर यूरोपीय प्रभुत्व तथा विशेषाधिकारों से सर्वथा मुक्त हो जायँगे। उस दशा में स्वतन्त्रता तथा स्वाधीनता के वायु-मण्डल में एशिया के विभिन्न राष्ट्रों में मैत्री तथा सन्धि की स्थापना होगी। किन्तु यदि इन्होंने भी पाश्चात्य गुप्तनीति (Secret Deplomacy), कूटनीति तथा साम्राज्यवाद की नीतियों का अनुकरण किया, तो निस्सन्देह पारस्परिक वैमनस्य, अविश्वास तथा सङ्घर्षण रहेगा। किन्तु यदि प्राच्य देशों ने पाश्चात्य सभ्यता एवं राजनीति के सम्पर्क में आकर वस्तुतः कुछ सीखा है और यदि उन्हें उससे लाभ उठाना इच्छित होगा, तो वे अपने राजनैतिक ध्येय को पहिले से ही ठीक कर लेंगे। युद्ध-नीति, साम्राज्यवाद की नीति, एक देश का दूसरे देश पर शासन करने की नीति, इत्यादि नीतियाँ संसार को सर्वदा सङ्कटाकीर्ण बनाए रक्खेंगी। यदि सब लोग यह हृदयङ्गम कर लें कि संसार में शान्ति की स्थापना तथा पारस्परिक मैत्री के भावों के द्वारा ही सर्वाङ्गीय उन्नति तथा समस्त राष्ट्रों का सच्चा कल्याण हो सकता है, तो एशिया के राष्ट्र उन युद्ध तथा सङ्घर्षणों से, जो यूरोप में १४१४ ई० से १६१४ तक हुए हैं, बच सकते हैं। अपने सम्मुख ऐसे ही ध्येय रख कर हम स्वतन्त्र होना चाहते हैं।



तीन आदर्श बहिनें

पञ्जाब की विख्यात देश-सेविकाएँ, जो गाँधी-इर्विन समझौते के समय लाहौर के नारी-जेल से मुक्त की गई थीं। दाहिनी ओर से—कुमारी श्यामा ज़ुतशी, एम० ए०; कुमारी जानकी ज़ुतशी, एम० ए० और कुमारी मनमोहिनी ज़ुतशी, बी० ए०।

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

मालिका

जिसके रचयिता हैं—हिन्दी-संसार के सुपरिचित कवि और लेखक—

पं० जनार्दनप्रसाद झा, 'द्विज' बी० ए०

यह वह 'मालिका' नहीं, जिसके फूल मुरझा जायँगे, यह वह 'मालिका' नहीं, जो दो-एक दिन में सूख जायगी; यह वह 'मालिका' है, जिसकी ताज़गी सदैव बनी रहेगी। इसके फूलों की एक-एक पङ्खुरी में सौन्दर्य है, सौरभ है, मधु है, मदिरा है। आपकी आँखें तृप्त हो जायँगी, हृदय की प्यास बुझ जायगी, दिमाग़ ताज़ा हो जायगा, आप मस्ती में झूमने लगेंगे।

आप जानते हैं, द्विज जी कितने सिद्धहस्त कहानी-लेखक हैं। उनकी कहानियाँ कितनी करुण, कोमल, रोचक, घटनापूर्ण, स्वाभाविक और कवित्वमयी होती हैं। उनकी भाषा कितनी वैभवपूर्ण, निर्दोष, सजीव और सुन्दर होती है। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी करुण-रस की उमड़ती हुई धारा है, तड़पते हुए दिल की जीती-जागती तस्वीर है। आप एक-एक कहानी पढ़ेंगे और विह्वल हो जायँगे; किन्तु इस विह्वलता में अपूर्व सुख रहेगा।

इन कहानियों में आप देखेंगे मनुष्यता का महत्व, प्रेम की महिमा, करुणा का प्रभाव, त्याग का सौन्दर्य! आप देखेंगे कि प्रत्येक कहानी के अन्दर लेखक ने किस सुगमता और सचाई के साथ ऊँचे आदर्शों की प्रतिष्ठा की है।

इसलिए हमारा आग्रह है कि आप 'मालिका' की एक प्रति अवश्य मँगा लीजिए, नहीं तो इसके बिना आपकी आलमारी शोभाहीन रहेगी। हमारा दावा है कि ऐसी पुस्तक आप हमेशा नहीं पा सकते। अभी मौक़ा है—मँगा लीजिए! मू० केवल ४) रु०

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

ईश्वर-भक्ति

[श्री० नयनसिंह जी नेगी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]



म्माँ ! प्रातःकाल के लिए जो तुमने ईश्वर-प्रार्थना सिखाई थी, नित्य-प्रति की तरह उसे आज मैं नहीं करूँगा।"

"जो तुम्हारी इच्छा।"—कह कर माता अपने काम में लग गई।

उपरोक्त बातें न्यूयार्क शहर के एक कुटुम्ब में हो रही थीं। बालक की अवस्था इस समय लगभग १० साल की होगी। उसका पिता एडविन लूथर वहीं एक कारख़ाने में क़ुली का काम किया करता था। अभी बालक साल भर का भी न होने पाया था कि अकस्मात् पिता की मृत्यु हो गई। उस समय उसकी माता की अवस्था केवल २९ साल की थी। ऐसे समय में पिता की मृत्यु हो जाने पर बालक के भरण-पोषण का भार अभागी माता के ऊपर पड़ा। माता पढ़ी-लिखी तथा सरल स्वभाव की थी। ईश्वर पर पूर्ण विश्वास था और धर्म-कर्म का विशेष ख़्याल रखती थी। धनहीना और दुखी होने पर भी वह सुन्दरता में अद्वितीय थी। परन्तु उस सुन्दरता में चञ्चलता न थी।

इस तरुणावस्था में विधवा होकर यदि वह चाहती तो दूसरा ब्याह कर सकती थी। रूप और यौवन से सुख ख़रीदना कुछ कठिन न था। किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। वह सोचती कि भाग्य में जब दुख ही लिखा है, तो दूसरा ब्याह करने ही से क्या होगा? प्रथम वह जिस पति को उतना प्यार करती थी, उसके मरने पर दूसरा ब्याह करना उसकी पुण्य-स्मृति को भुला देना है; नहीं, सच्चे प्रेम का ह्रास करना है। और फिर उसका प्यारा बच्चा? अगर पुनर्विवाह से उसको सुख मिले भी, तो बच्चा तो कभी भी सुखी नहीं रह सकता। नया पति दूसरे के बच्चे को क्यों प्यार करने लगा? यही सब सोच कर उसने विधवा ही रहना उचित समझा। घर में सम्पत्ति तो कुछ थी नहीं, इधर-उधर बड़े घरों में मज़दूरी करके जो कुछ कमा सकती थी, उसी से अपना और बच्चे का पेट भरती। जब तक बच्चा छोटा था, तब तक विशेष कष्ट माता को उसके लिए न उठाना पड़ा। किन्तु अब बच्चा धीरे-धीरे सयाना हो चला। जब पाँच साल का हुआ तो उसे स्कूल भेजना शुरू कर दिया। रात्रि के समय धार्मिक पुस्तकें पढ़ कर उसे सुनाया करती। सोने के समय तथा प्रातःकाल के लिए उसने बच्चे को ईश्वर-प्रार्थना सिखा दी थी। जिसे वह नित्य-प्रति माता के साथ किया करता। स्कूल में वह ज्यों-ज्यों एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में जाने लगा, त्यों-त्यों माता की कठिनाइयाँ बढ़ने लगीं। उसकी दिन भर की कमाई इतनी न होती, जिससे दोनों का पेट भी भरे और बच्चे के वस्त्र तथा किताबों का ख़र्चा भी चले। तिस पर भी उसने बच्चे का पढ़ना न रोका! ख़ुद नङ्गी-भूखी रह कर बच्चे का ख़र्च चलाती। बालक जब स्कूल जाता तो वहाँ देखता कि कितने ही उसी की उम्र के बालक मोटरों और फ़िटनों में स्कूल आया करते हैं। बहुतों के साथ तो तीन-तीन, चार-चार नौकर उन्हें पहुँचाने के लिए आते हैं। ये लोग नित्य नई पोशाकें बदलते और जेब-ख़र्च के लिए काफ़ी पैसे अपने साथ लाते हैं। कुछ बालक ऐसे भी थे, जो पैदल या बाईसिकलों पर आया करते थे। किन्तु सभी की हालत उससे कहीं अच्छी थी। उसके पास तो एक कमीज़, जाँघिया और साधारण से जूते और जुराबों के सिवाय कुछ था ही नहीं। जब कभी कपड़े मैले हो जाते तो उनको धोने के लिए उस दिन उसको स्कूल से छुट्टी लेनी पड़ती। इतवार के दिन सभी लड़के गिरजे में चटकीली-भड़कीली पोशाक में आया करते थे। मगर वहाँ भी उसका वही फटी-पुरानी कमीज़! बालक के चित्त में यह असमानता अक्सर खटकती रहती थी। कभी-कभी वह माता से भी इन बातों का ज़िक्र किया करता। माता कहती—"बेटा, यह सब ईश्वर की इच्छा है। वह जो कुछ भी करता है, हमारी भलाई के लिए करता है। आख़िर धन ही तो इस संसार में सब कुछ नहीं है।

धन से अभिमान और अभिमान से पाप की उत्पत्ति होती है। धनवान लोग यहाँ तो अवश्य सुखी जान पड़ते हैं, किन्तु स्वर्ग का सुख नहीं मिल सकता। देखते नहीं, धर्म-पुस्तक में लिखा है कि ऊँट चाहे भले ही सुई के छेद से निकल जाय, किन्तु धनवान स्वर्ग नहीं पा सकते। ईश्वर निर्धनों को जितना प्यार करता है, उतना धनवानों को नहीं। ईश्वर-भक्ति और लोक-सेवा ही सच्चा सुख है। धन-दौलत ईश्वर-भक्ति के बाधक हुआ



श्रीमती सरलादेवी शर्मा

आप कानपुर की सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्री हैं, जिन्हें सत्याग्रह आन्दोलन में ३ मास का कारावास-दण्ड मिला था।

करते हैं। प्रभु ईसा भी तो निर्धन ही थे। हमें उन्हीं का अनुकरण करना चाहिए। माता की इन बातों से बालक का चित्त बहल जाता और वह खेल-कूद में लग जाता।

ऊपर जिस दिन का ज़िक्र हो चुका है, उससे पहली रात्रि को बालक जब स्कूल से लौटा तो उसने और दिनों की भाँति माता को दरवाज़े पर खड़ी होकर अपनी बाट जोहते हुए नहीं पाया। आश्चर्य और भय के साथ बालक अन्दर गया। देखता क्या है कि माता खाट पर लेटी हुई है। उसे देख कर बालक को कुछ धैर्य हुआ। उसने कहा—"माँ, भूख लगी है, कुछ खाने को ला।" माता बोली—"बेटा! आज चित प्रसन्न नहीं है। इसीलिए खाना न पका सकी। चूल्हे के पास रोटी का टुकड़ा रक्खा हुआ है, उसी को खा लो। सुबह होते ही भोजन बना दूँगी।" बालक शान्त प्रकृति का तो था ही, उसी टुकड़े को खाकर लेट गया। एक तो माता की बीमारी की चिन्ता और दूसरे भूख की व्यथा से बालक दुखी था। लेटते-लेटते उसके चित्त में विचार-धाराएँ उठने लगीं। पुरानी बातें उसको फिर से याद आईं। वह सोचने लगा—"ईश्वर का यह क्या न्याय है कि एक ओर धन-सम्पत्ति और ऐश-आराम और दूसरी ओर दुख ही दुख! भला मेरी माता और मैंने ईश्वर का क्या बिगाड़ा है, जो हमें भरपेट भोजन भी नहीं मिलता? उस दिन बातों ही बातों में डेविड और जॉन कहते थे कि उनके माता-पिता तो कभी भी ईश्वर की उपासना नहीं करते। वे कहते हैं कि उन्हें इतना समय कहाँ है, जो रोज़ सुबह-शाम दो-तीन घण्टे ईश्वर का भजन किया करें। उन्हें तो सुबह से शाम तक अपने ही काम से फ़ुरसत नहीं मिलती। बड़ी मुश्किल से इतवार के दिन एकाध घण्टा मिलता है, उसमें मित्रों के घर आना-जाना ही हो सकता है। फिर भी उनके पास इतना धन है! जब वे ईश्वर का नाम नहीं लेते तो मुझे क्या पड़ी है कि मैं अपना सर पीटा करूँ। भला हमें ऐसी कौन सी नियामत ईश्वर ने बख़्शी है, जो उसकी प्रार्थना किया करें? अम्माँ चाहे भले ही उसका नाम लें, मगर मैं तो अब न लूँगा।" यही सोचते-सोचते बालक को नींद आ गई। जब प्रातःकाल उसकी आँख खुली तो वह फिर उसी विचार-तरङ्ग में बहने लगा और इसलिए उसने माता से कहा कि आज वह ईश्वर-प्रार्थना न करेगा। माता तो बुद्धिमती थी ही, बालक का भाव समझ गई। उसने सोचा, अवश्य आज उसके चित्त में फिर से पुराना विकार उठ गया है। इसीलिए माता ने बालक से विशेष कुछ न कहा। वह बाज़ार से कुछ चावल लाई और दोनों ने उसी को उबाल कर खा लिया। भोजन कर चुकने पर माता ने बालक से कहा—"बच्चा, आज तुम्हारा चित्त अच्छा नहीं। आज तुम स्कूल न जाना। मुझे भी कुछ ज्वर-सा मालूम होता है, चलो तुम्हें घुमा

लाऊँ। चित बहल जाएगा।" थोड़ी देर बाद दोनों एक गली से निकलते हुए दिखाई दिए।

यों तो न्यूयार्क एक धनाढ्य और समृद्धिशाली शहर है। संसार के सब से धनी लोग यहीं रहते हैं। सड़कों के दोनों ओर धवल-धामों की क़तारें आकाश से बातें करती हुई दिखाई देती हैं। इन्हीं महलों में धनिक लोग स्वर्ग का सुख लूटा करते हैं। सड़कों पर हर रोज़ लाखों मोटरें इधर-उधर दौड़ा करती हैं। कहीं-कहीं पर सुहावने उद्यान बने हुए हैं, जहाँ पर अमीर लोग अपनी रमणियों के साथ हवा खाने जाया करते हैं। देखने में सारा शहर इन्द्रपुरी सा मालूम पड़ता है। परन्तु इतना होते हुए भी शहर के बाहर कुछ ऐसी गलियाँ हैं, जिनको शहर का "कूड़ा-घर" कहना अत्युक्ति न होगा। इन गलियों में यदि यह कहा जाय कि संसार के निर्धन से निर्धन लोग रहते हैं, तो कुछ अनुचित न होगा। यहाँ पर पड़े हुए ये लोग मानो न्यूयार्क के धनिकों का मान-मर्दन किया करते हैं। इन्हीं में से एक गली में आज माता अपने बालक को ले चली। कुछ दूर पहुँच कर उनको भिखमङ्गों की एक क़तार मिली। उनमें से बहुत से उसी की अवस्था के बालक थे। और कई उससे भी छोटे। इन बेचारों के बदन पर चीथड़ा तक न था। भूख से पेट सूख गया था और बदन की हड्डियाँ एक के बाद दूसरी बाहर निकली हुई दिखलाई पड़ती थीं। बड़ी मुश्किल से माँगने के लिए हाथ ऊपर उठा सकते थे। माता ने बतलाया कि उनके माँ-बाप नहीं हैं। इसी से यहाँ पर पड़े-पड़े जो कुछ किसी ने दे दिया, उसे खा लिया करते हैं। अगर कभी किसी भलेमानुस की नज़र इन पर पड़ गई तो वह इन्हें यतीमख़ाने भिजवा देगा, वरना ये लोग यहीं पड़े-पड़े अपना प्राणान्त कर देंगे। इस गली की दूसरी ओर एक अस्पताल था। माता बालक को उस अस्पताल में ले गई। अस्पताल का भी विशाल भवन था। उसमें कई बड़े-बड़े कमरे थे। और सैकड़ों मरीज़ उसके अन्दर थे। यह अस्पताल प्रायः निर्धनों के लिए था। माता बालक को एक-एक कमरा दिखाने लगी। बालक ने देखा कि एक कमरे में अन्धे ही अन्धे पड़े हुए हैं और दूसरे में लँगड़े-लूले। कहीं पर कोई कराह रहा था और कोई मारे पीड़ा के चिल्ला रहा था। किसी के बदन पर घाव पड़े हुए थे और कोई पानी-पानी करके बेचैन हो रहा था। एक स्थान पर एक बालक ने खाँसते-खाँसते प्राण दे दिए। डॉक्टर ने देख कर कहा—"बेचारे को बड़ा कष्ट था, अब सदा के लिए चैन से सो गया! इसको यहाँ से उठा लो।" अस्पताल के ही दो नौकर आए और बालक की लाश उठा कर ले गए। इसी तरह भाँति-भाँति के दुखी लोगों को देख कर बालक का मन घबरा उठा। उसने पहले कभी ऐसा दृश्य न देखा था। उसने माता से कहा—"चलो घर चलें।"



सौभाग्यवती श्रीमती दुर्गादेवी वर्मा

हैहयवंशी क्षत्रियों में पर्दा-प्रथा के मस्तक पर पाद-प्रहार करने वाली आप सर्व-प्रथम महिला-रत्न हैं।

घर लौटते हुए दोनों की आपस में कोई बातचीत न हुई। बालक सोचने लगा—"ओह! कैसा दुख है? मैं तो सोचता था कि केवल मैं ही एक दुखी हूँ। किन्तु मेरी यह भूल थी। इन दुखियों के सामने तो मेरा दुख कुछ भी नहीं। मुझे परमात्मा ने एक दयामयी माता दी है, जिसके प्रेम के सामने संसार की सारी सम्पत्ति तुच्छ है। माता के होते हुए तो मुझे कुछ भी कष्ट नहीं है। जो कुछ दुख होगा, माता ही जानती होगी। ज़रा उन

भूखे बालकों को तो देखो, बेचारों की माताएँ भी नहीं हैं। एक टुकड़े के लिए राह चलते हुओं के सामने हाथ फैलाते हैं। फिर भी टुकड़ा नहीं मिलता। आह! उनका बदन मारे भूख के कैसा सूखा हुआ था? फिर अस्पताल के उन बीमारों को देखो। बेचारे कितने दुख में हैं! किसी की आँख नहीं, किसी का हाथ नहीं और किसी का पैर नहीं। किसी का तो सारा बदन ही सड़ा जाता है। जब बेचारे बालक की लाश उठाई गई, तो उसके लिए दो आँसू गिराने वाला भी कोई न था। मुझे



श्रीमती जी० एस० सन्दोशम एडवर्ड

आप कैनानोर (मद्रास) की म्युनिसिपल शिक्षिका हैं और आज-कल घर-घर घूम कर शराब के विरुद्ध उपदेश दे रही हैं!

तो परमात्मा ने तन्दुरुस्ती दी है, हाथ-पैर भी दिए हैं। मैं देख सकता हूँ, चल-फिर सकता हूँ, काम कर सकता हूँ। क्या यह कम नियामत है? क्या इसके लिए मुझे परमात्मा को धन्यवाद नहीं देना चाहिए?" यही सोचता हुआ बालक अपनी माता के साथ घर पहुँचा। माता ने कहा—"बेटा, तुम तब तक खेल-कूद करो, मैं भोजन बनाती हूँ।"

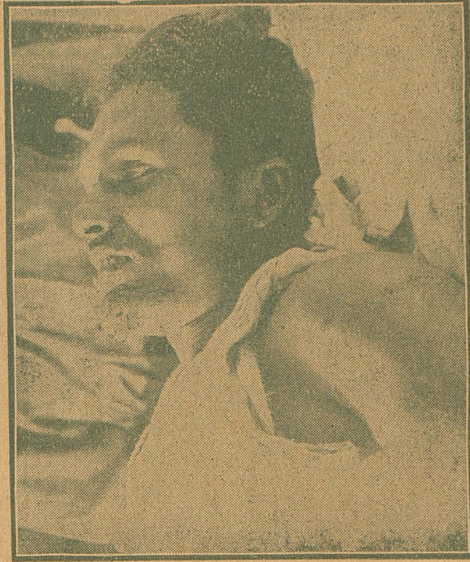
बालक—"नहीं अम्माँ, सब से पहले आओ हम-तुम ईश्वर की प्रार्थना करें। मुझसे आज सुबह बड़ी भूल हो गई, जो ईश्वर का नाम न लिया। उस कमी को मैं अब पूरी करूँगा और भविष्य में फिर कभी ऐसी भूल न करूँगा।" प्रेम से माता का दिल भर आया। वह बालक को गले लगा कर रोने लगी।

दूसरे दिन बालक शाम को खेल-कूद करने के बजाय सीधे अस्पताल गया। उसने पहले ही दिन अपने जी में पक्की ठान ली थी कि पढ़ने के बाद जो कुछ समय मिलेगा, उसे वह अस्पताल के उन दीन-दुखियों की सेवा में बिताएगा। अस्पताल में वह नर्स से मिला और बड़े विनम्र भाव से कहने लगा—"बहिन, यदि अपने काम में आप मुझे भी हाथ बटाने का अवकाश दें तो मैं आपका बड़ा ही अनुगृहीत होऊँगा।" नर्स ने समझा कि बालक के मन की उमङ्ग है। एक-दो दिन के बाद ही खेल में भूल जाएगा। उसने कहा—"प्यारे बच्चे! तुम्हें अभी काम करना नहीं आता। पहले तुम मेरे साथ काम करना सीख लो। सीख जाओगे तो हाथ बटाना।" "धन्यवाद है"—कह कर बालक उसके साथ हो लिया।

बालक को अस्पताल आते हुए ५-६ दिन हो चुके। नर्स ने देखा कि उसके अन्दर सेवा-भाव निरी बालकों की उमङ्ग नहीं, बल्कि पूर्ण-निश्चय का फल-स्वरूप है। क्योंकि उसकी वह तृष्णा दिन पर दिन बढ़ती ही गई। नर्स सयानी उम्र की थी। बालक के इन विचारों से उसके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा और बालक के प्रति उसका स्नेह हो गया। प्रारम्भ में बालक कभी किसी को पानी पिला देता, किसी का बिस्तर ठीक कर देता और किसी को बाज़ार से कुछ चीज़ें लाकर दे देता। बीमारों से हरदम मीठी-मीठी बातें किया करता और किसी के आग्रह करने पर एकाध गाना भी सुना देता। धीरे-धीरे उसे नर्स ने सब काम सिखा दिया। बालक बुद्धिमान और मेहनती तो था ही, अपने काम को प्रेम और उत्साह से करने लगा। उसके इस सद्व्यवहार से बीमार भी उससे विशेष स्नेह रखने लगे। यहाँ तक कि वे सन्ध्या समय बालक के आने के लिए बड़े उत्सुक रहते और प्रेम-पूर्वक उसको "छोटी बहिन" "Little Sister" के नाम से पुकारा करते। इतना काम करते हुए भी उसने अपने पठन-पाठन में बाधा न पड़ने दी, बल्कि दूने उत्साह से पढ़ता भी रहा।

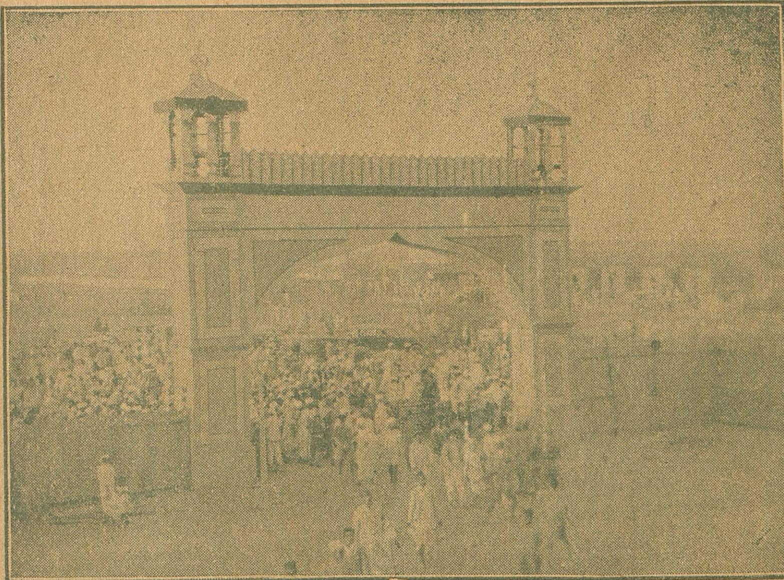


स्वर्गीय श्री० मेघराज लल्ला



स्वर्गीय श्री० दत्तात्रेय

ये कराची के उन उत्साही स्वयंसेवकों में अन्यतम हैं, जो पुलिस की गोली से शहीद हुए थे। आप ही लोगों की स्मृति में कराची-कॉङ्ग्रेस-पण्डाल के प्रधान द्वार का नाम 'शहीदों का फाटक' रक्खा गया था। यह चित्र आप लोगों की मृत्यु के बाद का लिया हुआ है।

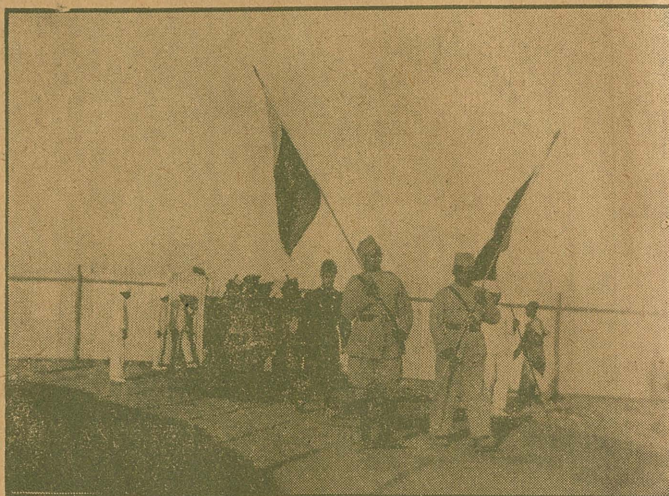


कराची कॉङ्ग्रेस के सिंहद्वार का दृश्य—यह चित्र उस समय लिया गया था, जब कि महात्मा गाँधी आदि नेताओं का भाषण सुनने के लिए लोग पण्डाल में आ रहे थे।

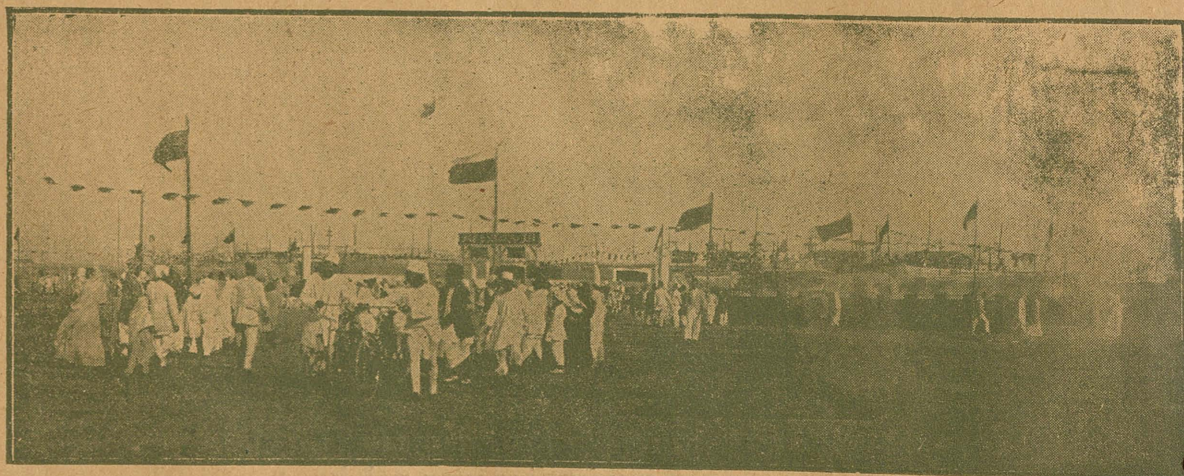
'चाँद' की कराची-कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



सीमा प्रान्त के सुप्रसिद्ध नेता सय्यद लाल बादशाह—कॉङ्ग्रेस-पण्डाल में जा रहे हैं।

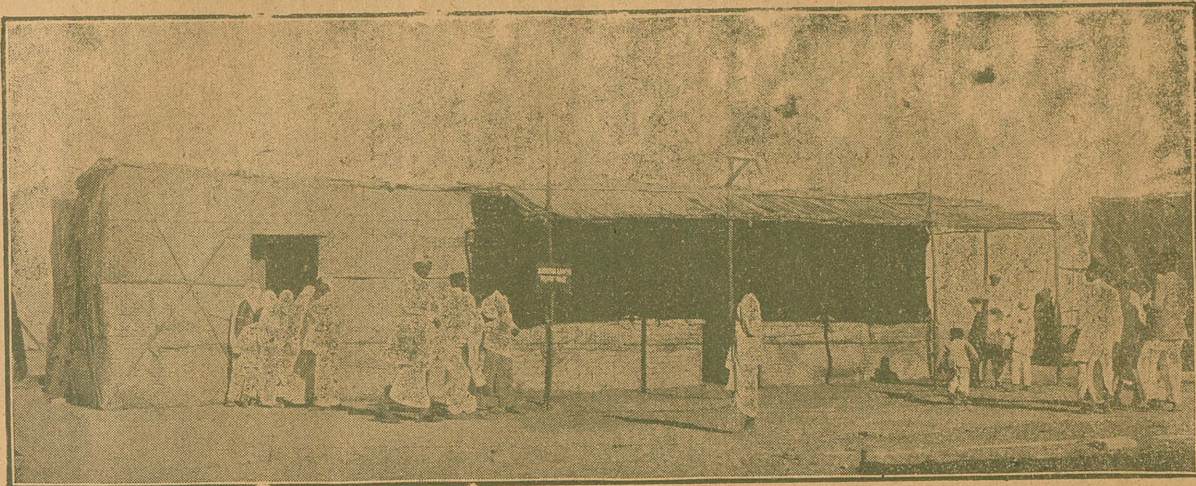


राष्ट्रपति सरदार पटेल का स्वागत-जुलूस कॉङ्ग्रेस-पण्डाल में प्रवेश कर रहा है। आगे-आगे स्वंयसेवक दल के दो सीनियर ऑफ़िसर और पीछे सीमा-प्रान्त के गाँधी के दल के बैण्ड बजाने वाले हैं।



कराची में होने वाली खादी-प्रदर्शिनी का दृश्य, जिसमें केवल हाथ के बुने और कते सूत के कपड़ों का प्रदर्शन किया गया था।

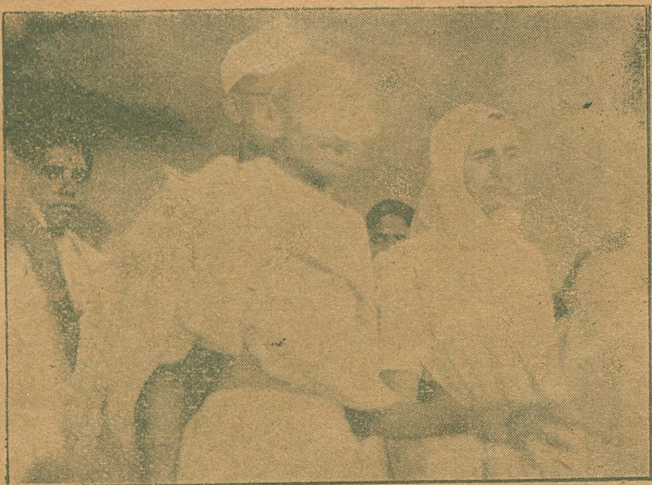
'चाँद' की कराची-काँङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



कराची में महात्मा गाँधी के रहने के लिए उनकी आज्ञानुसार केवल मिट्टी और फूस द्वारा एक झोपड़ी तैयार की गई थी, क्योंकि महात्मा जी ने आलीशान अट्टालिकाओं में रहने से अपनी अनिच्छा प्रकट की थी। उसी कुटिया का दृश्य पाठक इस चित्र में देखेंगे। यह स्थान कराची में 'तीर्थ' हो गया था।



सीमा-प्रान्त के गाँधी के ख़ुदाई ख़िदमदगारों की एक टोली



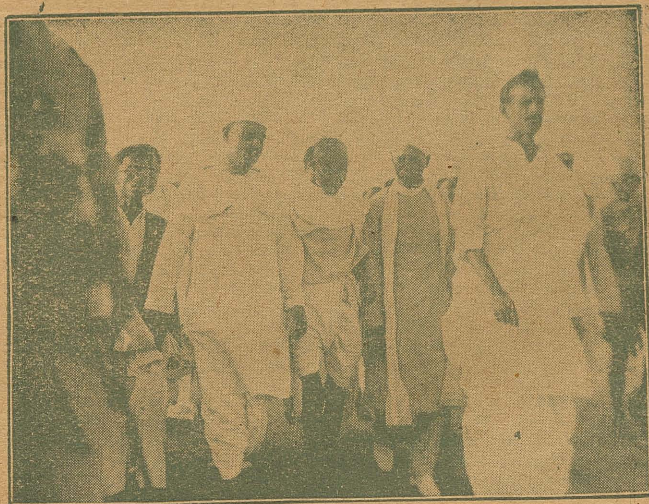
महात्मा गाँधी और देवी मीराबाई—हरचन्द्राय नगर में सान्ध्य-प्रार्थना के लिए जा रहे हैं।



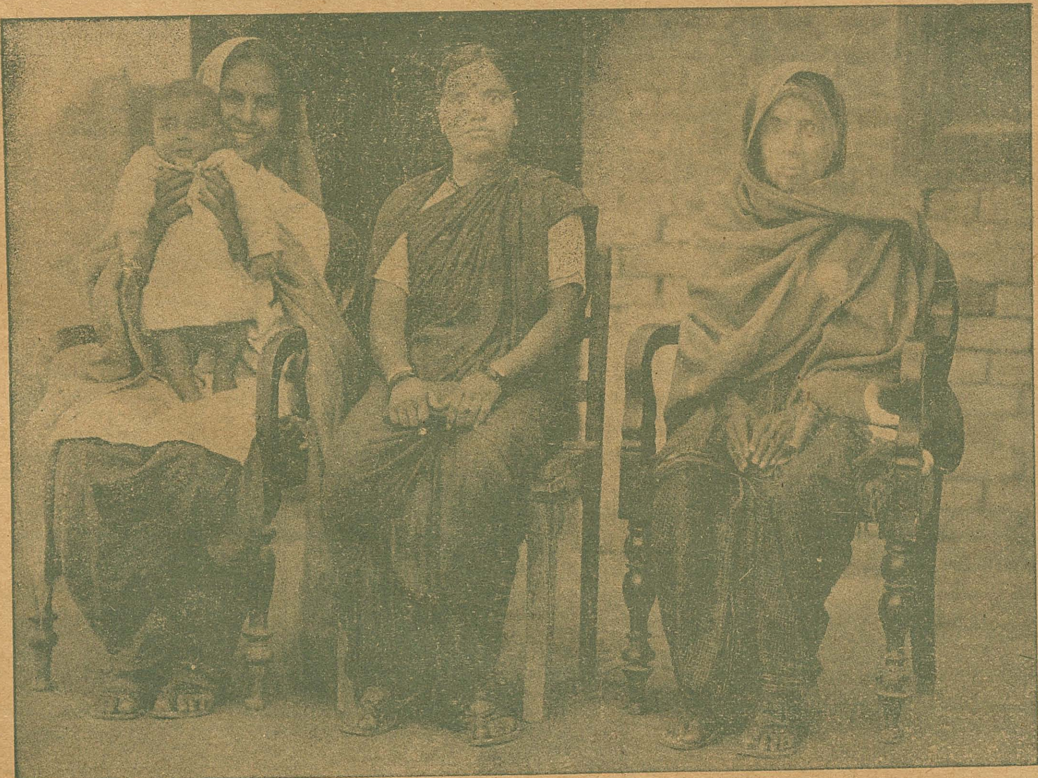
हरचन्द्राय नगर की अपनी झोपड़ी में महात्मा गाँधी चर्ख़ा कात रहे हैं। बाईं ओर सरदार पटेल और दाहिनी ओर सेठ जमनालाल जी बैठे हैं। पास ही श्रीमती मीराबाई खड़ी हैं।



श्री० अब्बास तय्यब जी—कराची कॉङ्ग्रेस में आए हुए दो अमेरिकन जर्नलिस्टों से बातें कर रहे हैं।



महात्मा गाँधी, पण्डित मालवीय जी, आचार्य कृपलानी तथा श्री० नारायणदास आनन्द जी बेचर के साथ विषय-निर्वाचिनी समिति में जा रहे हैं।



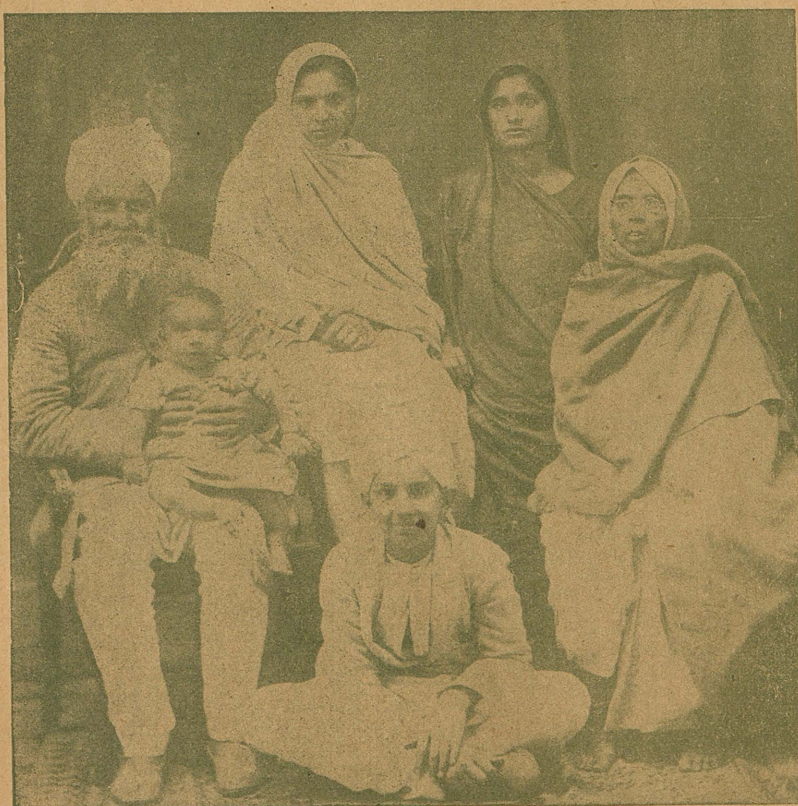
(१) अपने बच्चे जोगेन्द्र सहित सर्दार भगतसिंह की सहोदरा—श्रीमती अमर कौर (२) स्वर्गीय शिवराम राजगुरु की सहोदरा—सौभाग्यवती गोदावरी बाई और (३) उनकी पूजनीया माता सौभाग्यवती पार्वती बाई।



स्वर्गीय सरदार भगतसिंह की दादी और सरदार
किशनसिंह की पूजनीया जननी

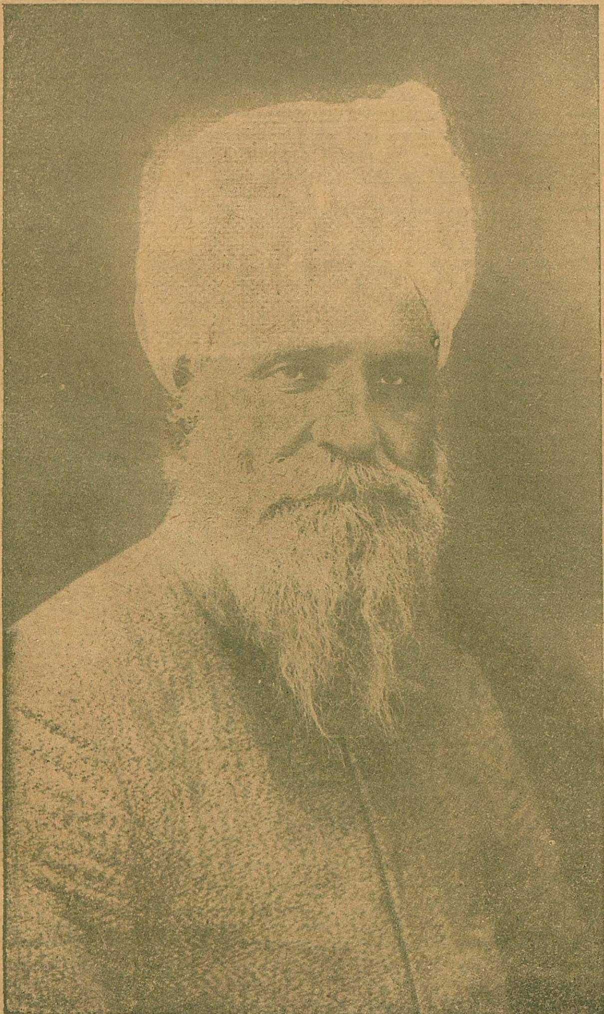


स्वर्गीय सरदार भगतसिंह की पूजनीया माता—
श्रीमती विद्यावती



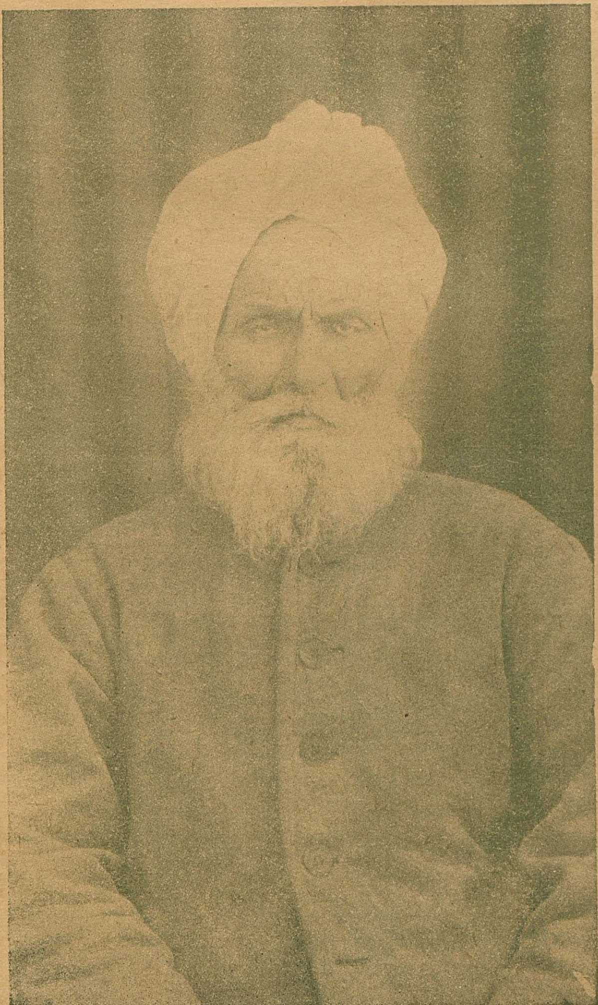
(१) सरदार किशनसिंह (२) श्रीमती अमर कौर (३) श्रीमती सरला देवी और (४) स्वर्गीय राजगुरु की माता। (नीचे बैठे हुए) सरदार भगतसिंह के छोटे भाई सरदार कुलतारसिंह—
जिन्हें सरदार भगतसिंह ने अन्तिम पत्र लिखा था।





स्वर्गीय सर्दार भगतसिंह के पूज्य पिता—सर्दार किशनसिंह जी





स्वर्गीय सर्दार भगतसिंह के दादा—सर्दार अर्जुनसिंह जी



बाईं ओर से (१) धर्मपत्नी सरदार स्वर्णसिंह (सरदार भगतसिंह की चाची) (२) सरदार भगतसिंह की पूजनीया माता श्रीमती विद्यावती (३) सरदार भगतसिंह की दादी और (४) धर्मपत्नी सरदार अजीतसिंह । नीचे बैठी हुई बालिका सरदार भगतसिंह की सहोदरा है ।

बालक को अस्पताल में काम करते हुए चार साल हो गए थे। इतने दिनों तक माता को यह भी पता न चला कि लड़का रोज़ कहाँ चला जाता है। वह तो समझे हुए थी कि खेलने जाता होगा। इसीलिए उसने कभी पूछा भी नहीं। इसी बीच में अस्पताल में एक नए डॉक्टर आए। उनकी अवस्था लगभग ६०-६२ साल की थी। वे बड़े सरल स्वभाव तथा उदार-चित्त थे। इन्होंने भी वहाँ पर लड़के को बीमारों की सेवा करते हुए देखा। पहले तो उन्होंने समझा कि किसी मरीज़ का रिश्तेदार होगा, लेकिन जब ३-४ महीने हो गए और तब भी लड़के को वहीं पाया तो उन्होंने नर्स से उसके विषय में बातचीत की। नर्स ने डॉक्टर से सब हाल कह सुनाया और उसकी कार्य-कुशलता की भी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की। अब डॉक्टर साहब का ध्यान भी लड़के की ओर आकर्षित होने लगा और वे चुपचाप उसके कामों को देखने लगे।

एक दिन डॉक्टर ने लड़के को बुला कर पूछा—लड़के, तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम क्यों बिना कुछ लिए ही हम लोगों की सहायता किया करते हो?

लड़के ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—महाशय, मैं क्या चाहूँगा? ईश्वर ने मुझे प्रेम की प्रतिमा एक माता दी है। वही मेरे पालन-पोषण का भार उठाए हुए है, जिससे मुझे कुछ कष्ट नहीं उठाना पड़ता। इच्छा हुई कि चलो बचे हुए समय को व्यर्थ न खोकर दीन-दुखियों की सेवा में लगाऊँ।

डॉक्टर चुप हो गए।

* * *

दिसम्बर का महीना है। जॉर्ज लूथर आजकल इण्ट्रेन्स की परीक्षा पास करके बड़े दिनों की छुट्टियाँ मना रहा है। परीक्षा में उसका सर्वोच्च स्थान रहा। उसकी इच्छा थी कि वह अभी पढ़ता ही रहे, किन्तु माता के कष्टों को देख कर उसने अब पढ़ाई का विचार छोड़ दिया। इसी विचार में था कि कहीं कुछ नौकरी मिल जाय तो माता को कष्टों से छुटकारा मिले। उसे दिन भर घर पर ही रहना अच्छा नहीं लगता था, इसलिए दिन में भी अब वह अस्पताल ही चला जाता। उसके पास होने की ख़बर डॉक्टर साहब को मिल चुकी थी। एक दिन उन्होंने उसको बुला कर कहा—"जॉर्ज, अब तुम्हारा काम यहाँ पर कुछ दिनों के लिए समाप्त होना चाहता है। अब तुम्हें और काम करना है।"

लड़का इसका मतलब न समझा। उसके चित्त में एक तरह का भय सा हो गया। काँपते हुए उसने डॉक्टर से पूछा—"महाशय, क्या मुझसे कुछ अपराध तो नहीं हो गया?"

डॉक्टर ने हँसते हुए उत्तर दिया—नहीं बेटा, डरो नहीं। तुम्हारे काम से प्रसन्न होकर मेरी यह इच्छा हुई



कुमारी सरला देसाई

आप बनारस महिला कॉलेज की प्रतिभाशालिनी छात्रा हैं, जिन्हें हाल ही में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की ओर से होने वाली वक्तृत्व-प्रतियोगिता में स्वर्ण-पदक प्रदान किया गया है।

कि तुम्हें डॉक्टरी पढ़ने को भेज दूँ। अब ईश्वर की कृपा से तुम पास भी हो गए। मैं चाहता हूँ कि तुम शीघ्र ही डॉक्टरी पढ़ने के लिए चले जाओ। बोलो, स्वीकार करते हो?

लड़का पहले तो हर्ष के मारे फूल उठा। किन्तु फिर न जाने उसके चित्त में क्या विचार आया और वह मलिन-मुख होकर कहने लगा—"किन्तु........"

डॉक्टर बीच ही में उसकी बात काट कर बोल

उठे—"मैं तुम्हारा अभिप्राय समझ गया हूँ। तुम चिन्ता न करो। तुम्हारे ख़र्चे का सब इन्तज़ाम हो चुका है और तुम्हारी माता का भी उचित प्रबन्ध कर दिया गया है। अब तुम जाओ और छुट्टियाँ ख़तम होने पर कॉलेज में नाम दर्ज करवा लेना।" लड़के के आँसू निकल आए। डॉक्टर साहब के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए तथा उन्हें धन्यवाद देकर वह घर लौटा और माता से सब हाल कह सुनाया।

* * *

समय बीतते देर नहीं लगती। पाँच साल और भी बीत गए। डॉक्टर जॉर्ज लूथर अब अपने पूर्व-परिचित



श्रीमती मालिनी भालचन्द्र सखथङ्कर
एम० बी० बी० एस०
आपने गवर्नमेंटके उन अत्याचारों के विरोध में, जो उसने विगत राष्ट्रीय आन्दोलन में भारतीय महिलाओं पर किए थे, अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया था।

अस्पताल में वृद्ध डॉक्टर के साथ काम करने लगे हैं। वृद्ध डॉक्टर अब स्वयं कुछ काम नहीं करते। बल्कि अपनी निगरानी में सब काम डॉक्टर लूथर ही से करवाया करते हैं। डॉक्टर लूथर भी अपने काम को हर्षपूर्वक दत्तचित्त होकर वृद्ध डॉक्टर महाशय की इच्छानुकूल कर देते हैं। जब डॉक्टर लूथर सब काम सीख गए तो वृद्ध डॉक्टर अपना कार्य-भार इन्हीं के ऊपर छोड़ कर नौकरी से लौट गए। डॉक्टर लूथर को अभी अस्पताल में पूरे दो साल भी नहीं हुए, इतने ही दिनों में उन्होंने अच्छा नाम पैदा कर लिया। शहर के बड़े-बड़े अमीरों के घर से उनके लिए बुलावा आने लगा। अस्पताल में भी मरीज़ों की संख्या दिन पर दिन बढ़ने लगी। जहाँ कहीं कोई कठिन रोग हुआ, उसका भार डॉक्टर लूथर के ही ऊपर पड़ता है। डॉक्टर लूथर ने कभी किसी ग़रीब के घर जाने या उसके इलाज करने से इन्कार नहीं किया। अलबत्ता कभी-कभी समय न मिलने से उनको किसी बड़े घर में जाने से इन्कार कर देना पड़ता था। तिस पर भी उनसे कोई अप्रसन्न न होता। नाम होने के साथ ही उनकी आमदनी भी बढ़ गई। किन्तु उन्होंने कभी ग़रीबों से पैसा न लिया। उलटे उनको धन से यथाशक्ति सहायता पहुँचाया करते।

एक दिन दोनों माता और पुत्र प्रातःकाल ईश्वर-प्रार्थना से निवृत होकर बैठे हुए थे। माता ने कहा—बेटा! अब तुम्हारी अवस्था ३० साल की हो गई है। धन भी काफ़ी मिलता है और ख्याति भी पा चुके हो। अच्छा होता कि अब तुम अपने लिए कोई सुशीला सङ्गिनी ढूँढ़ लेते। इसमें हम दोनों को सुख मिलता। अकेले कब तक रहोगे।

माता की बात काट कर बेटे ने कहा—अम्माँ, अकेले कैसे? क्या तुम मेरे साथ नहीं हो? क्या मैं तुम्हें सुखी नहीं रख सकता हूँ?

माँ बोली—क्यों नहीं बेटा, मगर मैं कब तक तुम्हारे साथ रहूँगी? देखते नहीं, मैं अब बूढ़ी हो चली। आज हूँ तो कल नहीं—मेरा अब कुछ ठिकाना नहीं। मेरे मरने पर तुम्हें फिर कौन सुख देगा? यदि तुम्हें किसी सुयोग्य बहू के हाथ सौंप सकती तो मुझे मरते हुए दुख न होता। इसीसे कहती हूँ कि तुम शादी कर लेते तो अच्छा होता। मरते समय मेरे मन में कोई लालसा न रहेगी।

बेटे ने कहा—प्यारी माँ, यह नहीं हो सकता। तुम्हीं कहती हो कि ज़िन्दगी का कुछ ठिकाना नहीं। अगर ब्याह करने पर मैं भी पिता जी की तरह दुनिया से चल बसा तो मेरी स्त्री और मेरे बाल-बच्चों का क्या होगा?

क्या तुम अपना दुख भूल गई हो माँ ! नहीं, मैं अपने लिए दूसरों को दुख में न डालूँगा। फिर तुम्हारी यह धारणा कि बहू पाकर तुम सुखी होओगी, बिलकुल ग़लत है। बहू घर में आने से मैं हरगिज़ तुमको सुखी नहीं रख सकता। मेरा प्रेम बट जाना स्वाभाविक है, और प्रेम का अभाव तुम्हें खटकेगा। तुमने मुझे पाला-पोसा है और स्वयं दुख सह कर इस योग्य बनाया है। क्या मैं इन बातों को भूल जाऊँ? अब यदि मैं इस जीवन में अटूट प्रेम के साथ तुम्हारी सेवा करके तुम्हें सुखी रख सका तो अपना जीवन सार्थक समझूँगा। यदि यह सब बातें न भी होतीं, तो भी मेरे पास धन कहाँ है, जो शादी कर लूँ?

पुत्र की अन्तिम बात से माता को आश्चर्य हुआ। वह कहने लगी—जॉर्ज, यह तुम क्या कहते हो? मासिक वेतन के अलावा तुम्हारी बाहरी आमदनी भी काफ़ी है। फिर भी तुम्हारा खान-पान, रहन-सहन सब सादा है। मैं सोचती हूँ कि तुम अपने ऊपर ३०-४० डॉलर मासिक से अधिक ख़र्च नहीं करते। यह माना कि तुमने मेरे लिए इतना बड़ा मकान किराए पर ले रक्खा है। मेरे खान-पान, वस्त्र इत्यादि में भी कुछ कमी नहीं है। ४-५ दास-दासियाँ भी रक्खी हुई हैं। तुमने सब तरह से मुझे रानी बना रक्खा है, तो भी क्या तुम्हारी सब आय मेरे ही ऊपर व्यय हो जाती है?

लड़के ने उत्तर दिया—माँ, तुम क्या जानती हो कि मैं धन कहाँ व्यय करता हूँ? अच्छा लो, मैं बतलाए देता हूँ।

इसी वक्त घड़ी ने टन-टन करके १० बजा दिए। लड़के चौंक कर कहा—"माँ, तुम्हारी बातों में मैं आज समय पर अस्पताल जाना भी भूल गया। अच्छा, अब मैं चलता हूँ, तुम मेरा कुल हिसाब इन चिट्ठियों से मालूम कर लेना।" यह कह कर उन्होंने २५-३० चिट्ठियों की एक गड्डी माँ के सामने लाकर डाल दिया, और आप अस्पताल चले गए। माँ एक-एक करके चिट्ठियाँ पढ़ने लगी। ये चिट्ठियाँ सब हाल की ही आई हुई थीं। माता ने देखा कि कुछ चिट्ठियाँ तो ऐसी हैं, जिनमें कि भेजने वालों ने उनका मासिक व्यय यथासमय पहुँचने के लिए कृतज्ञता प्रकट की है, और कुछ ऐसी थीं जिनमें मासिक व्यय भेजने के लिए अनुरोध किया गया है। वह सब चिट्ठियाँ उन निर्धन बालक-बालिकाओं की थीं, जिनको डॉ० लूथर अपने ख़र्चे से पढ़ाया करते थे। माता ने हिसाब लगाया तो इनका ख़र्चा दो हज़ार डॉलर माहवार से कम न था। उस दिन से माँ-बेटे में फिर कभी ब्याह के बाबत बातचीत न हुई।

* * *

एक दिन अचानक नौकर ने अस्पताल में डॉ० लूथर को ख़बर दी कि उनकी माता की तबीयत बहुत ख़राब है। लूथर घर पर आए तो देखते हैं कि माता को



फ्राऊ सोफ़ी टॉमस

आप जर्मनी की सर्व-प्रथम महिला-रत्न हैं, जिन्हें वायुयान चलाने की सनद दी गई है।

भयङ्कर ज्वर चढ़ा हुआ है। वे उसी समय से माता का इलाज करने लगे। शहर के ४-५ और भी नामी डॉक्टर बुला भेजे। मगर सब कुछ करने पर भी ज्वर बढ़ता ही गया। इसी तरह दो हफ़्ते बीत गए। एक दिन प्रातःकाल ज्वर कुछ कम हुआ। माता ने इशारे से लड़के को अपने पास बुलाया और धीमे स्वर से कहने लगी—"बेटा, अब मैं कुछ घड़ी की मेहमान और हूँ। अधिक न जिऊँगी, और जीना भी नहीं चाहती। तुम्हें पालते हुए मुझे जो



विगत २६वीं जनवरी को आगरे में राष्ट्रीय झण्डाभिवादन का दृश्य। बालिकाएँ राष्ट्रीय गान गा रही हैं।

दुख हुआ था, उसका ऋण तुमने सब चुका ही नहीं दिया, बल्कि उल्टा मुझे भी अपना ऋणी बना दिया। परमात्मा तुम्हारे ऐसा पुत्र सभी को दें बेटा। यही एक लालसा मेरे चित्त में रह गई कि मैं तुम्हें अकेले छोड़े जा रही हूँ। यह बात मेरे मन में हर घड़ी खटकती रहती थी। किन्तु तुम्हें दुख न हो, यही सोच कर मैंने कभी तुमसे इसकी चर्चा फिर न की। तुमने मुझे जो सुख दिया, उसके लिए तुम्हें मैं यही आशीर्वाद देती हूँ कि तुम सुखपूर्वक बहुत वर्षों तक जियो और इस लोक और परलोक में यश के भागी बनो।" कहते-कहते माँ का गला रुक गया। वह अचेत हो गई। डॉक्टर ने एक चम्मच दवा मुँह में डाली। किन्तु दवा पेट में नहीं गई। देखते ही देखते उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

माता के मरने पर डॉ० लूथर को बड़ा दुख हुआ। पर क्या करते? इतना अवश्य हुआ कि अब उन्हें घर जाने की चिन्ता न रही—अब उनका सारा समय अस्पताल में ही बीतने लगा। माता के मरने से धन की जो बचत हुई, उसको भी वह दीन-दुखियों की ही सेवा में लगाने लगे।

* * *

डॉक्टर लूथर को मरे हुए आज कितने ही वर्ष बीत गए। किन्तु उनका नाम आज भी लोगों के कृतज्ञ हृदयों पर अङ्कित है। न्यूयार्क के कितने ही नामी आदमियों की सन्तानें आज अपनी वर्तमान उच्च दशा को डॉक्टर लूथर की ही दया का फल बताते हैं। जिस मकान पर वे रहते थे, वहाँ आज एक बड़ा भारी यतीमख़ाना है। अस्पताल के कर्मचारियों, अधिकारियों तथा कृतज्ञ बीमारों ने डॉ० लूथर की एक मूर्ति अस्पताल में रख दी और अस्पताल का नाम बदल कर "जॉर्ज लूथर अस्पताल" रख दिया है।





यौवन का मोल

बिखरी थीं जब अङ्ग-अङ्ग में, यौवन की पङ्खड़ियाँ मौन,
कवि, बतला दो मेरी छवि का, मोल कर रहा था तब कौन ?

—कुमार



कान्यकुब्जों में एकता

ब्राह्मणों में कान्यकुब्ज एक अति बृहत्, विस्तृत तथा प्राचीन समाज है। आर्य-जाति में जो चार वर्ण हैं, उनमें ब्राह्मण मुख्य हैं और ब्राह्मणों में कान्यकुब्जों का आसन सर्वश्रेष्ठ है। मैं यहाँ पर कान्यकुब्जों को श्रेष्ठासन कब और कैसे मिला, इस पर विचार करना निरर्थक समझता हूँ; क्योंकि मेरी इन पंक्तियों का उद्देश्य यह है कि कान्यकुब्जों के उन्नति-मार्ग में जो बाधाएँ आकर उपस्थित हो गई हैं, उनमें से कुछ का नग्न-चित्र समाज के आगे रक्खूँ तथा उनका विध्वंस-साधन करने के लिए समाज के सभी भावुक तथा हितचिन्तकों को उपाय उद्भावन करने के लिए यथाशक्ति उत्साहित करूँ।

जब कि संसार की अन्य जातियाँ उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो रही हैं, और भारत में भी जागृति के चिह्न दिखाई पड़ रहे हैं, तब भी क्या रूढ़ियों के उपासक कान्यकुब्जों की कुम्भकर्णी नींद नहीं टूटेगी? देश के सामने राष्ट्रीयता का प्रश्न उपस्थित है। इस प्रश्न का हल करना यदि असाध्य न माना जाय तो दुस्साध्य तो अवश्य ही है। यह किसी वर्ण-व्यवस्था तथा उसके शाखा-उपशाखाओं के नाम से अभिहित न होकर समस्त वर्णों का समुदाय तथा अन्य धर्मावलम्बियों की सम्मिलित शक्ति के आधार पर 'भारतीय राष्ट्र' के नाम से पुकारा जाने वाला है। मैं भी चाहता हूँ कि भारत में एक राष्ट्र बने, परन्तु मैं "जाति-पाँति-तोड़क-सङ्घ" के आदर्श का पक्षपाती नहीं हूँ। मैं तो जाति-सङ्गठन, राष्ट्र-निर्माण तथा भारत में स्वाधीनता के लिए उसी प्राचीन आर्य जाति का आदर्श सामने रखना चाहता हूँ, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र अङ्ग-प्रत्यङ्गों की तरह पृथक होते हुए भी हिन्दू-शरीर-रूपी जाति में आबद्ध रहें।

किसी समाज-विशेष को सुसङ्गठित तथा उन्नत करने के लिए समाज के अङ्गीभूत सभी मनुष्यों का परस्पर प्रेम-भाव तथा एकता रखना परमावश्यक है। कान्यकुब्जों में इन दोनों गुणों का बड़ा ही अभाव है और उनकी रीति-नीति की दृष्टि से ऐसा ही होना स्वाभाविक है। कान्यकुब्जों का चरित्र-विश्लेषण करने से पता चलता है कि उनमें एकता न होने के कारण मुख्यतया उनमें विद्या का अभाव तथा उनकी उच्च-नीच प्रथा ही है।

(१) कान्यकुब्जों में विद्या का अभाव

प्रत्येक समाज का सच्चा कल्याण उसके अङ्गीभूत मनुष्यों के विद्याभ्यास के ऊपर निर्भर है। जो मनुष्य अथवा समाज विद्याविहीन है या जिस समाज में यथेष्ट रूप से विद्या का प्रचार नहीं है, वह अपना तथा पराए का कल्याण-साधन करने में असमर्थ है। प्राचीन काल में कान्यकुब्जों में विद्या का प्रेम था या नहीं, इसका प्रमाण उनकी उपाधियों से ही ज्ञात होता है। भट्टाचार्य, उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, पाण्डेय, द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, त्रिपाठी तथा शुक्ल आदि उपाधियाँ आज भी उनके प्राचीन गौरव की घोषणा कर रही हैं कि वे कैसे ऊँचे दर्जे के विद्वान थे। ब्राह्मणों ने अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार उपर्युक्त उपाधियों का अर्जन किया था।

जिस समाज में कुमारिल भट्टाचार्य जैसे कर्मकाण्डी, मण्डन मिश्र जैसे उद्भट पण्डित, उभयभारती की भाँति शास्त्रकुशला विदुषी, भट्टोजी दीक्षित जैसे कवि और वैयाकरणी, महाराज भूषण त्रिपाठी ऐसे राजनीति-विशारद और स्वामी दयानन्द सरस्वती ऐसे सत्याग्रही का जन्म हुआ था, उन्हीं ऋषि-सन्तानों की आज जो दयनीय दशा उपस्थित है, वह लेखनी लिखने में असमर्थ है।

जिन ब्राह्मणों की कृपा-कटाक्ष के लिए ब्राह्मणेतर तीनों वर्ण सर्वदा लालायित रहते थे, आज उन्हीं की

सन्तान उक्त तीनों वर्णों की सेवा करने के लिए बाध्य हो रही है और सेवा करके भी उदरान्न का संस्थान नहीं होता। अब पाण्डेय, पाठक आदि उपाधियाँ 'जमादार' तथा 'दरबान' शब्द के रूप में परिणत हो रही हैं। अहा! ऋषि-सन्तानों की यह अधोगति ! क्या हमारे कान्यकुब्ज भाई अब भी चेतेंगे ?

मनुष्य चिन्ताशील है। वह एक क्षण भी बिना किसी चिन्ता के नहीं रह सकता। जिसकी बुद्धि विद्या-व्यसन से परिमार्जित हो चुकी है, वही दूसरे की भलाई करने का उपाय सोच सकता है। विद्या से जब मन शुद्ध हो जाता है, तब उसमें सत्विवेक और सदाचार की जागृति होती है। सत्विवेक से जो कुछ किया जावेगा, उससे अपनी तथा दूसरे की भलाई का होना अनिवार्य है। जो मनुष्य मूर्ख है अथवा जिसने यथेष्ट रूप से विद्याभ्यास नहीं किया, उसमें सद्विवेचना की शक्ति का न होना ही सम्भव है और यदि किसी मनुष्य में इस शक्ति का अभाव है, तो उसकी चिन्ता-शैली सुमार्ग को छोड़, कुमार्ग पर चले तो आश्चर्य ही क्या है ? साधारणतः ऐसे मनुष्य पर-निन्दा तथा पर-छिद्रान्वेषण करने में ही मग्न देखे जाते हैं और इसी में उनको आनन्द मिलता है। कान्यकुब्ज-समाज ऐसे ही मनुष्यों के प्राचुर्य के कारण आज कलह तथा वैमनस्य का अखाड़ा बन रहा है।

(२) कान्यकुब्जों की उच्च-नीच प्रथा

कान्यकुब्ज-समाज में जो सब उपाधियाँ प्रचलित हैं, वे बहुत प्राचीन हैं और यज्ञकाल से चली आती हैं। इन उपाधियों में बहुत सी यज्ञ करने से तथा एकाधिक वेदों के पठन-पाठन से प्राप्त हुई थीं। इस समाज में उच्च-नीच की प्रथा कब से प्रचलित हुई, इसका समय अनिश्चित है। बिस्वाओं की मर्यादा ही कब से बाँधी गई, इसका भी कुछ ठीक पता नहीं चलता। परन्तु यह भी स्वतः सिद्ध है कि समाज के जो मनुष्य नियमित रूप से पञ्चदेवों की उपासना और पञ्चयज्ञों का अनुष्ठान करते थे अर्थात् जिनके आचार-व्यवहार शुद्ध पाए जाते थे, वे ही आदरणीय तथा पूजनीय समझे जाते थे और वे ही बीस बिस्वा वाले सच्चे ब्राह्मण कहलाते थे। और यह मर्यादा उस समय समाज के लोगों में भले काम करने की रुचि उत्पन्न करने के लिए, सदाचारी ब्राह्मणों को दी गई थी। उनकी यह प्रतिष्ठा तभी तक रहती थी, जब तक कि उनमें उक्त शुभ व्यवहार विद्यमान रहते थे। यदि उनकी सन्तान में उक्त गुणों का



बरौंदा (आगरा) के किसानों का ग्रूप—जिन्होंने पुलिस के दुर्व्यवहारों से खीज कर घर-बार त्याग कर जङ्गलों में रहने की ठान ली है।

अभाव पाया जाता था तो वे मर्यादा में हीन समझे जाते थे। सारांश यह कि मर्यादा वैयक्तिक थी, वंशज न थी। किसी वंशावली को आप उठा लीजिए और देखिए तो आपको मालूम होगा कि पिता और पुत्र की प्रतिष्ठा में भी ह्रास-वृद्धि होती थी। आचार-व्यवहार की शुद्धता के कारण बीस बिस्वा की मर्यादा उपर्युक्त गुणसम्पन्न ब्राह्मणों को दी गई और उसीके अनुसार अन्य ब्राह्मणों की भी मर्यादा नियत की गई। उन दिनों ऐसी प्रतिष्ठा का प्राप्त करना गौरव समझा जाता था, और जिनको ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त न थी, वे अपने को योग्य बना कर प्रतिष्ठा पाने की यथासाध्य चेष्टा करते थे। परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि २० बिस्वा वाले ब्राह्मण अपने अन्य भाइयों से किसी तरह पृथक या कुल और वंश में भिन्न हो गए थे और इसका यह भी अर्थ नहीं कि प्रतिष्ठावान् ब्राह्मण अपने अन्य भाइयों को तुच्छ समझने के अधिकारी थे। यह शृङ्खला कुछ दिनों तक चली। अब तो यह रीति हो गई है कि जिनके पूर्वजों ने २० बिस्वाओं की मर्यादा पाई थी, उनकी सन्तान दुर्गुणी होने पर भी वर्तमान समय पर २० बिस्वा वाली कही और मानी जाती है और वही मर्यादा आज उनमें अहङ्कार तथा अहम्मन्यता का उत्पादन कर रही है। उस समय जिनकी मर्यादा कुछ हीन थी, उनके वंशज चाहे जैसे सदाचारी और उत्तम गुणशील-सम्पन्न क्यों न हों, समाज में वे हीन ही समझे जाते हैं।

समता में प्रेमोत्पादक शक्ति है। समाज का सङ्गठन प्रेम ही से सम्भव है। समाज में यदि कोई बात हानिकारक है, तो वह है उच्चता और नीचता का भेद-भाव। हम जब अपने ही समाज के कुछ लोगों को अकारण ही उच्च और नीच कहते हैं, तो समाज की सङ्घ-शक्ति का नाश होना सुनिश्चित है।



बरौंदा (आगरा) के उन किसानों का परिवार, जिन्होंने टैक्स न देकर घर-बार का त्याग कर दिया है और जो जङ्गलों में निवास कर रहे हैं।

ठहरौनी का विषय भी उच्च-नीच प्रथा से सम्बन्धित है। २० बिस्वा वाले अधिकांश कान्यकुब्ज अब अपनी बराबरी में लड़कों का विवाह करना पसन्द नहीं करते, इसका मुख्य कारण है—अर्थ-लोलुपता। वे बराबरी वाले कान्यकुब्जों से हृदय खोल कर बातचीत भी नहीं करते। क्योंकि उनसे वे अर्थ का (दहेज का) दावा करने में

सङ्कोच करते हैं और अपने से न्यून घर वालों की कन्या अर्थ-लोभ से ख़ुशी से ब्याह लाते हैं। ठहरौनी की बढ़ती हुई प्रथा को देख कर अब धैर्यवानों का धैर्य छूट रहा है। इसी 'ठहरौनी' के कारण कई अविवाहिता कन्याएँ अपने माता-पिताओं का क्लेश देख कर सर्वाङ्ग में मिट्टी का तेल लगा कर समाज की वेदी पर अपने प्राणों



श्री० सत्यपाल धवले

आप पटना के डिप्टी-कलेक्टर और ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट रायसाहब देवीदयाल के पुत्र-रत्न हैं। विगत राष्ट्रीय आन्दोलन में आपको ४ मास का कठिन कारावास-दण्ड हुआ था।

की आहुति दे चुकी हैं। बहुत कान्यकुब्ज तो इस ठहरौनी तथा उच्च-नीच प्रथा-रूपी सङ्कीर्णता के रोग से मुक्त होने के लिए अपनी लड़कियों का विवाह सरवरिया तथा गौड़ ब्राह्मणों के साथ करने का विचार कर रहे हैं।

इसी उच्च-नीच प्रथा के कारण आज दिन समाज के भीतर अनैक्य की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है और परस्पर सहानुभूति तथा प्रेम का अभाव देखा जा रहा है। समाज के नेता तथा नवयुवकों को चाहिए कि कान्यकुब्ज समाज के दोषों का निराकरण करने के लिए अब कटिबद्ध हो जायँ; नहीं तो ख़्याल रहे 'एलार्म-बेल' बज रहा है, समाज छिन्न-भिन्न हो रहे हैं; समाज का अस्तित्व मिट जायगा।

—रामदुलारे दीक्षित, बी० ए०, बी० एल०

* * *

वृद्ध-विवाह-निषेध क़ानून की आवश्यकता

हिन्दू-सभ्यता, संसार की समस्त सभ्यताओं से प्राचीनतम समझी जाती है। किसी समय यह सर्वोच्च, उन्नत और सुसम्पन्न अवस्था में थी। किन्तु वर्तमान हिन्दू-सभ्यता अथवा समाज की दयनीय दशा, किसी भी विचारशील पुरुष से छिपी नहीं है। इस समय इसकी अवस्था निर्जीव, संज्ञा-विहीन और निश्चेष्ट सी हो गई है। जीवित राष्ट्र का कोई भी चिन्ह इसमें दृष्टिगोचर नहीं होता। कोई राष्ट्र अथवा समाज उन्नति की चोटी पर पहुँच कर ही पुनः पतनोन्मुख होता है, यही सिद्धान्त इस समय हिन्दू-समाज पर लागू हो रहा है। जब से यह समाज पतनोन्मुख हुआ, तब से निरन्तर पतन के गर्त्त में गिरता ही गया। रामायण के समय का यह हिन्दू-समाज, महाभारत के समय में नहीं रहा! रामायण के चरितनायक भरत अपने उच्चादर्श, बन्धुत्व भाव के प्रदर्शित करने में चक्रवर्तित्व पद तक के त्याग करने में समर्थ हुए, किन्तु महाभारत के दुर्योधन ने राज्य-लिप्सा के वशीभूत हो अपने बन्धु-बान्धव, कुल-कुटुम्ब तथा परिवार तक का सर्वनाश किया। महाभारत के बाद तो हिन्दू-समाज की कोई हस्ती ही नहीं रह गई। पतन होते-होते यहाँ तक नौबत पहुँची कि एक विदेशी महिला इस समाज की बुराइयों का उल्लेख कर, संसार में इसे नीचा दिखाने को समर्थ हो पाई है। उक्त विजातीय महिला के दोषारोपण की हम भले ही उपेक्षा करें, किन्तु वास्तव में हिन्दू-समाज की अवस्था बड़ी ही चिन्तनीय हो गई है। हिन्दू-समाज के प्रत्येक अङ्ग में

अनेक बुराइयाँ फैल गई हैं। सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक सभी बातों में कुरीतियों के समावेश से हिन्दू-समाज तेजहीन हो गया है। इस समाज में न ओज है, न स्फूर्ति; न शक्ति है, न पौरुष। यदि यही अवस्था कुछ दिनों तक और बनी रही, तो निश्चय ही इस समाज का अस्तित्व लोप हो जायगा। अतः आवश्यकता है, इस समय समाज में, एक सिरे से दूसरे सिरे तक क्रान्ति करने की। जो हिन्दू समाज के नेता और शुभचिन्तक हैं, उन्हें चाहिए कि समाज के अन्तर्गत फैली हुई बुराइयों और कुरीतियों का मूलोच्छेद करें।



मज़दूर-पेशे के मलाया निवासी वे अभागे भारतीय, जो रबड़ के कारोबार में भयङ्कर हानि होने के कारण क्षुधा-पीड़ित और वस्त्र-विहीन हो गए हैं। यह चित्र उस समय का है, जबकि उन्हें "नाथूकोटाई चेतियार सङ्घ" ने भोजन के लिए आमन्त्रित किया था !

हिन्दू-समाज के अन्तर्गत फैली हुई बुराइयों में, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह, कन्या-विक्रय आदि से हिन्दू-समाज का अधिक सर्वनाश हो रहा है। इन कुरीतियों के द्वारा जो वीभत्स्य करुणापूर्ण दृश्य प्रति दिन देखने में आते हैं उससे प्रत्येक विचारशील हिन्दू का हृदय दहल जाता है। हिन्दू-समाज में इन कुरीतियों की जितनी अधिकता है, उतनी संसार के अन्य किसी समाज में नहीं पाई जा सकती। यह हर्ष की बात है कि हिन्दू-समाज इन कुरीतियों द्वारा होने वाले अनर्थ का अनुभव करने लगा है, क्योंकि इसके नेता इन कुरीतियों के प्रतिकार करने में लग गए हैं। सुसुप्त हिन्दू जनता करवटें बदल रही है। भविष्य उज्ज्वल दीखने लगा है।

अभी कुछ ही दिन हुए, भारत की बड़ी व्यवस्थापिका सभा ने बहुमत से, बाल-विवाह-निषेध क़ानून का बिल पास किया है। देश के कितने रूढ़ि पसन्द हिन्दू-मुसलमानों ने इस बिल का विरोध भी किया और आज तक कर रहे हैं। किन्तु सरकार अपने निश्चय पर दृढ़ है। यदि इसी प्रकार सरकार, समाज के सुधारवादियों से सहानुभूति प्रदर्शित करे तो समाज का महान उपकार हो सकता।

जितना अनर्थ बाल-विवाह के कारण होता है उतना ही वृद्ध-विवाह के कारण भी होता है। इसके

प्रचलन से समाज में जैसा व्यभिचार, पापाचार और उच्छृङ्खलता का प्रचार बढ़ रहा है,वह वर्णनातीत है। अतः बाल-विवाह-निषेध क़ानून की रचना की तरह वृद्ध-विवाह-निषेध क़ानून की रचना का प्रयत्न करना परमावश्यक है।

वृद्ध-विवाह प्राकृतिक नियमों की अवहेलना तथा मानव-जीवन के विकास में अड़चन पैदा करने वाली एक जघन्य प्रथा है। इसके द्वारा समाज घुन की तरह खोखला होता जा रहा है। अतः समाज से इसका अन्त करना ही आवश्यक है। समाज का यह एक भीषण रोग है, जो प्रचण्ड रूप से बढ़ रहा है। वृद्ध-विवाह द्वारा होने वाली, दुर्घटनाओं का समाचार हम लोग प्रति दिन समाचार पत्र में पढ़ते हैं, किन्तु तो भी सौ में नब्बे इस प्रकार की दुर्घटनाओं का भण्डाफोड़ नहीं हो पाता। हम लोग ऐसे नृशंस तथा हृदयहीन हो गए हैं, कि इन करुणापूर्ण घटनाओं का स्थायी प्रभाव हम पर नहीं पड़ता। जो समाज-सुधार का बीड़ा उठाए हुए हैं, उन्हें चाहिए कि जहाँ तक शीघ्र हो, इस कुरीति का अन्त करने में लग जावें।



गत २६ जनवरी को स्वतन्त्रता-दिवस के उपलक्ष में होने वाली वृन्दावन की एक महती सभा का दृश्य

हिन्दुओं के लिए विवाह-संस्कार कितना पवित्र एवम् आवश्यक धार्मिक संस्कार है—इसे बताने की आवश्यकता नहीं है। शास्त्रानुसार यह संस्कार सांसारिक जीवन को सुख-शान्ति प्रदान करने वाला ही नहीं है, किन्तु इसकी शुद्धता, पवित्रता और उच्चता पर पारलौकिक शान्ति-प्राप्ति भी निर्भर है। दाम्पत्य प्रेम की महत्ता महान है। उसका परिणाम व्यापक है। विवाह-संस्कार समाज-सङ्गठन का मूल भूत आधार है, किन्तु वर्तमान समाज समाज पुरुषों के लिए केवल भोग-विलास और काम-वासना तृप्ति का एक साधन मात्र है। स्त्री तनिक भी डावाँ-डोल हुई कि उसके सिर पर आफ़त का पहाड़ टूटा। ज़रा भी कर्तव्य-मार्ग से विचलित हुई कि समाज में सनसनी फैली। तिस पर तुर्रा यह कि स्वयं पथ-भ्रष्ट पुरुष ही उसे घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगता है। अल्पातिअल्प भूल अथवा असावधानी करने पर समाज में रहने तक को उसे स्थान नहीं मिलता। निर्दयता



मलाया के उन अभागे मज़दूरों का एक दल, जो बेकारी के कारण दरिद्रता की सीमा पर पहुँच चुका है। यह चित्र उस समय का है, जब कि किसी उदार-हृदय दानी की ओर से उन्हें नए वस्त्र और तेल आदि आवश्यक चीज़ें दी गई हैं।

पुरुषों का समाज है। पुरुष कैसा ही अत्याचारी, व्यभिचारी, घोरातिघोर पाप-कार्य में रत रहता हो, किन्तु समाज उसकी ओर उँगली भी नहीं उठा सकता। समाज के पास उस पापी के लिए कोई दण्ड नहीं है। वह कुत्सित और जघन्य कार्य करता हुआ भी समाज-सुख से वञ्चित नहीं किया जा सकता। उसे समाज में स्वतन्त्रतापूर्वक रहने में कोई अड़चन नहीं है। किन्तु स्त्रियों की दशा इसके विपरीत है। प्रचलित प्रथा के अनुसार तो स्त्री-और घोर कठोरता के साथ वह संसार के दुःख-सागर में डूबने मरने के लिए छोड़ दी जाती है। कैसा घोर अन्याय है! एक ओर तो दस वर्षीया अबोध बालिका के लिए, समाज के कठोर नियम और संयम का पालन और पुनर्विवाह निषेध, और दूसरी ओर सत्तर वर्ष के ससन्तान वृद्ध का पुत्री तथा पौत्री के समान अवस्था वाली क्वाँरी कन्या से विवाह-संस्कार करने की स्वतन्त्रता! हाय रे हिन्दू-समाज, तेरे इसी पाप के कारण

तो संसार में कहीं तेरा मान नहीं होता। इसीसे तो तू तमाम दुनिया से दुत्कारा जाता है। वृद्ध-विवाह की इसी पूर्ण स्वतन्त्रता के कारण विधवाओं की संख्या में दिन दूनी और रात चौगुनी वृद्धि हो रही है। हिन्दू-समाज से इसके द्वारा वृद्ध-विवाह का अन्त सहज में नहीं हो सकता। हिन्दुओं के वर्तमान सामाजिक बन्धन ढीले पड़ गए हैं। सभी अपने-अपने स्वार्थ में रत हैं। कोई किसी की नहीं सुनता। समाज के आन्दोलन का प्रभाव कम से कम वृद्ध-विवाह के इच्छुकों पर नहीं पड़ सकता। घृणित और पतित पुरुषों की धन-लोलुपता पर विजय पाना सहल काम नहीं दीखता। इनके सिवा एक और अपने कुल के दम भरने वाले अपनी ख़ान्दानी चाल पर चल कर मर मिटने वालों की है। रस्सी जल गई, किन्तु ऐंठन अभी वही है। धन-दौलत गँवा कर भिखारी की अवस्था में, अपने से कुलीन कहलाने वाले घर में, सत्तर ही वर्ष की अवस्था का बूढ़ा वर क्यों न हो उसीसे विवाह-संस्कार बलात् करने पर तुले रहते हैं। कुछ दलाल भी वृद्ध-विवाह के प्रचलन में सहायक होते हैं। इन तीनों-चारों तरह के समाज-शत्रुओं से वृद्ध-विवाह का अन्त कैसे हो सकता है? यही बड़ा विकट प्रश्न हल करना है।



श्री० जुगुलकिशोर कपूर

आप लखनऊ के उत्साही कार्यकर्त्ता हैं। यह चित्र उस समय का है, जब आप सपरिवार विदेशी कपड़े की दूकान पर पिकेटिङ्ग करने जा रहे थे।

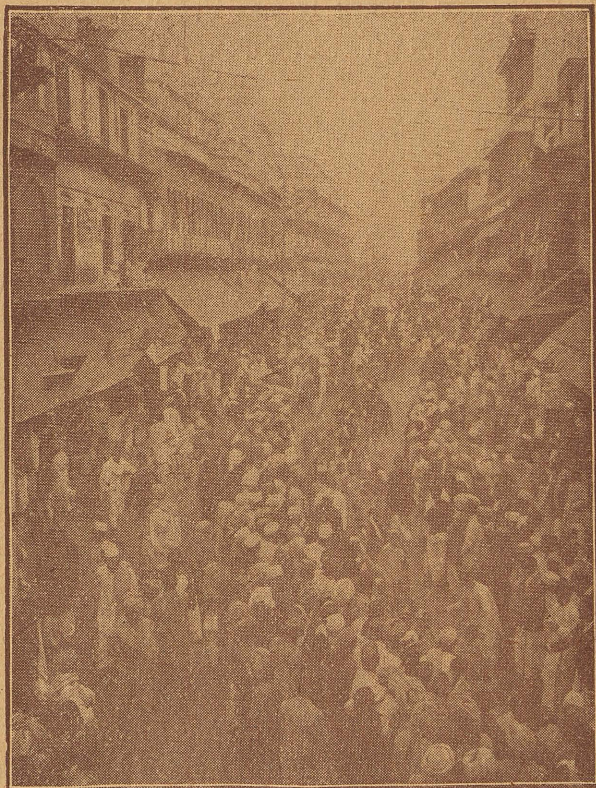
वृद्ध-विवाह से मेरा उद्देश्य बूढ़ों का विवाह क्वाँरी कन्या से करने का है। वृद्ध-विवाह के अन्त करने का मुख्यतः दो साधन दीखते हैं। प्रथम सार्वजनिक आन्दोलन द्वारा तथा दूसरा क़ानून के साहाय्य द्वारा। आज कई वर्षों से इस दूषित प्रथा को दूर करने के लिए, सार्वजनिक आन्दोलन हो रहा है। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के विरोध में, न जाने कितने प्रयत्न किए गए? समाचार-पत्रों द्वारा, सभा समाज द्वारा, जातीय सङ्गठन द्वारा, इसकी बुराइयाँ समझाई गईं। बड़े-बड़े विद्वानों ने इसके विरोध में अपनी-अपनी व्यवस्थाएँ दीं, किन्तु "मर्ज़ बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की" वाली कहावत ही चरितार्थ होती गई। सभा-समाजों द्वारा स्वीकृत किए गए प्रस्ताव रद्दी की टोकरी में ही सड़ते रहे। किसी ने उस पर अमल करने का कभी प्रयास नहीं किया। हिन्दू-समाज उन्नति के पथ पर किस धीमी चाल से चल रहा है, यह सभी जानते हैं। और इधर वृद्ध-विवाह का प्रवाह

पुण्य-धाम काशी के विख्यात् विद्वान की काम-लोलुपता के आवेश का सत्तर वर्ष की अवस्था का वृद्ध-विवाह, तथा कुछ वर्ष हुए ससराम के एक रायसाहब की बुढ़ौती का विवाह उदाहरण में उपस्थित किया जा सकता है। इन दोनों काम-लोलुपों को बड़े-बड़े दिग्गज नामधारियों ने समझाया, बुझाया तथा अनुनय-विनय किया, किन्तु सभी प्रयत्न निष्फल हुए। इस प्रकार इस कुत्सित प्रथा को दूर करने का प्रयत्न करना, बलवान स्वार्थ-प्रेमी का सामना करना है। धन-कुबेरों की काम-वासना तथा

किस द्रुत वेग से बढ़ रहा है, यह बात भी सभी पर विदित है। इसे देखने से यही ज्ञात होता है कि यदि निकट भविष्य में इसकी रोक-थाम न की गई तो हिन्दू-समाज की यह बढ़ती हुई उच्छृङ्खलता इसे नष्ट ही कर शान्ति लेगी।

हिन्दू-समाज की वर्तमान अवस्था को देखते हुए, आन्दोलन द्वारा अथवा जातीय बन्धन द्वारा वृद्ध-विवाह के अन्त का स्वप्न देखना, आकाश से कुसुम तोड़ने के समान है। इस प्रकार की कई घटनाओं के अघटित करने के प्रयत्न मेरे ही देखते हुए। शाम, दाम, दण्ड और भेद की नीति बरती गई, किन्तु स्वार्थान्धों के समक्ष कुछ भी कारगर न हो सकी। स्वार्थी मनुष्यों को, सत्य मार्ग पर ले आने के लिए, यदि समाज में ईश्वर-प्रदत्त कोई विशेष विचित्र शक्ति का आकस्मिक प्रादुर्भाव हो जाय तब तो जो न सुधार हो जाय। किन्तु वर्तमान परिस्थिति में कुछ होना-जाना नहीं दीखता। बाल-विवाह ही को ले लें; बाल-विवाह के द्वारा जो अनर्थ हुए हैं और हो रहे हैं उससे समाज भली-भाँति परिचित है। इसे रोकने के लिए भी समाज ने बहुत प्रयत्न किए, किन्तु कोई भी उत्तरदायित्वपूर्ण सज्जन कह सकता है, कि समाज द्वारा किए गए प्रयत्नों के द्वारा बाल-विवाह में कुछ भी कमी हुई? स्वार्थपरता तो यहाँ तक मनुष्य को अन्धा बना देती है, कि बाल-विवाह-निषेध क़ानून के एप्रिल १९३० से प्रचलन की आशङ्का में सहस्रों विवाह अग्रहण में सुसम्पन्न हुए। ऐसी दशा में समाज सुधारकों के आन्दोलन और प्रयत्न से वृद्ध-विवाह के अन्त की आशा दुराशा-मात्र ही बोध होती है और बाल-विवाह-निषेध क़ानून की रचना की तरह वृद्ध-विवाह-निषेध क़ानून के निर्माण ही के सहारे से इसके अन्त की गुंजाइश दीखती है।

यह बात सभी जानते हैं, कि जिस प्रकार बाल-विवाह द्वारा समाज का अनिष्ट होता है, उसी प्रकार वृद्ध-विवाह द्वारा भी होता है। और जैसे आन्दोलन द्वारा बाल-विवाह का अन्त नहीं हो सका, वैसे ही वृद्ध-विवाह का भी आन्दोलन द्वारा नहीं अन्त होगा। तब तो सुधारवादियों अथवा हिन्दू-समाज हितैषियों को यह स्वीकार ही करना पड़ेगा, कि हिन्दू-समाज की रक्षा के लिए क़ानून की शरण अवश्य लेनी पड़ेगी। इस प्रथा के नष्ट करने में केवल सामाजिक कॉन्फ्रेन्स और उत्तेजनात्मक भाषणों पर भरोसा करना समय को नष्ट करना है। कुछ विद्वानों के मतानुसार सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए क़ानून की सहायता लेनी उचित नहीं

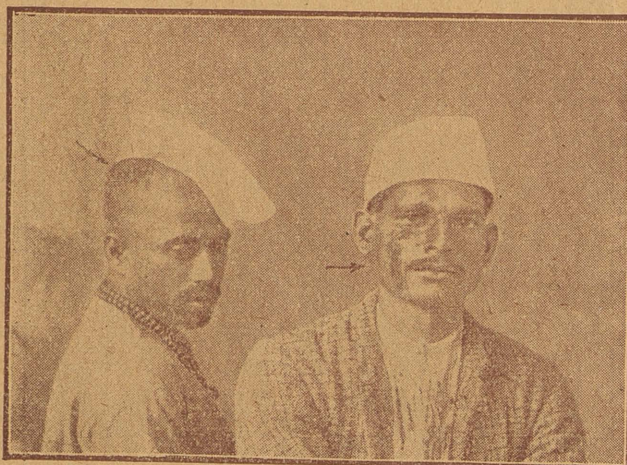


आगरे के 'स्वतन्त्रता-दिवस' का शानदार जुलूस, जिसमें हज़ारों स्त्री-पुरुषों ने बड़े उत्साह से भाग लिया था। इस चित्र में केवल एक कोने-मात्र का दृश्य व्यक्त है।

है। यह बात कुछ अंश तक यथार्थ हो सकती है। किन्तु जहाँ परिस्थिति ऐसी विकट हो गई हो कि केवल क़ानून के सिवा, दूसरे प्रयत्न से कुछ लाभ ही न हो सकता हो वहाँ क़ानून से लाभ उठाया जाय या समाज को इसी प्रकार नष्ट होने के लिए छोड़ दिया जाय? रोग असाध्य हो जाने पर डॉक्टर के पास इञ्जकशन के लिए जाना ही

पड़ता है तब क्यों न हम लोग दम साध कर, क़ानून निर्माण की इस कड़वी दवा को पीने के लिए समर्थ हो जायँ और इस असाध्य रोग को सर्वदा के लिए समाज से बहिष्कृत करने में तत्पर हो जायँ।

बिना क़ानून का सहारा लिए, इन अधम, नृशंस, नारकीय पुरुषों से अबोध, असहाय, दुखी अबला कन्या की कदापि रक्षा नहीं हो सकती। बाल-विवाह के साथ-साथ वृद्ध-विवाह के समाज से अन्त होते ही हिन्दू-समाज में एक नवीन युग का आविर्भाव होगा।



श्री० जानकीप्रसाद और श्री० रामपाल त्रिवेदी

ये दोनों सज्जन लखनऊ के उत्साही राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैं, जो पिकेटिङ्ग करने के कारण पुलिस की लाठियों से बुरी तरह घायल हुए थे।

अतः अब एक सच्चे, निर्भय, निर्मम और लगनयुक्त भारत की बड़ी व्यवस्थापिका सभा (एसेम्बली) के सदस्य के हृदय में वृद्ध-विवाह-निषेध क़ानून के बिल उपस्थित की शुभ-कामना की आवश्यकता हो जिसके प्रयत्न द्वारा बाल-विवाह-निषेध क़ानून की तरह वृद्ध-विवाह-निषेध क़ानून की भी रचना हो जाय और उसका नाम संसार में श्रीमान् रायसाहब श्रीहरविलास सारदा की तरह सर्वत्र गूँज जाय।

बाल-विवाह के साथ ही वृद्ध-विवाह के अन्त होते ही विधवा-विवाह जैसी जटिल और विवादास्पद समस्या आप ही आप हल हो जायगी। हिन्दू-समाज एक नवीन युग में पदार्पण करेगा। यदि इस प्रतिद्वन्दिता और नवाविष्कृत युग में अपना अस्तित्व सर्वदा के लिए सुरक्षित रखना अभीष्ट हो और अन्य देशों के समान संसार में उच्चासन पर आसीन होने की अभिलषित अभिलाषा हो तो अब वृद्ध-विवाह-निषेध क़ानून के निर्माण के प्रयत्न में तत्पर हो जाने की आवश्यकता है। है कोई माई का लाल जो कौन्सिल-प्रवेश नीति को, उन्हें क़ानून का रूप देकर, सार्थक करने का श्रेय लेने में समर्थ हो सके?

अब प्रश्न यह शेष रह जाता है, कि किस अवस्था के बाद किसी पुरुष का क्वाँरी कन्या के साथ विवाह नहीं हो सकता। ऐसे तो कितने काम-लोलुप अबोध बालिका के जीवन को नष्ट करने के लिए ख़िज़ाब व्यवहार कर अपने को सर्वदा बीस ही वर्ष के नौजवान समझते हैं और संसार की आँखों में धूल झोंकने का प्रयत्न करते हैं, तो भी ४० वर्ष के बाद निस्सन्तानों तक का विवाह-निषेध आवश्यक जँचता है। हिन्दू-समाज में अछूतोद्धार आदि में इधर जैसी उदारता देखने में आती है, वर्गवादियों की शाम्य नीति के प्रसार का उज्ज्वल भविष्य जैसा दीखता है, प्रत्येक नौजवान के हृदय में नए-नए भाव, नई-नई कल्पना, नई लगन, नव उत्साह और नवीन सङ्गठन का सञ्चार जिस द्रुत वेग से बढ़ रहा है, उसे देखते हुए, वृद्ध-विवाह जैसी निन्द्य प्रथा के अन्त में क़ानून का निर्माण असम्भव नहीं जँचता है। उन अबोध निस्सहाय बालिकाओं की आह आकाश को विदीर्ण कर देगी, हवा को बवण्डर बना कर दिक-दिगन्त तक प्रस्तरित कर समुद्र को उथल पुथल मचाने में समर्थ होगी। भारतीय आत्मा की घोर निद्रा सर्वदा के लिए अन्त कर देगी। अपनी दशा सुधार ही कर दम लेगी। यही हमारी दृढ़ धारणा है।

—रामसकल सिंह बी० ए०, बी० एल०

* * *

सनातनधर्म और अछूत

आजकल हिन्दू-समाज के बड़े-बड़े पण्डितों में अछूत-रोग मलेरिया के सदृश फैल गया है। पण्डित जी गङ्गा नहा कर आ रहे हैं। गली तङ्ग है।

सामने से एक चमार आ रहा है। देखते ही लगे पीछे हटने और मुसलमान से भिड़ गए जो कबाब का सामान लिए जा रहा है। परन्तु अछूत से बिगड़ते हैं! यह है सनातन-धर्म का आदर्श और उसकी उच्चता!

रामायण में कहा है:—

जाति पाँति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजे सो हरि का होई॥

जब भगवान भेद-भाव नहीं रखते तो इन धर्म के ठेकेदारों से किसने कहा कि तुम अछूत को मत छुओ? उसकी छाया शरीर पर पड़ जाने से शरीर अशुद्ध हो जावेगा। मन्दिरों में अछूतों को जाने का अधिकार नहीं है, क्योंकि हमारे भगवान अपवित्र हो जायँगे। परन्तु जब तुम्हारे भगवान ही छुआछूत के भूत को नहीं मानते हैं तो तुम क्यों मानते हो? अब अन्तिम विचार यह रह जाता है कि या तो तुम्हारे भगवान झूठे हैं या तुम आदर्श से पतित हो गए हो।

भारतवर्ष की पतितावस्था के मुख्य कारण यही सनातन-धर्म के ठेकेदार हैं। इन्हीं के अत्याचारों का यह परिणाम है कि हमारे अछूत भाई ईसाई तथा मुसलमान होते जाते हैं। इन्हीं लोगों के कारण वे बेचारे तनिक भी उन्नति नहीं कर पाते हैं। यदि कोई इन सनातन-धर्म के ठेकेदारों को बतलाता है कि वह भी आप ही की तरह आदमी है तो वह आर्यसमाजी, नास्तिक, चाण्डाल, पापी, वर्णसङ्कर इत्यादि उपाधियों से विभूषित किया जाता है।

ये नरक और स्वर्ग के ठेकेदार कहते हैं कि ब्राह्मण भगवान के मुख से, क्षत्रिय बाहु से, वैश्य हृदय से और अछूत (शूद्र) पैर से उत्पन्न हुए हैं। अब ज़रा विचार कीजिए कि यदि किसी मनुष्य के पैर तोड़ दिए जायँ तो क्या वह चल-फिर सकता है? तब, यदि अछूतों को हमने ठुकरा दिया तो भगवान के पैर ही विकल गए और बेचारे अपाहिज हो गए!

सनातनधर्मानुसार भगवान विष्णु सब के पिता हैं और सनातन-धर्म में चार वर्ण हैं। तो मानना पड़ेगा कि ये एक ही पिता की चार सन्तानें हैं और अपने-अपने कार्यानुसार पृथक-पृथक होने पर भी वे भाई-भाई हैं। तो न मालूम ये सनातनधर्मी पण्डित क्यों अपने भाई से घृणा करते हैं? यदि चारों भाई एक साथ परस्पर प्रेम से न रहें तो प्रत्येक बलवान मनुष्य उनको उन्नति करने से दबा सकता है और अपना प्रभुत्व उन पर जमा सकता है।

संसार में कहीं कोई भी जाति अपने निकृष्ट कर्म करने वाले भाइयों से घृणा प्रकट नहीं करती है। लेकिन सनातन-धर्म और उसके ठेकेदार ऐसे हैं जो अपने अछूत भाइयों से घृणा करते हैं।



श्री० छोटेलाल जायसवाल, ठेकेदार

आप हैहय वंशी क्षत्रिय-सभा (इलाहाबाद) के प्रधान मन्त्री हैं

समाचार-पत्रों में बहुधा यह देखा जाता है कि अछूतों को मन्दिर-प्रवेश के कारण बुरी तरह पीटा गया। उन पर अत्याचार की हद कर दी गई। उनके लिए मन्दिर नहीं हैं, मन्दिर हैं पर्दे में पाप करने वालों के

लिए। निन्यानबे प्रति शत पुजारियों, पण्डितों और पण्डों की काली करतूतें प्रत्येक स्थान में देखी-सुनी जाती



श्री० गदाधरप्रसाद जायसवाल, बी० एस-सी०; एल्-एल० बी०
आप मध्य-प्रान्त के नए मिनिस्टर नियुक्त हुए हैं।

हैं। परन्तु वे तो सनातन-धर्म के पैग़म्बर हैं, उनके विरुद्ध उँगली उठाना महापाप है। परन्तु यदि कोई अछूत मन्दिर के द्वार पर से भी देव-दर्शन करता है तो जूतों से पीटा जाता है! इधर पुजारी और पण्डे ठाकुर जी के सिर पर ही व्यभिचार करते हैं, तो कोई कुछ नहीं कहता है, सब कानों में तेल डाल कर बैठ जाते हैं।

आजकल भगवान के पवित्र स्थान तथा मन्दिर व्यभिचार के अड्डे हैं? वहाँ भगवान की मूर्ति नाम-मात्र को विराजती है, प्रत्यक्ष में भगवान के सिंहासन पर पुजारी जी ही विद्यमान हैं? अन्ध-विश्वासी सनातनधर्मी भी उन्हीं को साक्षात भगवान मान लेते हैं। स्त्रियाँ भी अपने पति की सेवा में दत्तचित्त न रह कर इन मुस्टण्डों की सेवा में आकर उपस्थित हो जाती हैं। इन्हीं सनातन-धर्म के ठेकेदारों के कारण मिस मेयो 'मदर इण्डिया' और 'देवताओं के ग़ुलाम' लिख कर हमारे ऊपर प्रहार करती है। भारत की सफ़ेद चादर में ये पण्डित, पुजारी और पण्डे एक काले धब्बे के समान हैं। इन लोगों ने भारत को ग़ारत कर दिया है। अछूतों को ठुकरा कर इन्होंने कलङ्क का टीका अपने सिर पर लगवा लिया है और वह ऐसा लगा है कि पत्थर से रगड़ने से भी न छूटेगा। अछूतों के त्याग और बहिष्कार से हम कभी भी उन्नति नहीं कर सकते हैं!

किसी भी देश की उन्नति वहाँ के मज़दूरों, ग़रीबों और अछूतों पर ही निर्भर होती है। परन्तु ये! अभागे भारतवासी उन्हें अपने से पृथक कर रहे हैं। परन्तु याद रखिए वे हमारे अङ्ग हैं—जाति के पैर हैं। अगर हम अपने पैरों को काट डालेंगे तो अवश्य गिरेंगे और फिर कभी भी न उठ सकेंगे।

याद रहे, समय द्रुति-गति से जा रहा है। एक समय वह भी आवेगा जब कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और अछूत परस्पर गले मिलेंगे और साथ-साथ रहेंगे; भेद भाव मिट जावेगा; कोई किसी से घृणा न करेगा और परस्पर प्रेम-भाव का प्रचार होगा।

इसलिए सनातनधर्मी जगत को चाहिए कि वह इस अवसर को हाथ से न जाने दे। ऐसा स्वर्ण-अवसर बार-बार हस्तगत नहीं होता है। सनातनधर्मियों को चाहिए कि वे छाँट-छाँट कर ऐसे मनुष्यों का सामाजिक बहिष्कार और जाति-बहिष्कार कर दें और अछूतों के वर्षों से जलते हुए हृदय को अपने निष्कपट, शुद्ध प्रेम-रूपी जल द्वारा शान्त कर दें।

सनातनधर्मियो! तुम्हारे धर्म के ठेकेदारों ने स्वार्थ-वश सनातन-धर्म को अवनति के मार्ग पर अग्रसर कर दिया है और अछूतों का बहिष्कार कर, उनके प्रति घृणा प्रकट कर, सनातन-धर्म के पैर भी तोड़ दिए हैं। वास्तव में अछूत कोई अलग नहीं हैं। वे हमारे प्राण हैं, राष्ट्र के आधार हैं। भारत-माँ की और भारत की भावी आशाएँ हैं। जो अछूतों को भाई नहीं समझते हैं, घृणा करते हैं, वे महान मूर्ख हैं।

अछूतों के बल पर समस्त देशों की उन्नति और अवनति निर्भर है। अछूत भगवान के चरण हैं। सनातन-धर्मी सब से प्रथम न तो भगवान का मुँह छूते हैं, न बाहु, न हृदय, परन्तु सब से पहले दर्शन करते ही वे गद्-गद हो चरण पकड़ते हैं। इसी प्रकार हमें भगवान के चरण, अछूतों, को प्रेम के साथ गले लगा लेना चाहिए।

—श्यामसुन्दर लाल दीक्षित

* * *

वात्स्यायन कामसूत्र

[इस लेख में प्रकाशित विचारों के लिए हमारा ज़िम्मेदार होना आवश्यक नहीं है।

—सं० 'चाँद']

भार्या-प्रकरण

भार्या या पत्नी दो प्रकार की होती हैं। एक तो एकचारिणी अर्थात् एक पत्नी, दूसरी सपत्निका अर्थात् जिसके साथ और सपत्नियाँ भी हों। उन दोनों में से प्रधानता के कारण पहिले एकचारिणी का वृत्त ही लिखते हैं :—

"भार्यैकचारिणी गूढ़विश्रम्भा देववत् पति-मानुकूल्येन वर्तेत।"

भावार्थ—एक ही पत्नी अथवा पतिव्रता नारी पूर्ण विश्वासपात्र होनी चाहिए। पति का कोई भी भेद उससे बाहर न निकले, जैसा पति अपनी आत्मा का भरोसा कर सकता है वैसा ही विश्वास अपनी भार्या में कर सके, ऐसी योग्यता भार्या को अपने अन्दर धारण करनी चाहिए। उसके अनन्तर दूसरा कर्तव्य उसका यह है कि अपने पति को देवता के समान समझ कर सदा उसके अनु-



श्रीमती एम० लक्ष्मी अम्मल

आप मद्रास की 'हिन्दू महिला लक्ष्मी-विलास सभा' की सभानेत्री हैं। दरभङ्गा-नरेश ने आपको 'धर्म-चन्द्रिका' की उपाधि से विभूषित किया है।

कूल आचरण करे। जिस प्रकार देवगण सर्वगुण-सम्पन्न और पूज्य होते हैं, उसी प्रकार पतिव्रता पत्नी का धर्म है कि अपने गुणवान पति को भी देवता समझ कर उसकी अनुकूल बातों को करे और प्रतिकूल बातों को सदा छोड़ देवे।

क्योंकि पत्नी को घर में ही रहना है, अतः उस घर को कैसा चाहिए, इस विषय में पत्नी का कर्तव्य लिखते हैं :—

"वेश्म च शुचि सुसम्मृष्टस्थानं विरचित विविध कुसुमंश्लक्ष्ण भूमितलं हृद्यदर्शनम्, त्रिषवनाचारित बलिकर्म पूजित देवायतनं कुर्यात्।"

"न ह्यतोऽन्यद्‌गृहस्थानां चित्तग्राहकमस्तीति गोनर्दीयः।"



श्रीमती शान्तिदास, एम० ए०

आप कलकत्ता नारी-सत्याग्रह-समिति की मन्त्रिणी हैं। आगरे में एक व्याख्यान देने के कारण आपको चार महीने की सज़ा दी गई थी।

भावार्थ—"घर साफ़-सुथरा, शुद्ध, पवित्र रक्खे और गोबर आदि से लीप-पोत कर स्वच्छ करे। यदि मकान का फ़र्श चूने आदि से बढ़िया बना हुआ हो तथा चिकना हो तो उसमें उत्तम-उत्तम बेल-बूटे तथा फूल-पत्ती भी हों, जिसे देख कर हृदय प्रसन्न हो जावे। यह आवश्यक नहीं कि नीचे का फ़र्श चूने का ही हो, यदि गोबर, सीमेण्ट या पाण्डु मिट्टी आदि का हो तो भी उत्तम है, परन्तु वह चिकना और दिल को ख़ुश करने वाला अवश्य होना चाहिए, जिससे जल अथवा मिट्टी, कूड़ा आदि अच्छी प्रकार से उसके ऊपर से हटाया जा सके। घर के फ़र्श पर प्रायः मनुष्य की आँखें पड़ती हैं, इसलिए उसे स्वच्छ, चिकना और फूल-चित्रों से सुन्दर तथा हृदयाकर्षक रखना चाहिए, इससे घर की शोभा और चित्त की प्रसन्नता होती है। उस मकान में एक देवायतन अथवा पूजा का स्थान होना चाहिए, जिसमें तीनों समय अर्थात् प्रातः, दोपहर तथा सायङ्काल सन्धि के समय स्नानान्तर सन्ध्या, हवन, बलि वैश्वदेव तथा अन्य यज्ञादि किए जा सकें।

इसके अतिरिक्त गृहस्थों के लिए चित्ताकर्षक बातें और नहीं हो सकती हैं, ऐसा गोनर्दीय आचार्य कहते हैं। अर्थात् घर का स्वच्छ, सजा हुआ रखना और पूजादि के लिए सब प्रकार के सुभीते का विशेष स्थान बनाना इत्यादि। ऊपर जो कुछ कहा गया है वह सबको ही पसन्द आता है और उतना तो अवश्य ही करना चाहिए।

आगे दो कर्तव्य और बताते हैं :—

"गुरुषु भृत्यवर्गेषु नायकभगिनिषु तत्पतिषु च यथार्हं प्रतिपत्तिः।"

भावार्थ—घर के बड़ों में, भृत्यों में, पति की बहिनों में और उसकी बहिनों के पतियों के साथ यथायोग्य बर्तना चाहिए। अर्थात् जिसका जितना मान करना है उतना मान करे। जिस पर जैसा शासन करना है, उस पर उतना शासन करे।

"परिपूतेषु च हरित शाकवप्रानिक्षुस्तम्बाञ्जीर कसर्षपाजमोदशतपुष्पातमालगुल्मांश्च कारयेत्।"

"कुब्जकामलक मल्लिका जाती कुरण्टक नवमालिका तगरनन्द्यावर्त जपागुल्मानन्यांश्च बहुपुष्पान्बालको शीरकपातालिकांश्च वृक्षवाटिकायां च स्थण्डिलानि मनोज्ञानि कारयेत्।"

भावार्थ—घर के आँगन के पवित्र स्थानों में हरे शाक, ईख, पौंडा, ज़ीरा, सरसों, अजमोद, अजवायन

सौंफ़, सोया, चणपत्ती का शाक (तमाल नामक वृक्ष भी होता है, परन्तु यहाँ आँगन में शाकादि ही का ग्रहण हो सकता है।) इन सब पौधों को लगावे।

गुलाब, आँवला, जूही, चमेली, कुटज और पीत-झिण्डी, सेवती, नेवारी, तगरचण्डी और तगर गाछ जिसके श्वेत पुष्प, काले पत्ते होते हैं और स्वाद में कड़वे होते हैं, जो बङ्गाल में प्रायः होता है। सुगन्धित पुष्पों वाला तृण, जपाकुसुम तथा अन्य अनेक प्रकार के पुष्पों के पौधों को तथा सुगन्धबाला, ख़स, पान आदि पौधे तथा लताएँ भी वृक्ष-वाटिका में लगावे। तथा उसमें सुन्दर-सुन्दर क्यारियाँ भी बनावे। पता लगता है कि वृक्ष-वाटिका और पुष्प-वाटिका प्रत्येक गृहस्थ के लिए आवश्यक है और इस विद्या में पतिव्रता पत्नी को अवश्य ज्ञान रखना चाहिए।

"मध्ये कूपं वापीं दीर्घिकां व स्तानयेत्।"

भावार्थ—वाटिका के मध्य में कुआँ, बावली अथवा तालाब आदि, किसी प्रकार का भी, जलाशय अवश्य बनावे। यदि नल से ही पानी आता हो तो भी एक हौज़ तो बना ही देवे। इससे वाटिका की शोभा और जल की सदा परिस्थिति से होने वाले लाभ प्रत्येक गृहस्थी को होंगे।

"भिक्षकी श्रमणाक्षपणा कुलटा कुहके क्षणिका मूलकारिकाभिर्न संसृज्येत।"

भावार्थ—भिखारिन, साधुनी, जैन-बौद्धों की भिक्षुणी, दुराचारिणी, जादूगरनी, मन्त्रौषधों से वश वाली स्त्री, इनसे कभी भी मेल-जोल न बढ़ावे। इनसे अधिक मिलने से पतिव्रता भी पथ-भ्रष्ट होकर दुराचारिणी बन सकती है, अतएव इनसे सङ्गति करने का निषेध किया है।

"भोजने च रुचितमिदमस्मै द्वेष्यमिदं पथ्यमिदमपथ्यमिदमिति च विन्द्यात्।"

भावार्थ—भोजन के विषय में उसे जानना चाहिए कि पति को यह भोजन पसन्द है या नापसन्द है, और यह पथ्य है या अपथ्य है। जो गृहपत्नि अपने पति की रुचि के अनुकूल और पथ्य भोजन बनाती है और पति की रुचि के विरुद्ध और अपथ्य भोजन नहीं बनाती, वही बुद्धिमती कहाएगी।

"स्वरं बहिरुपश्रुत्य भवनमागच्छतः किं कृत्यमिति ब्रुवतो सज्जा भवनमध्ये तिष्ठेत।"

भावार्थ—पति के आने की ध्वनि को बाहर से सुन कर, 'क्या करना चाहिए' ऐसा कहती (सोचती) हुई सर्वथा स्वागत के लिए तैयार होकर घर के बीच में खड़ी हो जावे।

बुद्धिमती पत्नी को अपने पति की कण्ठ-ध्वनि और पैरों के आहट की पहचान होनी चाहिए। पैर-ध्वनि सुनते ही जो-जो उस समय की कर्तव्य-सामग्री है, उसको लेकर पति के स्वागत और अन्दर पग धरने की प्रतीक्षा में घर के अन्दर खड़ी रहे। घर के द्वार पर खड़ी होना और छिप के कहीं दूर के कमरे में बैठ रहना शास्त्र उचित नहीं बताता। द्वार देश पर खड़ी होकर झाँकने से पति को अन्य शङ्का का अवसर मिल सकता है तथा छिप के बैठने से उपेक्षा के भाव का पता लगता है। इसलिए पतिव्रता घर के मध्यस्थ भाग में जहाँ आते ही पति की प्रथम दृष्टि उस पर पड़ सके, वहाँ तैयार होकर खड़ी रहे।

"परिचारिकामपनुद्य स्वयं पादौ प्रक्षालयेत्।"

भावार्थ—दासी को हटा कर स्वयं पति के पैरों को धोवे।

निषेध के अनन्तर विधान होने से अधिक उत्सुकता पाई जाती है, अतएव दासी को हटा कर स्वयं पाद-प्रक्षालन रूपी कर्म करने से उसकी अगाध निष्ठा पति में प्रतीत होती है। शास्त्रकार का "दासी को हटा कर" कहने का यही अभिप्राय है। यदि दासी न हो तो स्वयं करे ही।

"नायकस्य च न विमुक्त भूषणं विजने संदर्शने तिष्ठेत।"

भावार्थ—नायक के सामने एकान्त स्थान में कभी बिना भूषण न जावे।

भूषण जो नायक ने बनवा दिए हों, उन्हें तथा अन्य भूषण धारण करके जाने से सौभाग्य बढ़ता है। अन्यथा उपेक्षा तथा विरक्ति सी झलकने के अतिरिक्त सौभाग्यहीनता प्रतीत होती है।

"अतिव्ययमसद् व्ययं कुर्वाणं रहसि बोधयेत्।"

भावार्थ—पति को अधिक ख़र्च करते अथवा अनुचित बातों में ख़र्च करते देख कर, उसको एकान्त में समझावे।

जो बात एकान्त में कही जाती है, उसका चित्त पर सदा स्थिर प्रभाव पड़ता है। इसी कारण गृहस्थ

के मूलभूत धन का नाश या अपव्यय होते देख धर्म-परायणा, दूरदर्शिनी पत्नी इस विषय को एकान्त में ही सुझावे।

"आवाहे विवाहे यज्ञे गमनं सखीभिःसह गोष्ठीं देवताभिगमनमित्यनुज्ञाता कुर्यात्।"

भावार्थ—निमन्त्रण में, विवाह में और यज्ञ में जाना हो, सखियों के साथ गप-शप करनी हो और मन्दिर आदि में किसी व्रत आदि के लिए या पूजा आदि के लिए जाना हो, तो भी पति की आज्ञा लेकर ही जावे।

इन मुख्य बातों में भी आज्ञा लेनी जब उसका धर्म है तो इसके अतिरिक्त छोटी-छोटी बातों के लिए घर से चल पड़ना तो पतिव्रता कभी कर ही नहीं सकती।

"सर्वक्रीडासु च तदानुलोम्येन प्रवृत्ति।"

भावार्थ—सब प्रकार के खेलों तथा मनोविनोद की बातों में पति की अनुकूलता देख कर प्रवृत्त हो।

जिस खेल में पति की प्रतिकूलता हो वह न खेले।

"पश्चात्सम्वेशनं पूर्वमुत्थापनमनवबोधनं च सुप्तस्य।"

भावार्थ—पति के पीछे सोए, पहिले ही जाग उठे, और यदि पति सो रहा हो तो जगावे नहीं।

पति जाग रहा हो और स्त्री पलङ्ग पर सोई ही पड़ी हो, यह दैनिक व्यवहार में अत्यन्त अनुचित है तथा मर्यादा-भङ्ग भी होता है।

"महानसं च सुगुप्तं स्याद्दर्शनीयञ्च।"

भावार्थ—भोजनशाला या रसोई-घर सुरक्षित और दर्शनीय होना चाहिए।

सब भोजन के पात्र तथा भोजन-सामग्री वहाँ होती है, इस कारण तथा भोजनादि पर सब की दृष्टि न पड़े, इस कारण उसे सुरक्षित ही रहना चाहिए तथा भोजन खाने में अरुचि न हो, इसलिए उसे स्वच्छ, पुता हुआ, दर्शनीय होना चाहिए।

"नायकापचारेषु किञ्चित् कलुषिता नात्यर्थं निर्वदेत्।"

भावार्थ—पति के बुरे कार्यों और व्यवहारों को देख कर कुछ दुखी होवे, पर सामने अधिक न बोले।

"साधिक्षेपवचनं त्वेनं मित्रजनमध्यस्थमेकाकिनं वाप्युपालभेत। न च मूलकारिकास्यात्।"

भावार्थ—उन बातों के लिए, मित्रों में बैठे हुए पति को अथवा जब एकान्त हो तब उलाहना देवे। परन्तु मूलकारिका अर्थात् मन्त्र-औषध से वश करने वाली न बने।

"दुर्व्याहृतं दुर्निरीक्षितमन्यतो मन्त्रणं द्वारदेशावस्थानं निरीक्षणं वा निष्कुटेषु मन्त्रणं विविक्तेषु चिरमवस्थानमिति वर्जयेत्।"

भावार्थ—दुर्वचन बोलना, बुरी जगह देखना, किसी अन्य से सलाह-सम्मति लेना, द्वार-देश पर बैठी रहना और बाहर झाँकते रहना, फूल के बग़ीचे में जाकर किसी से सलाह-सम्मति करना तथा एकान्त स्थानों में देर तक बैठे रहना, ये सब बातें कभी न करे।

स्पष्ट है कि पतिव्रता को ऐसा करने से पति में उतनी प्रीति नहीं रह सकती।

"स्वेददन्तपङ्क दुर्गन्धाश्च बुध्येतेति विरागकारणम्।"

भावार्थ—पसीना, दाँत, बग़ल तथा अन्यान्य मैले स्थानों की दुर्गन्धि को जाने, क्योंकि दुर्गन्धि के कारण पति को विराग अर्थात् घृणा हो जाती है।

अपने शरीर की दुर्गन्धि जान कर उसे अवश्य दूर करते रहना चाहिए।

"बहुभूषणं विविधकुसुमानुलेपनं विविधाङ्गराग समुज्ज्वलं वास इत्याभिगामिको वेषः। प्रतनुश्लक्ष्णाल्पदुकूलता परिमिताभरणं सुगन्धिता नात्युल्बणमानुलेपनम्। तथा शुक्लान्यन्यानि पुष्पाणि इति वैहारिको वेषः।"

भावार्थ—बहुत आभूषण, विविध प्रकार के फूलों को पीस कर प्रलेप लगाना, तथा विविध अङ्गरागों से समुज्ज्वल वस्त्र धारण करना यह आभिगामिक वेष है। तथा बहुत ही बारीक, चिकने अर्थात् खुरदरी न हों, तथा हल्के और कम वस्त्र या ओढ़नी ओढ़ना, आवश्यक आभूषण, सुगन्धि और बहुत गाढ़ा अनुलेपन न लगाना तथा अन्य श्वेत रङ्ग के पुष्प धारण करना, यह सब वैहारिक वेष अर्थात् विहार करने के समय का वेष है।"



साक़ी

क्या बताऊँ, क्या कहूँ, क्या रङ्ग मैख़ाने में है,
दोनों आलम का समाँ, एक मेरे पैमाने में है।

—'बिस्मिल'

वस्त्र, आभूषण, सुगन्ध, अनुलेपन, अङ्गराग, पुष्प आदि किस अवस्था में किस प्रकार के धारण करने चाहिए, आभिगामिक वैहारिक अवस्था-भेद से इनमें कैसा परिवर्तन करना चाहिए ; यह स्पष्ट लिख दिया है, अधिक स्पष्ट करना अनावश्यक है।

"नायकस्य व्रतमुपवासं च स्वयमपि करणे-नानुवर्तेत । वारितायां च नाहमत्र निर्बन्धनोयेति तद्वचसो निवर्तनम् ।"

भावार्थ—नायक को व्रत-उपवास करते देख कर स्वयं भी करे। और यदि पति रोके तो उससे कहे कि इस विषय में मुझे रोको मत, इस प्रकार से पति-वचन को लौटा दे, अर्थात् न माने।

"मृद्विदलकाष्ठचर्मलोहभाण्डानां च काले समर्घ ग्रहणम् ।"

भावार्थ—मिट्टी, लकड़ी, चमड़ा, लोहा, इनके बर्तनों को सदा घर में स्वच्छ रक्खे।

"तथा लवणस्नेहयोश्च गाधद्रव्यकटुक भाण्डौ-षधानां च दुर्लभानां भषनेषुप्रच्छन्नं निधानम् ।"

भावार्थ—तथा नमक, तेल, घी, मोम आदि स्नेह-द्रव्य भी सदा उपस्थित रक्खे और ख़ुशबूदार वस्तुएँ तथा कटुक द्रव्यों को और दुर्लभ औषधों को भी घर में सुगुप्त तथा सुरक्षित रक्खे।

कटुक द्रव्य इन वस्तुओं को कहा जाता है :—

सुहाञ्जना, लाल सुहाञ्जना, मूली, लहसुन, मौरी, कूट, देवदार, गुग्गुल, रेणुका, बाबची के बीज, शङ्खपुष्पी, मोथा, लाङ्गली, श्योनाक, पीलु आदि तथा पिपली, पीपलामूल, चव्य, चितामूल, सोंठ, मिर्च, गजपीपली, इलायची, अजवायन, इन्द्रजौ, आकनादि, ज़ीरा, सरसों, घोड़ानीम, मैनफल, हींग, भारङ्गी, मूर्वीमूल, अतीस, वच, वायविड़ङ्ग, कुटकी तथा श्वेत तुलसी, गन्ध पलाश, बाबुई, गन्धतृण, महागन्धतृण, राई, बनबाबुई, कासमर्द या कसौंधी, हेंचेता (बङ्गला नाम), बनतुलसी, कट्फल, श्वेत-निशिन्दा, नील निशिन्दा, कुकुरशौका, चूहेकानी, कौआठोड़ी, गुडकाँओली (बङ्गला) तथा शाल, पीला शाल, श्वेत खैर, बिट्खैर, सुपारी, भोजपत्र, मेलश्रृङ्गी, तिन्दुक, चन्दन, लालचन्दन, शिग्रु, शिरील, बक, धाय, अर्जुन, ताल, शेगुन, करञ्ज, नाटाकरञ्ज, अगर, काली अगर, लताशाल आदि।

"मूलकालुकपालङ्की दमनाम्रातकैर्वारुकत्रपु-सवातीक कूष्माण्डालाबु सूरणशुकनासा स्वयं-गुप्ता तिलपर्णिकाग्निमन्थ लशुनपलाण्डुप्रभृतीनां सर्वौषधीनां च बीजग्रहणं काले वापश्च ।"

भावार्थ—मूली, आलू, पालक, दौना, आम्बड़ा, खीरा, ककड़ी, बैंगन, पेठा, लालकद्दू, घीयाकद्दू, ज़मींकन्द, कौआठोड़ी, कौंच, तिलपर्णी, अरणी, लहसन, प्याज़ आदि सब औषधियों के बीज सञ्चित करे और समय पर बोवे।

इनमें कितनी ही औषधियाँ साग-भाजी के लिए हैं, कितनी ही अनेक रोग और विष आदि नाशक हैं, कितनी ही गृहस्थाश्रम की प्राण-स्वरूपा हैं।

"स्वस्य च सारस्य परेभ्यो नाख्यानं भर्तृ मन्त्रितस्य च ।"

भावार्थ—अपने घर के धन-सम्पत्ति को और अपने पति की गुप्त बातों को कभी भी किसी और से न कहे।

"समानाश्च स्त्रियः कौशलेनोज्ज्वलतया पाकेन मानेन तथोपचारैरतिशयीत ।"

भावार्थ—अपने बराबर की अन्य स्त्रियाँ सपत्नि आदि को अपने अनेक कौशल के कामों से, उज्ज्वल अर्थात् शुद्ध पवित्र वस्त्रादि धारण और स्नानानुलेपन आदि से अङ्गों के उज्ज्वल रखने से, तथा भोजन के अनेक विधि पकाने से, तथा मान दिखाने से तथा अनेक प्रकार की सेवा-शुश्रूषा आदि के उपचारों से जीत लेवे और पति के स्नेह को अधिक प्राप्त करे।

"सांवत्सरिकमायं संख्यायतदनुरूपं व्ययं कुर्यात् ।"

भावार्थ—साल भर की अपने घर की आय को गिने और उसीके अन्दर अपना व्यय चलावे। अधिक व्यय न करे।

"भोजनावशिष्टाद्गोरसाद्घृतकरणम् तथा तैलगुडयोः । कार्पासस्य च सूत्रकर्तनम् सूत्रस्य वानम् । शिक्यरज्जु पाशवल्कलसंग्रहणम् । कुट्टन कण्डनावक्षेपणम् । आचाममण्ड तुषकण कुट-यङ्गाराणामुपयोजनम् । भृत्यवेतन भरणज्ञानम् ।

कृषिपशुपालन चिन्तावाहन विधानयोगाः । मेष कुक्कुटलावकशुकशारिका परभृतमयूरवानर मृगानामवेक्षणम् । दैवसिकमायव्ययपिण्डी करणमिति च विद्यात् ।"

भावार्थ—भोजन से अर्थात् नित्य के खाने-पीने से जो दूध-दही बच जाए, उसका घी बना कर रक्खे तथा तेल और गुड़ भी घर में सदा उपस्थित रक्खे। कपास का सूत काते और सूत को बुने। छिक्का, रस्सियों की बनी जालियाँ, जाल, रस्से और वृक्षों की छाल तथा सन आदि की छाल भी घर में रक्खे। कूटना-कण्डन अर्थात् धान, जौ आदि के छिलके उतारना, ऊखल-मूसल आदि को काम में लाना। आचाममण्ड, चावलों की माँड, तुषधान्यों के दाने, और कुटयङ्गार अर्थात् लकड़ी के कोयले घर में रक्खे। (तुषधान्य—कङ्गुश्चीनः कोद्रवश्च श्यामाको वनकोद्रवः। शणबीजं वंशबीजं गवेधुश्च प्रसाधिका, तावन्त्येतानि चोक्तानि तुषधान्यानि वैनव। कङ्गनी, चीना, कोदों, सावाँ, बनकोदों, सन के बीज, बाँस के बीज, बाजरा, नीवार या उड़ीधान, इन नौ को तुषधान्य कहते हैं। तथा लाल चावल आदि को भी तुषधान्य कहते हैं।) घर के नौकरों को वेतनादि देना तथा उनको सन्तुष्ट रखना भी जाने। खेती, बैल, गौ, बकरी आदि का पालना, उनकी रक्षा, उनका उपयोग आदि जाने। मेंढा, मुर्ग़ा, बटेर, तोता, मैना, कोयल, मोर, बन्दर, हरिण आदि पशुओं का पालन और इनकी नित्य देख-रेख करनी; दिन की आय और व्यय का रोज़ ही जमा-ख़र्च रखना; यह सब जानना चाहिए।

घर की आवश्यक वस्तुओं को तो रखना ही चाहिए, इस पर अधिक लिखना नहीं है। चरख़ा चला कर सूत कातना और बुनना प्रत्येक पतिव्रता का धर्म बताया गया है। आजकल घरों में पशु-पालन छूटता जाता है। गौ-बैलादि के अतिरिक्त जो कुक्कुट, तोता, मैना, बन्दर आदि उपकार करते हैं, वे आयुर्वेद में सविस्तृत वर्णन कर दिए हैं। पाठक सुश्रुत आदि से देख सकते हैं। यहाँ इतना ही लिखते हैं कि इनके घर में रहने से ही अनेक भयङ्कर रोग नहीं होते। विष आदि की बाधा नहीं होती। जिन वस्तुओं या गन्दे परमाणुओं को हम छोड़ते हैं, उन्हें यह पक्षी आदि खाके अपना शरीर पुष्ट और घर को रोग-मुक्त करने में सहायक होते हैं। पटियाले के वैद्य ध्वजाराम जी ने अपने "अमृत" नामक समाचार-पत्र में यह भली प्रकार सिद्ध कर दिया है कि बन्दर और हरिण के पास निवास करने से किस प्रकार से राजयक्ष्मा अर्थात् तपेदिक़-सी भयङ्कर बीमारी से हम बच सकते हैं। फ्रान्स में बन्दरों से तपेदिक़ वालों को क्या लाभ हो सकता है, इस पर परीक्षण भी हो रहे हैं। हमारे घरों में इनका नित्य निवास होना लिखा है। प्रसिद्ध है कि तोता घर में बीमारी नहीं आने देता। इसी प्रकार यदि किसी भोजन आदि में विष पड़ा होगा, तो कोयल का गला बैठ जाता है, बन्दर विष्ठा छोड़ता है, तोता चीख़ता है, मयूर चञ्चल हो जाता है, आदि। मेंढा, भेड़ आदि से ऊन मिलती है तथा अनेक लाभ होते हैं।

"तज्जघन्यानां च जीर्णवाससां सञ्चयस्तै र्विविधरागैः शुद्धैर्वा कृतकर्म्मणां परिचारकारकाणामनुग्रहो मानार्थेषु च दानमन्यत्र वोपयोगः।"

भावार्थ—जो कपड़े पुराने हो जायँ उनको इकट्ठा रखती जाए, उनको धोकर व रँगा कर अपने नौकरों को देवे या जहाँ उचित हो वहाँ दान देवे अथवा अन्य उपयोगों में लावे।

"सुराकुम्भीनामासवकुम्भीनां च स्थापनं तदुपयोगः क्रयविक्रयावायव्ययावेक्षणम्।"

भावार्थ—सुरा के बनाने योग्य घड़े व पात्र तथा आसव के बनाने योग्य घड़ों को सुरा और आसव डाल के रखना और उनका उपयोग करना, ख़रीदने और बेचने की आय और व्यय को देखना।

लोग "शराब" को बुरा समझते हैं और सुरा और आसव शब्दों का उर्दू में क्योंकि सिवाय "शराब" कहने के और कोई शब्द नहीं मिलता, इसलिए लोग सुरा, आसव, अरिष्टों को भी वैसा ही त्याज्य समझते हैं। परन्तु यह भारी भ्रम है। आयुर्वेद में अनेक औषध, सुगन्धित द्रव्य, पुष्प-फल, मधु, गुड़ादि के योग से अनेक आसव, अरिष्ट और सुरा बनाई जाती है। उनसे अनेक रोग दूर होते हैं। राजयक्ष्मा जैसे भयङ्कर रोग तथा फेफड़े के अनेक रोग तो इन आसवारिष्ट सुराओं से विशेषतः दूर होते हैं। इनके सेवन से मनुष्य बलशक्ति, वीर्यशक्ति तथा कान्ति, तेज, बुद्धि, स्मृति, मेधा आदि से युक्त रहता

है। स्त्रियों को आजकल जो रोग अधिकतर देखने में आते हैं, यदि इनका सेवन यथाविधि होता तो कभी न होते। प्राचीन आर्य इन वस्तुओं का उपयोग करते थे। वेदों में अनेक स्थल पर आसव-सुरा आदि का उपयोग करना आता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि ये शराब-सी घृणित, बुद्धि भ्रष्ट करने वाली वस्तुएँ नहीं हैं, प्रत्युत ये ब्राह्मी अरिष्ट सी पवित्र बुद्धिवर्धक वस्तुएँ हैं। शराब में और इन औषधों में एक बार यदि पाठक भेद समझ लें, तो ये त्याज्य नहीं, प्रत्युत ग्राह्य वस्तुएँ हो जाएँ। अच्छा या बुरा सबकी नक़ल करने वाले जो देशद्रोही लोग विदेश की बनी शराबें पीते हैं, अनेक अङ्गरेज़ी दवाओं के साथ परहेज़गार लोग शराब के घोल को भी गले से नीचे डकार जाने में सङ्कोच नहीं करते, जो विदेश को अपना पैसा भेज कर शराब सी भ्रष्ट वस्तु में दिवाला निकाल कर मन्दबुद्धि हो जाते हैं, वे यदि अपने ही घरों में अपने ही हाथों से पवित्र औषधियों से द्राक्षारिष्ट, खर्जूरासव, ब्रह्मअरिष्ट, मृतसञ्जीवनी सुरा आदि बना कर पीवें, तो जहाँ अत्यन्त स्वल्प मूल्य में ये औषधियाँ तैयार हों वहाँ पैसा भी देश में रहे और शरीर, बुद्धि का नाश न होकर बल, विद्या, बुद्धि, स्मृति, कान्ति आदि बढ़ कर तेज और ओज बढ़े। स्मरण रखना चाहिए कि वेद और चरक सुश्रुतादि में ऋषियों ने आसवारिष्टसुरादि को यूँ ही नहीं लिख दिया है। इनका उपयोग करना उचित और धर्म-सङ्गत है, न कि धर्म-विरुद्ध।

"नायकमित्राणां च स्रगनुलेपनताम्बूलदानैः पूजनं न्यायतः। श्वश्रूश्वसुर परिचर्या तत्पारतन्त्र्यमनुत्तरवादिता परिमिताप्रचण्डालापकरण मनुच्चैर्हासः। तत्प्रियाप्रियेषुस्वाप्रियाप्रियेष्विव वृत्तिः। भोगेष्वनुत्सेकः। परिजने दाक्षिण्यम्। नायकस्यानिवेद्य न कस्मैचिद्दानम्। स्वकर्म्मसु भृत्यजन नियमनमुत्सवेषु चास्य पूजनमित्येकचारिणीवृत्तम्।"

भावार्थ—पति के मित्रों को माला, अनुलेपन, पान आदि देकर पूजा-सत्कार करना चाहिए, परन्तु न्याय से ही। सास-ससुर की सेवा, उनकी अधीनता में रह कर सब काम करना, उनके सामने उत्तर न देना। परिमित अर्थात् उचित, अप्रचण्ड, अधिक ज़ोर से नहीं, बात करनी तथा बहुत ऊँचे से नहीं हँसना चाहिए। सास-ससुर जिनको प्यार करते हों, उनसे स्वयं भी प्रेम करे; जिनसे घृणा करते हों, स्वयं भी घृणा करे, अर्थात् जिस सम्बन्धी से जैसा उनका व्यवहार हो, उसके विरुद्ध न करे। लोगों में बहुत फँसी न रहे। परिवार वालों पर प्रेम, दया और उदारता रक्खे। पति से बिना कहे किसी को कुछ दान न देवे। अपने कामों में नौकरों को लगाए रखना और जब उत्सव-त्योहार आदि आवें तो नौकरों को दानादि देकर सम्मानित करना—ये सब एकचारिणी अर्थात् पतिव्रता पत्नी के वृत्त हैं।

यहाँ पर केवल "न्यायतः" शब्द पर लिखना है। आजकल की सभ्यता की तरह कि पति तो एक ओर बैठा है और पत्नी उसके या अपने मित्रों के साथ बराण्डे में या बाग़ में टहल रही है, उनसे हाथ मिलाती है, बाँहों में बाँहें डालती फिरती है। यह भी मित्रों की पूजा करती है और प्राचीन आचार्य भी मित्रों की पूजा करना लिखते हैं। पर एक भेद है। प्राचीन आचार्य पतिव्रता को एक शब्द से अन्तर बताते हैं, वह शब्द है "न्यायतः" अर्थात् न्यायानुसार जितना उचित हो वा धर्म आज्ञा देता हो, उससे आगे अणु मात्र भी न बढ़े। मित्रों को माला देनी हो तो स्वयं उनके गले में न डाले, क्योंकि यहाँ न्याय कहता है कि गले में माला डलवाने का अधिकार केवल पति को है, और को नहीं। इसी प्रकार पानादि को समझना चाहिए। मित्रों का सत्कार अवश्य कर्तव्य है, परन्तु न्याय से। माला गले में डाल कर भी दी जा सकती है और नौकर द्वारा व स्वयं भी सामने रख कर दी जा सकती है। देने-देने में अन्तर है और यहीं भारतीय सभ्यता और पाश्चात्य सभ्यता में अन्तर है। यही 'न्याय' शब्द का अर्थ है। बहुत उच्च हँसना, बहुत बोलना भी शोभा नहीं देते हैं। बड़ों की प्रतिष्ठा करनी आवश्यक ही है।

अब तक पति के पास होने पर सब वृत्त कहा है। किन्तु जब पति प्रवास में हो तो पतिव्रता स्त्री कैसे रहे, उसे आगे लिखते हैं :—

"प्रवासे मङ्गलमात्राभरणा देवतोपवासपरा वार्तायां स्थिता गृहानवेक्षेत।"

भावार्थ—पति प्रवास में गया हो तो मङ्गल-मात्र

के लिए आभूषण (सौभाग्य सूचक चूड़ी आदि) पहने रक्खे, शेष आभूषण उतार दे। देवता अर्थात् विद्वान, परमात्मा के भक्त नर-नारियों के जीवन आदि का अध्ययन, विचार और आचरण करे तथा व्रत-नियम आदि स्नान सन्ध्या-वन्दनादि पुण्य कर्मों में लगी रहे। बातचीत करती हुई भी घर के निरीक्षण में रहे।

अर्थात् सब काम पवित्र करे और पति को ध्यान में रक्खे। उपवास, पूजादि से मन में कुभाव उत्पन्न न होकर पवित्रता बढ़ती तथा पति-भक्ति सूचित होती है।

"शय्या च गुरुजनमूले। तदभिमता कार्य्य-निष्पत्तिः। नायकाभिमतानां चार्थानामर्जने प्रतिसंस्कारे च यत्नः।"

भावार्थ—सास-ससुर के पैरों की ओर सोवे, उनकी आज्ञा से कार्य करे। पति के अनुकूल वस्तुओं को इकट्ठा करने और सँवारने का प्रयत्न करे।

"नित्यनैमित्तिकेषु कर्मसूचितो व्ययः। तदारब्धानां च कर्मणां समापने मतिः।"

भावार्थ—नित्य और नैमित्तिक कर्मों में उचित और पूछ कर व्यय करे। पति जिन-जिन कामों को आरम्भ करके अधूरा छोड़ गया हो, उनको समाप्त करने की कोशिश करे।

"ज्ञातिकुलस्यानभिगमनमन्यत्र व्यसनोत्सवाभ्याम्। तत्रादिनायकपरिजनाधिष्ठिताया नातिकालमवस्थानमपरिवर्तित प्रवासवेशता च।"

भावार्थ—बिना शोक और उत्सव के अवसरों के सम्बन्धियों और बिरादरी वालों के यहाँ भी न जावे। और कहीं जाते समय साथ में पति के परिवार का कोई आदमी हो। दूसरों के घर में देर तक न ठहरे और प्रवास वाला ही वेष रक्खे।

"गुरुजनानुज्ञातानां करणमुपवासानाम्। परिचारकैः शुचिभिराज्ञाधिष्ठितैरनुमतेन क्रय-विक्रय कर्मणा सारस्यापूरणम् तनूकरणं च शक्त्या व्ययानाम्।

भावार्थ—सास-ससुर आदि बड़ों से पूछ कर व्रत रक्खे। पवित्र आज्ञाकारी नौकरों की अनुकूल सम्मति लेकर ख़रीद-बिक्री से अपने धन और आय को बढ़ावे एवं को यथाशक्ति कम करे।

"आगते च प्रकृतिस्थाया एव प्रथमतो दर्शनम् दैवतपूजनमुपहाराणां चाहरणमिति प्रवासचर्या।"

भावार्थ—जब पति आवे तो उसी प्रवास के वेष की अथवा पूर्व की श्रेष्ठ भूषित अवस्था में रह कर पति का प्रथम दर्शन करे, देवता तथा ब्राह्मण की पूजा करे, दान-पुण्य, इनाम आदि नौकरों को देवे। यह प्रवासचर्या कही है।

अब दोनों प्रकरणों का उपसंहार लिखते हैं :—

सद्वृत्तमनुवर्त्तेत नायकस्य हितैषिणी।
कुलयोषा पुनर्भूर्वा वेश्या वाप्येकचारिणी ॥ १ ॥
धर्म्ममर्थं तथा कामं लभन्ते स्थानमेव च।
निःसपत्नं च भर्त्तारं नार्यः सद्वृत्तमाश्रिताः ॥

भावार्थ—पति या नायक का हित चाहने वाली कुल-कन्या विवाहिता पत्नी वा दुबारा विवाह कर चुकने के बाद पुनर्भू तथा एक नायक से ही प्रेम रखने वाली वेश्या भी उपर्युक्त ऐसे श्रेष्ठ आचरणों को करे। इस उपर्युक्त श्रेष्ठ वृत्त पर चलती हुई श्रेष्ठ नारियाँ धर्म, अर्थ, काम और मान को तथा सपत्नी-रहित पति को पाकर सुखी रहती हैं।

* * *

शक्ति-सञ्चय की आवश्यकता

सारा संसार शक्ति का उपासक है। प्रत्येक काल में शक्ति ही का साम्राज्य रहता है। शक्ति के पुञ्ज ही का नाम राजा है। देवता शक्ति के ही देह-स्वरूप (Personification) है। मुक्ति अनन्त शक्ति ही के उपार्जन का नाम है। सर्वज्ञता का मूल तत्व भी शक्ति ही है। 'अहिंसा परमोधर्मः' का रहस्य शक्ति में छिपा है। सत्य की जड़ शक्ति और प्रेम का बीज शक्ति है। भक्ति का आधार शक्ति है। ईश्वर का मुख्य गुण सर्वशक्तिमान है। मुक्त जीव के गुण की पूर्णता भी अनन्तवीर्य नामक गुण से होती है। निष्पक्ष तथा

जिज्ञासु बुद्धि से यदि देखा जाय तो प्रत्येक देश, प्रत्येक जाति तथा प्रत्येक कुटुम्ब और प्रत्येक व्यक्ति शक्ति का ही पुजारी रहा है और रहेगा। शक्ति के अतिरिक्त कोई भी वस्तु इस विश्व में न पूजनीय है, न माननीय; न अनुकरणीय है और न प्रशंसनीय। प्रत्येक धर्म की नींव शक्ति, प्रत्येक राष्ट्र का आधार शक्ति, प्रत्येक सभ्यता का स्तम्भ शक्ति ही है। भारत, चीन, रोम, यूनान और



(दाहिनी ओर से) स्वर्गवासी पण्डित मोतीलाल नेहरू; श्रीमती सरोजिनी नायडू और श्रीमती रामेश्वरी नेहरू। (स्वर्गीय पण्डित जी के हाल के लिए हुए एक चित्र से)

मिश्र की सभ्यता अति प्राचीन और बलवती कही जाती है। इसलिए कि इन देशों के प्रत्येक जीवन-कार्य में शक्ति ही के उपासक होने का सदैव प्रमाण मिलता रहा है। आत्मा और प्रकृति की प्रत्येक शक्ति को ये जातियाँ देवता मानतीं, उनकी प्रतिमाएँ बनातीं और उनको पूजती आई हैं। सूर्य देवता क्यों है? अग्नि, इन्द्र, कामदेव, विष्णु, हरक्यूलीज़ (Hercules), हुरमुज़, राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध भगवान—ये सब राज-शक्तियाँ हुई हैं। भारत तथा यूनान में ही नहीं, किन्तु समस्त संसार में प्रत्येक जाति और प्रत्येक देश के देवताओं और पूजनीय आदर्शों की छानबीन कीजिए। सबका मूल-स्वरूप केवल एक ही तत्व है।

जिस देश, जिस जाति में, जिस समय, जिस विशेष शक्ति की अनिवार्य आवश्यकता हुई या जो शक्तियाँ अपना आधिपत्य जमाती रहीं उस देश, जाति और उस व्यक्ति ने अनुकूल शक्तियों को देवता या अवतार मान कर, उनकी प्रतिमाएँ बना कर, उनकी स्तुति गाकर, उनकी पूजा की। इन शक्तियों को देवता और देवी मान कर इनकी मूर्तियाँ स्थापित की गईं। यूनान तथा भारत में तो प्रत्येक शक्ति अर्थात् सुन्दरता, (Beauty) सङ्गीत (Music), लक्ष्मी (Wealth), सरस्वती (Learning) आदि के बुत बनाए गए हैं।

भारत में जब जनता के हृदय कायर और उनका रक्त शीतल हो गया ; जनता से स्वाभिमान और जातीय अभिमान उठ गया और भारत-सन्तान को मिथ्या वैराग्य के लगातार उपदेश व आदेश ने इतना नपुंसक बना दिया कि स्वतन्त्रता और धर्म नष्ट-भ्रष्ट होने लगे तो दुर्गा, भैरव, काली, चण्डिका रूप में उस युद्ध-शक्ति को देवी बना कर पूजने के लिए व्यवहार में लाया गया।

महाभारत के पश्चात् जब हिंसा का साम्राज्य था, प्रत्येक कार्य में हिंसा न केवल आवश्यक थी, बल्कि धर्म-सङ्गत क्रिया बन गई, तो अहिंसा, शान्ति, क्षमा और समता के अवतारों, महावीर स्वामी, भगवान बुद्ध, हज़रत ईसा आदि ने इन गुणों का इतना विस्तृत प्रचार किया कि जनता ने भगवान बुद्ध, महावीर स्वामी, हज़रत ईसा के शान्तिमयी, ध्यानमयी और त्यागमयी प्रतिमाएँ बना कर उनको पूजना आरम्भ किया। इन गुणों के पोषक विज्ञान का अति वेग से प्रचार किया गया; अहिंसा की उपयोगिता और शिक्षा इतनी फैलाई गई और इनकी आवश्यकता इतनी प्रमाणित की गई कि

हिंसा-युग अहिंसा-युग में परिणत हो गया। शताब्दियों तक अहिंसा का साम्राज्य रहा। संन्यास-मार्ग को इससे अति बलवती सहायता और उत्तेजना मिली। परन्तु जब भारत-सन्तान संन्यास के दलदल में फँस कर केवल यज्ञों में ही मग्न और गृहस्थ-धर्म से विमुख हुई तो फिर मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र, योगीश्वर श्रीकृष्णचन्द्र की पूजा को जीवित किया गया। इन्हीं की मूर्तियों और कथाओं को जनता के सामने विशेषता से रक्खा गया। जब भारत-साम्राज्य तितर-बितर हो गया और कोई राज-शक्ति सब को एक सूत्र में बाँधने में असमर्थ हो गई, और पृथक-पृथक तथा खण्ड राज्य स्थापित हो गए, तो कुल-अभिमान और निज स्वतन्त्रता जीवित रखने के लिए प्रत्येक धर्म में इष्ट-देव की मूर्तियाँ स्थापित की गईं। घर-घर में इस प्रकार के देवताओं का मान्य बढ़ा और उन पर अपार श्रद्धा दिखलाई जाने लगी। वैदिक काल में जल देवता, अग्नि देवता, वायु देवता आदि शक्तियों की पूजा का इतना विधान मिलता है कि वे वेद के मुख्य स्तोत्र बन गए हैं। यमराज, कुबेरराज, गिरिराज, धर्मराज आदि, नामों से प्रत्येक स्वतन्त्र परन्तु बलवती शक्ति को देवता का स्वरूप दिया गया। फिर एक ईश्वर की राज्य-शक्ति में श्रद्धा का उपदेश दिया जाने लगा। अतः हज़रत मुहम्मद, महात्मा कबीर, लूथर और नानकदेव आदि इसी कोटि के प्रचारक हुए। और उनकी मूर्तियों को जनता ने अवतार बना कर पूजना प्रारम्भ किया। यदि हम यह विचार करें कि ऐसा क्यों होता है, तो पता चलेगा कि राज्य-शक्ति (Commanding Power) को प्रत्येक काल और देश में पूजने का भाव (Mentality) और रूढ़ि का परिणाम है। विष्णु की पूजा लक्ष्मी को जीत लाने पर, महादेव की पूजा कामदेव को हरा देने पर, राम की पूजा रावण का बध करने पर, कृष्ण की पूजा कंस, शिशुपाल और जरासिन्धु के मार गिराने पर, सीता की पूजा अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर, राधिका की पूजा कृष्ण जैसे योगीश्वर और सिद्ध पुरुष के प्रेम-पात्र बनने पर, क्रॉमवेल का मान्य चार्ल्स प्रथम को निर्मुण्ड करने पर, वाशिङ्गटन और अब्राहम लिङ्कन की पूजा ब्रिटिश शक्ति को पराजित करने पर, ईसा की पूजा क्षमा, सहनशीलता के आदर्शनीय प्रमाण देने पर, मुहम्मद की इबादत अरब के बद्दुओं को समर-प्रिय और विजयी जाति बनाने पर, गुरु गोविन्दसिंह की पूजा सिक्खों को मार्शल जाति बनाने और अपने हृदय के टुकड़ों की आहुति देने पर, लेनिन की पूजा ज़ार के आधिपत्य ही को नहीं, किन्तु उसके कुटुम्ब को तलवार के घाट उतारने पर, महाराणा प्रताप की पूजा महान प्रलोभनों में भी अद्वितीय वीर और दृढ़-प्रतिज्ञ होने पर, बिस्मार्क



डॉ० गोरखप्रसाद जायसवाल, डी० एस-सी० (एडिनबर्ग, लन्दन)

आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर हैं, जो हैहय क्षत्रिय सभा (प्रयाग) के प्रधान चुने गए हैं।

की जर्मन के बच्चे-बच्चे को रणवीर और स्वाभिमानी बना देने पर, भगवान बुद्ध तथा महावीर स्वामी की पूजा अहिंसा का राज्य स्थापित करने पर, महात्मा गाँधी की विश्व-मान्यता पाशविक शक्ति को आत्म-शक्ति से पराजय कर दिखाने पर ही तो हुई है। अतएव जिस व्यक्ति व वस्तु की पूजा की जाती है, उसका मुख्य, वरन् एकमात्र कारण उसकी महान शक्ति है।

चूँकि हम शक्तियों को 'Personified' करते हैं, इसलिए कहने लगते हैं कि हम आदर्शोपासक हैं। इस उपासना में जिसको आदर्श मानते हैं और प्रचार की आवश्यकता होती है, उसको 'Personified' करके अपना ध्येय बनाया जाता है। कुछ समय के पश्चात् काल के परिवर्तन से ऐसा नहीं रह जाता। हम चाहे दूरदृष्टि से सिद्धान्त-पूजक हों, परन्तु क्रमशः जनता तो केवल मूर्ति-पूजक ही रह जाती है। इसी कारण से उस जाति की शक्ति का ह्रास होता है। यही कारण है कि एकता का सूत्र टूट जाते ही वह देश और जाति पराधीन बन जाती है और उसके जीवन-तन्तु नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। ऐसी जाति के सामने उन शक्तियों के आदर्श और प्रतिमाएँ रखने की आवश्यकता है, जो उनमें जीवन-सञ्चार कर सकें।

भारत में अब वह समय नहीं है कि जनता के सामने वेदान्त के सर्वोच्च या संन्यास-मार्ग के आत्म-प्रिय सिद्धान्त से चिमटे रहने का उपदेश जारी रक्खा जाय। भारत का यह समय मिथ्या वैराग्य के गीत गाने और कथाएँ सुनने का नहीं रहा है। अब तो समय है कि हमारे घरों में भगवान तिलक, महात्मा गाँधी, राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू, महाराणा प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, महारानी लक्ष्मीबाई आदि की भावपूर्ण प्रतिमाएँ स्थापित की जायँ। उनकी राष्ट्रीयता के सिद्धान्तों की कथाएँ हों और उनके दिवस मनाए जायँ। अब आवश्यकता है स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयता को 'Personified' करके उनकी भावपूर्ण, भव्य और विशाल प्रतिमाएँ बनाने और पूजने की। अब श्रीकृष्ण और राधिका के अनेक प्रकार के प्रेममय और विलासपूर्ण चित्र रखने की आवश्यकता नहीं है। अब संसार को हर प्रकार से असार समझने वाले संन्यास-मार्ग के निर्माणकर्ताओं की शान्तिमयी प्रतिमाएँ बनाने का समय नहीं है। अब तो भारत को उन देवताओं को अपना आदर्श और पूज्य बनाने की ज़रूरत है, जो भारत को स्वतन्त्र होने में उत्साह उत्पन्न करें।

यह युग राष्ट्रीयता का युग है, यह काल अनुचित बन्धनों को तोड़ डालने का है। पराधीन जाति को तो आर्ट-लिट्रेचर आदि को स्थगित करके अपने शारीरिक और नैतिक बल की वृद्धि करनी पड़ती है। आत्म-बल का उस समय केवल उसी सीमा तक प्रयोग होता है कि जिस सीमा तक उस समाज को स्वाधीन होने के लिए बलिदान और निर्मोहता की आवश्यकता है; उसका ध्येय स्वतन्त्रता-प्राप्ति ही है। इस राष्ट्रीयता के युग में एक नया मत, नया मार्ग साबरमती के ऋषि ने निकाला है "अहिंसामय युद्ध"। अब तक युद्ध के लिए हिंसा का ही अवलम्बन होता आया था। यद्यपि यह एक नया ही प्रयोग है, पर इस साइन्स और पशुबल के युग में यही एक धर्म संसार से अशान्ति, युद्ध और असमता का अन्त कर सकता है। इस धर्म में शारीरिक, नैतिक और आत्मिक तीनों शक्तियों को एकत्र कर दिया गया है। इस मत में कर्म-योग का उपदेश व आदेश दिया गया है। यह तैंतीस कोटि निःशस्त्र पराधीन जनता को स्वाधीन और संसार को शान्ति के मार्ग पर चलने के योग्य बनाएगा। साइन्स के भयानक आविष्कार और "Imperialism' की शान्त न होनेवाली अग्नि को यह ही वश में रक्खेगा। विश्व-प्रसिद्ध-तत्ववेत्ता इन्स्टन ने भी अभी यह कहा है कि "साइन्स की अन्तिम उपयोगिता तभी निर्धारित होगी जब उसको आत्म-बल का सहायक बनाया जायगा।" इस नए धर्म की बुनियाद यद्यपि प्रेम पर है, परन्तु इसमें शारीरिक बल, नैतिक बल तथा आत्मिक बल का समानुपातिक मर्यादा से सङ्गठन किया गया है। इससे पशुबल का ह्रास और मनुष्य-बल का विकास होगा। साबरमती के ऋषि ने जिस शक्ति और जिस मार्ग को आदर्श बताया है, उसी को अपने जीवन का अङ्ग बनाने ही में हमारा आधिभौतिक और आध्यात्मिक कल्याण है। बस जिस देश, जाति तथा व्यक्ति को जीवित, स्वतन्त्र और उन्नत रहना है, उसे शक्ति का सच्चा उपासक बनना पड़ेगा।

—हज़ारीलाल जैन

* * *

स्त्री-सामुद्रिक

भारतीय सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार स्त्रियों के कुछ शुभाशुभ लक्षण इस प्रकार हैं :—

१—जिस स्त्री के पैर चिकने, ऊँचे, आगे से पतले और लाल रङ्ग के नाख़ून वाले हों, समान सुन्दर मांस में छिपे हुए टखने हों, अँगुलियाँ आपस में मिली हुई हों और तलुए लाल कमल के समान रङ्ग वाले हों, वह स्त्री सौभाग्यवती तथा भाग्यशीला होती है।

२—जिस स्त्री के पैरों में मछली, अङ्कुश, कमल, जौ, वज्र, हल तथा खड्ग के आकार-प्रकार की रेखाएँ हों तथा जिसे पसीना न आता हो, वह स्त्री शुभ लक्षणयुक्त होती हो।

३—रोमरहित, जिन पर नसें और नाड़ियाँ न दिखाई पड़ती हों, जिसके दोनों घुटने समान हों, जङ्घाएँ हाथी की सूँड़ के समान पुष्ट, कटि के ऊपर का भाग विस्तृत तथा कछुए की पीठ के समान उठा हुआ हो, ऐसी स्त्री जिसके घर में हो वहाँ सुख-सम्पत्ति का निवास होता है।

४—जिस स्त्री के नितम्ब विस्तीर्ण, मांस से पुष्ट और भारी हों, नाभि गम्भीर तथा फैली हुई और दक्षिण भाग की ओर झुकी हो, वह शुभ लक्षणयुक्त होती है।

५—जिस स्त्री का उदर-भाग त्रिवली (तीन रेखा) से युक्त और रोमरहित हो, जिसके दोनों स्तन गोल, पुष्ट, समान और कठोर हों, छाती रोमरहित और कोमल हो एवं कण्ठ शङ्ख समान तीन रेखाओं से युक्त हो, वह स्त्री सुख-सम्पत्ति बढ़ाने वाली होती है।

६—जिसके होंठ समान, सुन्दर तथा लाल रङ्ग के हों, वह स्त्री ऐश्वर्यशालिनी होती है और जिसके दाँत छोटे, चमकदार और स्वच्छ होते हैं, वह स्त्री उत्तम होती है।

७—जिसकी भौहें मिली हों वह अशुभ, और जिसकी भौहें न अधिक लम्बी, न चौड़ी, बाल-चन्द्रमा के समान आकार वाली हों, उस स्त्री को श्रेष्ठ गुण-सम्पन्न समझना चाहिए।

८—अर्द्धचन्द्राकार—न ऊँचा हो न नीचा—सम ललाट शुभ होता है। अधिक ऊँचे ललाट वाली स्त्री व्यभिचारिणी अथवा पति के लिए अमङ्गलकारिणी होती है।



मिसेज़ एलेक्ज़ेण्डर

आप जयपुर के महिला-मण्डल की सभानेत्री और जयपुर स्टेट गर्ल-गाइड्स की कमिश्नर हैं। भारतीय महिला-समाज के उन्नति-सम्बन्धी कामों में आप विशेष भाग लेती हैं।

९—जिस स्त्री के पैर की कनिष्ठका अथवा अनामिका अङ्गुली ज़मीन से ऊँची रहे और इसी प्रकार तर्जनी ज़्यादा लम्बी हो, वह व्यभिचारिणी तथा पापिनी होती है।

१०—छोटी गर्दन वाली स्त्री दुखी रहती है, बड़ी लम्बी गर्दन वाली कुल-क्षयकारिणी और मोटी गर्दन वाली क्रूर स्वभावा होती है।

११—जिस स्त्री की जङ्घाएँ ऊपर की ओर तनी हुई पिण्डलियों से युक्त, नस-नाड़ियों से व्याप्त, सूखी अथवा ख़ूब मोटी, बालदार, रोम बाईं ओर मुड़े हों तथा पेट घड़े सरीखा हो वह स्त्री दुखदायिनी होती है।

१२—जिस स्त्री की आँखें पीली, काली, चञ्चल, और ऊँची-नीची हों वह चरित्रहीना होती है।

१३—जिसका ललाट लम्बा हो वह देवर-घातिनी, जिसका पेट लम्बा हो वह श्वसुर-घातिनी और जिसके नितम्ब लम्बे हों वह पति-घातिनी होती है।

१४—जिस स्त्री का ऊपरी होंठ बहु रोमयुक्त हो और जो बहुत ही लम्बी हो, वह पति के लिए अशुभ होती है।

१५—जिस स्त्री के स्तनों पर रोम हों, और वे मलिन तथा उत्कट हों, इसी प्रकार कान छोटे-बड़े हों वह स्त्री क्लेशदायिनी होती है।

१६—जिसके दाँत चौड़े, बड़े, कराल तथा विषम हों वह क्लेशदायिनी होती है। और जिसके मसूढ़े काले हों वह चोरी करती है।

१७—जिसके ऊपर का होंठ ऊँचा और केशों का सिरा रूखा हो वह कलहा होती है।

—गणेशदत्त शर्मा गौड़, 'इन्द्र'

* * *

कान्यकुब्जों में सहभोज्यता

अन्धकार के कूप में पड़े हुए कान्यकुब्ज-समाज में जिन-जिन सुधारों की आवश्यकता है, उनमें सहभोज्यता सब से मुख्य है। यदि खान-पान के भेद-भाव का दूषित रोग इस समाज में न रहे, तो बीघा-बिस्वा, ऊँच-नीच का भेदभाव और असमानता सहज ही में नष्ट हो जाय। उस समय जाति में घोर क्रान्ति फैल जाएगी। इसलिए कान्यकुब्ज-समाज में सह-भोज्यता का आन्दोलन ज़ोरों से चलाने की अत्यन्त आवश्यकता है। इस खान-पान के भेद के मिट जाने से बालक और बालिकाएँ दोनों को सुख प्राप्त होगा। योग्य कन्याओं से योग्य लड़कों का विवाह हुआ करेगा और तब यह ठहरौनी की दूषित प्रथा भी न रह सकेगी।

समय के फेर से इस गिरे हुए समाज में भी युवाकों की आँखें खुली हैं। आज विलायत जाने वाले युवक उतनी घृणा से नहीं देखे जाते, जितने किसी समय देखे जाते थे। आज विधवा-विवाह करने वाले युवक के साथ भी खान-पान करने में समाज का वह दूषित भाव नहीं रहा है। पर युवाओं की यह प्रकृति अत्यन्त धीमी है। बड़े-बड़े शहरों में कान्यकुब्ज युवा और वृद्ध—साढ़े छः घर और पाँच घर के—नए और पुराने सभी बाज़ारों में पूरियाँ ही नहीं खाते हैं, दाल-भात और शाक तक खाते हैं। इतना ही नहीं; खाद्य-अखाद्य सभी खा जाते हैं। सेना में भर्ती हुए कान्यकुब्ज क्या करते हैं? विलायत में पढ़ने वाले कान्यकुब्ज क्या करते हैं? क्या वे चौका देकर हाथ से रोटियाँ बनाते हैं? कदापि नहीं; वे तो बड़े मज़े से होटलों की चपातियाँ, बिस्कुट और डबल रोटियाँ खाते हैं। यह सब बड़े ज़ोरों से हो रहा है। पर जब ये ही लोग समाज में बैठते हैं, तब दूध के धोए हुए बन जाते हैं। ऐसे भोले मालूम पड़ते हैं कि वे अभी आश्रम से चले आ रहे हैं। बड़ी नीचता से सहभोज्यता का विरोध करते हैं, और यदि शर्मा-शर्मी से प्रस्ताव के पक्ष में भी हाथ उठाते हैं, तो इतना नैतिक साहस नहीं होता है कि खुल्लमखुल्ला खाने जावें। इस नीचता की भी कोई हद है? वे यह नहीं जानते हैं कि बीसवीं शताब्दी के इस वैज्ञानिक युग में सारी जातियाँ कहाँ जा रही हैं, और कान्यकुब्ज-समाज कितना पिछड़ गया है। उसके युवक आज भी बम्बई और कलकत्ता में दस-पाँच रुपए की नौकरी करते हैं। जो दो-चार युवक पढ़ जाते हैं, वे भी अपनी सामाजिक त्रुटियों के कारण अध्यापकी आदि ही करके अपना बसर करते हैं।

पर समाज इतना निर्लज्ज है कि टस से मस नहीं होता। अनेक बार सभाओं में सहभोज्यता हटाने के प्रस्ताव पास हुए; पर उसे व्यावहारिक रूप में लाने के समय ये धर्मध्वजी खीसें निकालने लगते हैं। हम अपने पाठकों को अपने यहाँ का हाल बतलावेंगे कि धर्मध्वजी कान्यकुब्ज प्रस्तावों की कितनी छीछालेदर

करते हैं। गोपाचल पर्वत के प्रसिद्ध लश्कर नगर में कान्यकुब्जों का प्रभावशाली दल रहता है। एक बार इन धर्म-प्राणों ने यह प्रस्ताव पास किया कि पारस्परिक खान-पान जारी किया जाय। परिणाम-स्वरूप हवा से बातें करने वाले एक तिवारी जी के यहाँ एक कथा हुई। गर्मी के दिन थे। इस कथा में तीनों नगर के कान्यकुब्ज सम्मिलित हुए। अपनी-अपनी सवारियों पर सब आए। कोई ताँगे पर आए, कोई घोड़े पर चढ़ कर आए, कोई साइकिल दौड़ाते आए और कोई बेचारे पैदल ही आए। ज़ोरों से 'नमस्कार-नमस्कार' हुआ। सब छत पर बिठलाए गए। फिर सूत सौनकादि ऋषि का सम्वाद छिड़ा। लकड़हारे और सेठ जी का क़िस्सा समाप्त होते ही सत्यदेव की कथा का पाँचवाँ अध्याय भी समाप्त हुआ। फिर तो बजने लगे घण्टे और घड़ियाल। भगवान की आरती होने लगी। थालों में नैवेद्य आया, और लोग एक-एक हाथ में दो-दो दोने लेने लगे। ख़ूब पञ्चामृत और प्रसाद उड़ा। फिर दलीलें होने लगीं, पञ्जीरी के सम्बन्ध में। कोई कहने लगा कि वह कूटू के आटे की है, कोई कहता कि वह धनिया की है। ख़ूब बहस होने लगी। इतने में एक युवक ने बतलाया कि वह तो गेहूँ के आटे की है। तब तो लोगों का चेहरा फ़क़ हो गया। घबड़ाने लगे। धार्मिक दलीलें पेश हुईं। तब यह ठहरा कि भगवान का प्रसाद है, उसका अनादर नहीं करना चाहिए, नहीं तो 'कलावती' और उसके घर वालों की तरह हमारी-तुम्हारी भी हालत होगी। इसके उपरान्त भोजन की बारी आई। छत पर का फ़र्श उठा कर ज़मीन पर छिड़काव हुआ।



श्री० जगन्नाथ राव

आप कोकोनाडा के 'लॉरेन्स स्कूल' के अध्यापक हैं, जो हाल ही में बनारस में होने वाले अखिल भारतीय अध्यापक टेनिस टूर्नामेण्ट में प्रथम हुए हैं। इस खेल में आपको कई उत्तमोत्तम पदक प्राप्त हो चुके हैं।

'चाँद' की कराची-कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



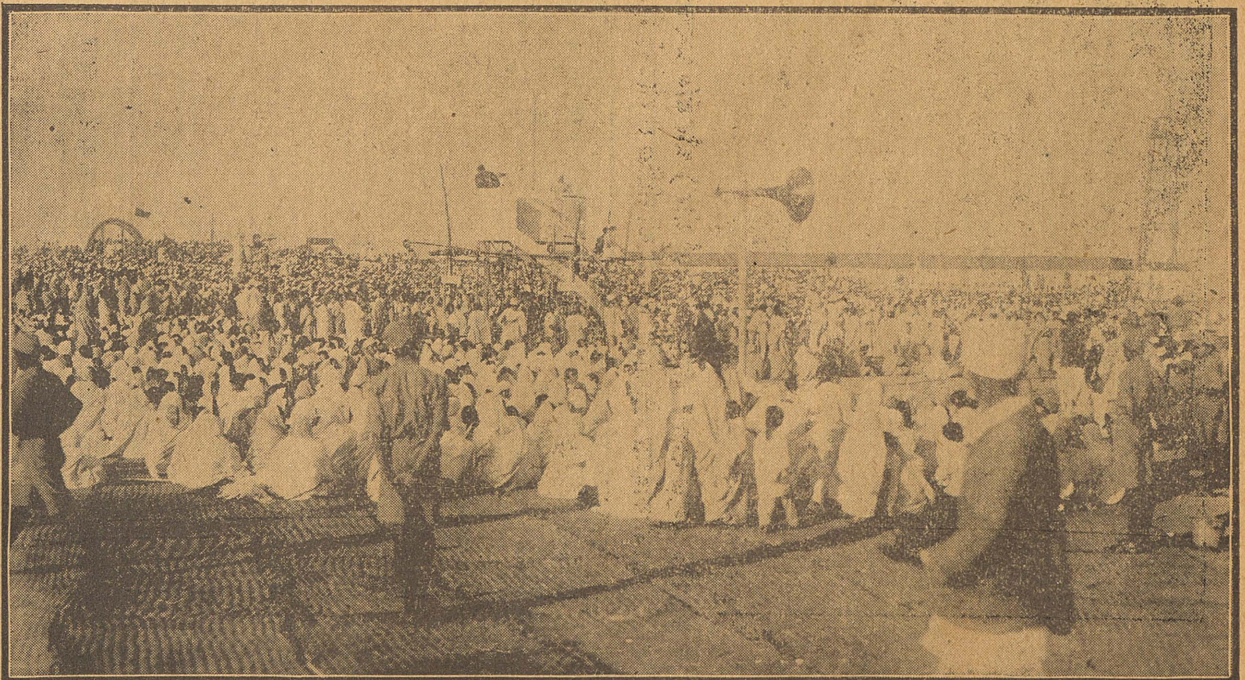
राष्ट्रपति सरदार पटेल

कराची कॉङ्ग्रेस में भारतीयता का उत्सव के समय लोगों के अभिवादनों का उत्तर दे रहे हैं।



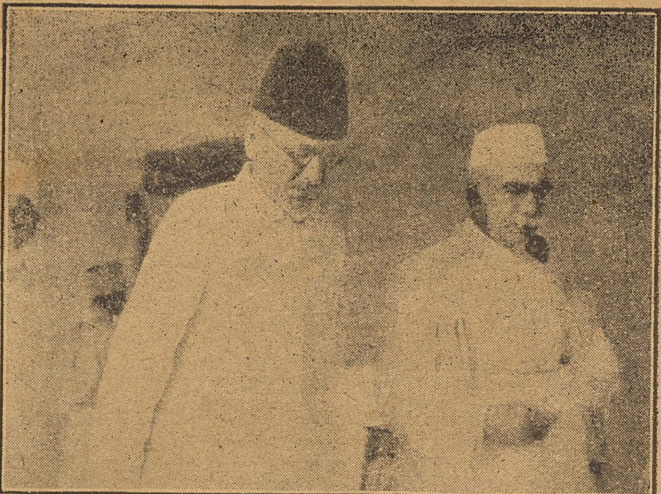
महात्मा गाँधी

गत २६ मार्च को कॉङ्ग्रेस-मञ्च से भाषण देते हुए।

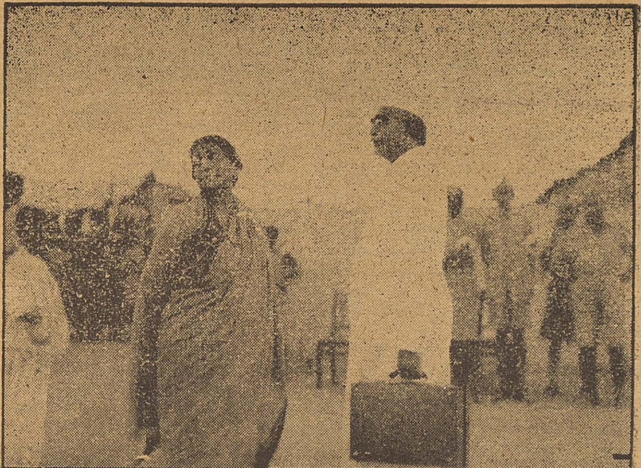


कराची कॉङ्ग्रेस-पण्डाल

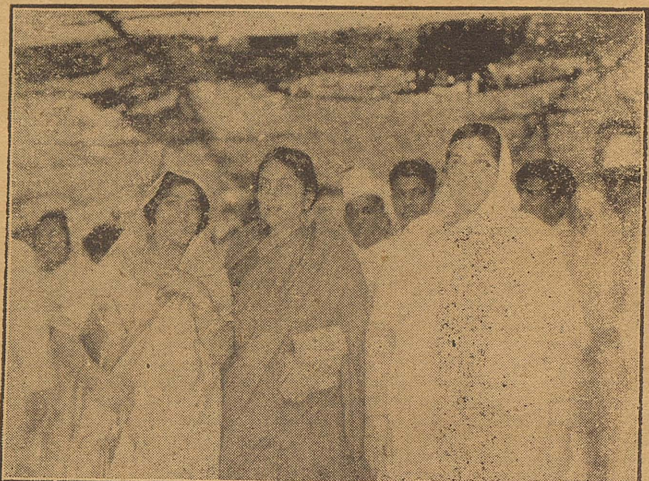
यह दृश्य गत २६ मार्च का है, जिस समय महात्मा गाँधी आदि ने भाषण दिया था।



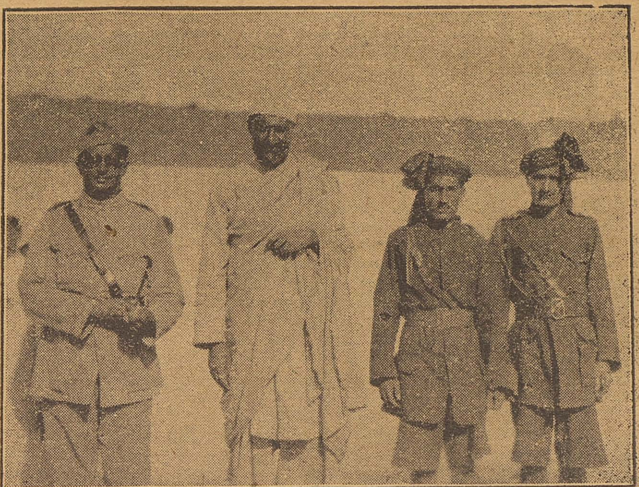
मौ० अब्दुल कलाम आज़ाद (बाईं ओर) और डॉ० अन्सारी, कराची कॉङ्ग्रेस की वर्किङ्ग कमिटी की मीटिङ्ग से लौट रहे हैं।



श्रीमती सरोजिनी नायडू (बाईं ओर) और डॉ० अन्सारी राष्ट्रपति के केम्प में खड़े-खड़े बातचीत कर रहे हैं।

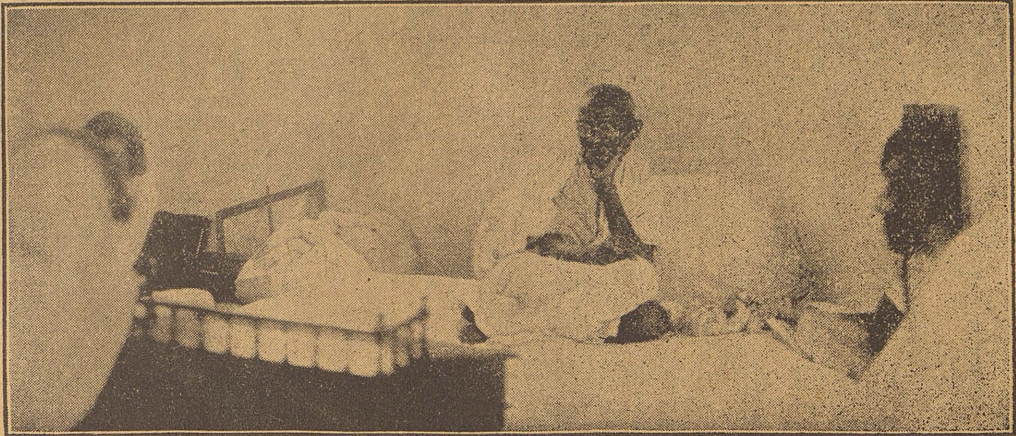


श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय (मध्य में) तथा अन्यान्य कॉङ्ग्रेस-कर्मी महिलाएँ।



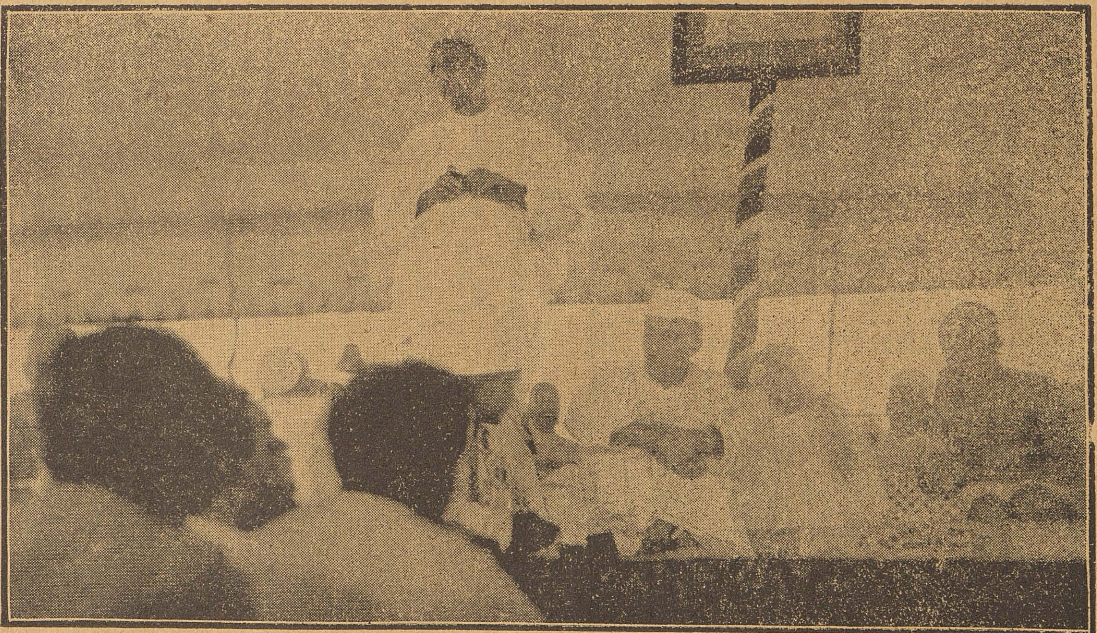
ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ—सीमा-प्रान्त के गाँधी—अपने लालकुर्ती-दल के कई स्वयंसेवकों के साथ, कराची कॉङ्ग्रेस-पण्डाल से लौट रहे हैं।

'चाँद' की कराची-कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



महात्मा गाँधी

कराची हरचन्दराय नगर की झोंपड़ी में बैठे हुए बातें कर रहे हैं।

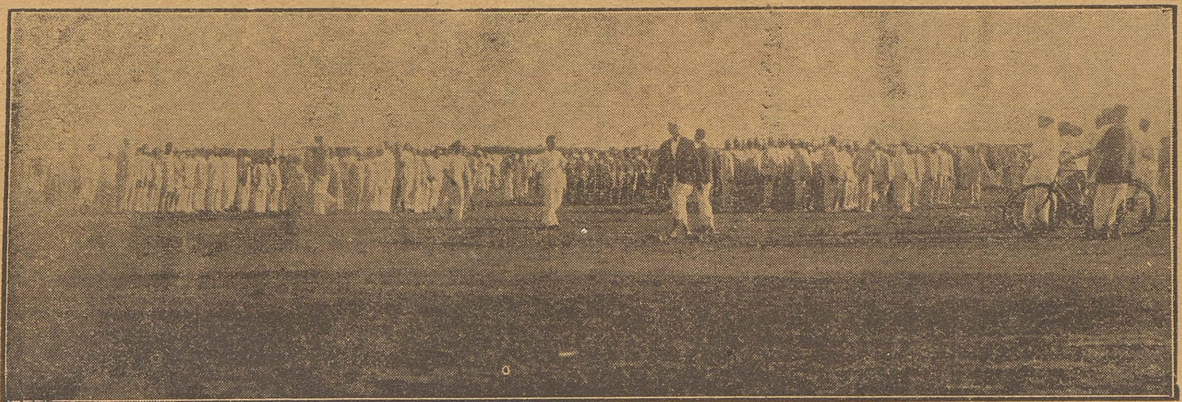


राष्ट्रपति सरदार पटेल

कराची कॉङ्ग्रेस की विषय-निर्वाचिनी समिति में भाषण कर रहे हैं।



कराची के गाँधी-हस्पताल के निस्स्वार्थ कार्यकर्ताओं का ग्रूप; जिन्होंने राष्ट्रीय युद्ध में देशवासियों की प्रशंसनीय सेवा की है। हस्पताल रात-दिन खुला रहता था और इस हस्पताल की मोटरें घायलों की तलाश में घूमा करती थीं। पुलिस द्वारा की जाने वाली प्रत्येक लट्ठबाज़ी के अवसर पर हस्पताल की मोटरें सामने खड़ी पाई जाती थीं।



कराची काँङ्ग्रेस के कुछ स्वयंसेवकों की टोली, जिन्होंने काँङ्ग्रेस-नगर में पुलिस और फ़ौज का काम बड़ी योग्यता से किया था। सरकारी पुलिस तथा फ़ौज के किसी भी कर्मचारी को काँङ्ग्रेस के हाते में फटकने तक नहीं दिया गया था।

'चाँद' की कराची-कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



लालकुर्ती-दल

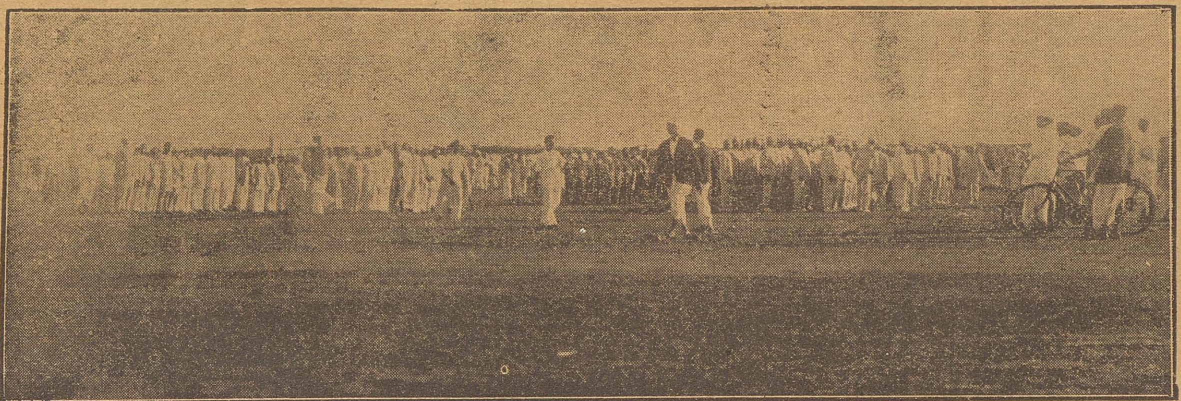
यह दृश्य उस समय का है, जब कि लालकुर्ती-दल के युवकों ने मलीर नाम के स्टेशन पर सरदार भगतसिंह की फाँसी से विक्षुब्ध होकर महात्मा गाँधी के विरुद्ध एक प्रदर्शन किया था।



सीमा-प्रान्त के गाँधी के ख़ुदाई फ़ौजदार-दल के कुछ अफ़सर



कराची के गाँधी-हस्पताल के निस्स्वार्थ कार्यकर्ताओं का ग्रूप; जिन्होंने राष्ट्रीय युद्ध में देशवासियों की प्रशंसनीय सेवा की है। हस्पताल रात-दिन खुला रहता था और इस हस्पताल की मोटरें घायलों की तलाश में घूमा करती थीं। पुलिस द्वारा की जाने वाली प्रत्येक लट्ठबाज़ी के अवसर पर हस्पताल की मोटरें सामने खड़ी पाई जाती थीं।



कराची कॉङ्ग्रेस के कुछ स्वयंसेवकों की टोली, जिन्होंने कॉङ्ग्रेस-नगर में पुलिस और फ़ौज का काम बड़ी योग्यता से किया था। सरकारी पुलिस तथा फ़ौज के किसी भी कर्मचारी को कॉङ्ग्रेस के हाते में फटकने तक नहीं दिया गया था।

'चाँद' की कराची-कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



लालकुर्ती-दल

यह दृश्य उस समय का है, जब कि लालकुर्ती-दल के युवकों ने मलीर नाम के स्टेशन पर सरदार भगतसिंह की फाँसी से विक्षुब्ध होकर महात्मा गाँधी के विरुद्ध एक प्रदर्शन किया था।

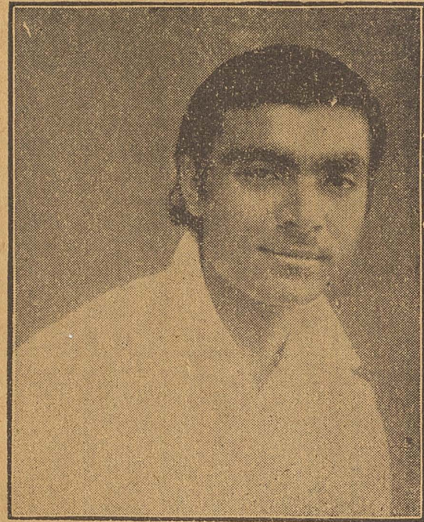


सीमा-प्रान्त के गाँधी के ख़ुदाई फ़ौजदार-दल के कुछ अफ़सर

'चाँद' की कराची-कॉङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



करांची में होने वाले जमायतुल-उलेमा परिषद की स्वागतकारिणी सभा के दो प्रधान-मन्त्रियों में से एक—श्री० हाफ़िज़ शरीफ़ हुसेन—आप इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स, जर्मनी, इटली आदि देशों का भ्रमण करके हाल ही में लौटे हैं। अब आपका 'पास पोर्ट' ज़ब्त कर लिया गया है। अब आप भारत के बाहर नहीं जा सकते।



कराची कॉङ्ग्रेस के अवसर पर अखिल भारतवर्षीय शिशु-सम्मेलन का आयोजन करने वाले—श्री० सेवक बी० मोतवानी—जिसका अधिवेशन श्रीमती कमला देवी [चट्टोपाध्याय की अध्यक्षता] में हुआ था।



कराची कॉङ्ग्रेस में सारे नेताओं को ठहराने का प्रबन्ध ख़ेमों में ही किया गया था—इस चित्र में पाठक उन्हीं तम्बुओं का मनोहर दृश्य देखेंगे।

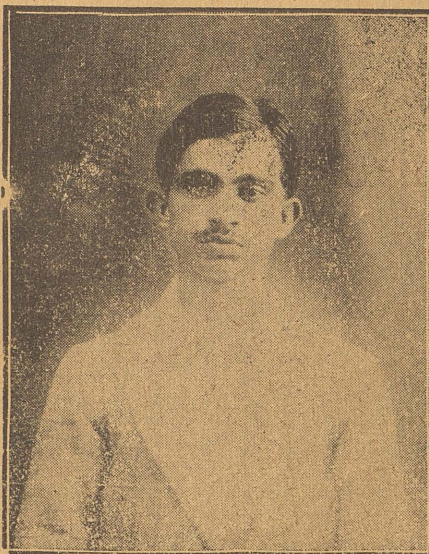
'चाँद' की कराची-काँङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



अखिल भारतवर्षीय नौजवान सभा के उत्साही कोषाध्यक्ष—श्री० चिरौंजीलाल जी—जिसका अधिवेशन हाल ही में कराची में हुआ था।



कराची में होने वाली 'ज़ात-पाँत-तोड़क-मण्डल' परिषद के सभापति और कराची के उत्साही राष्ट्रीय कार्यकर्ता—श्री० अमोलकराम साहनी, एम० ए०



अखिल भारतवर्षीय नौजवान सभा के स्वागत-कारिणी समिति के मन्त्री—श्री० खिल्लूमल टी० गुरनानी—जिसका अधिवेशन कराची में हुआ था।



कराची कॉङ्ग्रेस के अवसर पर होने वाले मुस्लिम शिक्षा कॉन्फ्रेन्स के प्रधान-मन्त्री—ख़ान बहादुर वलीमोहम्मद हसन अली।

'चाँद' की कराची-काँङ्ग्रेस सम्बन्धी चित्रावली का एक पृष्ठ



कराची का वह विशाल भवन, जिसमें अखिल भारतवर्षीय नौजवान सभा की स्वागतकारिणी सभा का कार्यालय था और काँङ्ग्रेस के साथ ही कराची में जिसका महान अधिवेशन हुआ था।



कराची कॉङ्ग्रेस के कुछ नए स्वयंसेवक, जिन्हें क़वायद की शिक्षा दी जा रही है।

कपड़े उतारने का हुक्म हुआ। तब सब कहने लगे कि तुम उतारो ये उतारें और वह उतारें। एक कहने लगा कि मुरार वाले उतारें, तो हम उतारें, उन्होंने कहा कि साढ़े छः घर वाले उतारें, तो हम उतारें। इस कपड़े उतरने में ही घण्टों लग गए। जैसे-तैसे कालीमाई के प्रसाद के सौभाग्य वाले एक बाला के शुक्ल—बड़े पुराने ख़ान्दान वाले ने कपड़े उतारे। बस फिर क्या था, कपड़े उतरने लगे। साढ़े छः घर वालों ने उतारे, छः घर वालों ने उतारे और पञ्चादरों ने भी उतारे। पैर धुलने लगे और लोग बाक़ायदा बैठने लगे। सामने पत्तलें आईं और तुरन्त ही साग परोसा गया। यह देख कर लोग घबड़ा गए, कि यह साग कैसे परोसा गया? तब कई महाशयों ने कहा कि सेंधानमक का बना हुआ साग है, जिससे कलाकन्द और दही अच्छी तरह से खाया जा सके। इसीलिए यह साग आया है। थोड़ी देर में गुझियाँ आईं, मोतीचूर के लड्डू, हलुआ और पूड़ियाँ आदि सब कुछ आया। 'लक्ष्मी नारायण' होना ही चाहता था कि एक आफ़त आ धमकी। 'हवा से बातें करने वाले' तिवारी महाशय पकवान-गृह में थे। उन्हें इस गीदड़पन का कुछ पता न था। इतने में गङ्गा-से प्रवाह वाले एक मिश्र जी उठे और कहने लगे कि मुझे लघुशङ्का लगी है। वे छत के ज़ीने पर चढ़ गए। यहाँ तिवारी जी के आदमियों ने लोगों से 'लक्ष्मी-नारायण' करने को कहा। लोगों ने मिश्र जी को पुकारा तो वे ऊपर से खाँसने लगे। इतनी ही ख़ैर थी कि न तो उनके पेट में दर्द उठा था और न



डेनमार्क की राजकुमारी एलेक्ज़ेण्डरिन लूइस और युवराज गॉर्म

राजवंश के नियमानुसार राजकुमारी पुस्तकों की जिल्दबन्दी तथा राजकुमार लकड़ी का काम सीख रहे हैं।

बुख़ार ही आया था। छत पर एक गुल खिलाने वाले मेजर चारपाई पर पड़े हुए थे। उन्होंने मिश्र जी से बड़े मिठास शब्दों में कहा—यह आनाकानी कैसी ? उन्होंने कहा कि हम तो साढ़े छः घर वाले हैं। हमसे कहा गया था कि कलाकन्द और मिठाई खिलाई जाएगी। मगर हमें यहाँ बुला कर धोखा दिया गया। हमारा तो धर्म ही भ्रष्ट हो जायगा। तब मेजर साहब उन्हें समझाने लगे, परन्तु वे बातों में आने वाले न थे। यह देख कर उन्होंने धमकी दी, फ़ौजी डाँट बताई। मिश्र जी के तो होश गुम होने लगे। उन्होंने इन्हें हाथ पकड़ कर नीचे उतारा। दुबले-पतले तो थे ही, बेचारे उतर आए। मेजर साहब बड़े ज़बर्दस्त जवान थे, वे दो-चार को तो कुछ नहीं समझते थे। इसलिए उनकी डाँट काम दे गई। नीचे आकर उन्होंने सब लोगों से कहा कि जल्दी से 'लक्ष्मी-नारायण' करो। बस लोग सिट्ट-पिट्ट हो गए और होने लगा लक्ष्मी-नारायण। माल की सफ़ाई होने लगी। जब मेजर साहब कमरे के ऊपर चढ़ गए, तब आवाज़ें आने लगीं। कोई कहने लगा कि साग अच्छा है, तो कोई कहने लगा, बुकनी बड़ी अच्छी है और कोई कहता था कि जल मीठा है—खारा नहीं है। पेट भरने पर लोग एक दूसरे की ओर ताकने लगे। भोजन ख़तम हुआ और लोगों ने हाथ-पैर धोए, पान खाया और कपड़े-जूते पहन कर ज़ीने से नीचे उतरे। यहाँ मुहल्लेवार टोलियाँ बनने लगीं। चलते-चलते रास्ते में शङ्का-समाधान होने लगा। किसी ने कहा कि लोग पूछेंगे तो क्या कहोगे ? तब कुछ लोगों ने कहा कि हमने तो खाया ही नहीं, सिर्फ़ बुकनी चीखते रहे। कोई कहने लगा कि हमने तो तरकारी खाई, और कोई कहने लगा कि मैंने तो बैठे-बैठे ठण्डा पानी पिया है। आपस में ख़ूब विवाद होने लगा। युवकों में से एक कहने लगा कि तुमने पूड़ियाँ खाईं। इस पर दूसरे ने कहा, इनके आगे तो पूड़ियाँ रही ही नहीं थीं। इस प्रकार लड़ते-लड़ाते एक पीपल के वृक्ष के नीचे पहुँचे। वहाँ एक सज्जन ने कहा कि इन मिथ्या बातों में कुछ नहीं रक्खा है, सब ने अच्छी तरह से भोजन किया है। मगर शहर में लोग पूछें तो कह देना कि हमने तो दही और कलाकन्द खाया है, और कोई चीज़ नहीं खाई। ज़्यादा बतलाने की ज़रूरत ही क्या है ? इतने में एक युवक ने चिल्लाते हुए कहा कि मैं तो शहर में सब से साफ़-साफ़ कह दूँगा कि लोगों ने पूड़ियाँ खाई हैं। लोग बनियों की पूड़ियाँ-कचौड़ियाँ और दही-बड़े खाते हैं, तो धर्म बना रहता है। लुक-छिप कर खाने में तो धर्म क़ायम रहता है और एक कान्यकुब्ज के यहाँ खाने में धर्म चला जाता है !!

आश्चर्य तो यह है कि वे लोग भी खुले तौर पर खाने की हिम्मत नहीं करते, जो साढ़े छः व छः तथा पाँच घर के भी नहीं हैं, बल्कि धन के प्रभाव से या किसी अन्य प्रसङ्ग से कान्यकुब्ज बन गए हैं। ऐसी कादरता और नपुंसकता सभी जगह है। इसी से ब्रिटिश आर्मी से कान्यकुब्ज मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दिए गए। अन्यथा इण्डियन आर्मी में कान्यकुब्जों की कई पलटनें और बेड़े थे। ग्वालियर में भी कान्यकुब्जों से रिसाले और पल्टनें भरी पड़ी थीं। मगर इस छुआ-छूत के भूत के कारण ही वहाँ से भी उन्हें हटाया गया। अब तो बहुत थोड़े लोग रह गए। कान्यकुब्ज-सभा के एक अधिवेशन के अवसर पर ग्वालियर आर्मी के मेम्बर श्रीमान राजवाड़े साहब ने यह कहा था कि जिस त्रुटि के कारण कान्यकुब्ज ब्राह्मणों ने अपने को इतना गिराया है, यदि वह खान-पान जारी कर दें तो वे संसार में मनुष्यों की तरह रहने लायक़ बन जायँ। इस बीच में यहाँ ही नहीं, ब्रिटिश भारत के कान्यकुब्जों में भी यह उत्कण्ठा उत्पन्न हुई कि इण्डियन आर्मी के कमाण्डर-इन-चीफ़ से यह कहा जाय कि इण्डियन आर्मी में कान्यकुब्जों की जो भर्ती रोक दी गई है, वह फिर से जारी कर दी जाय। महती सभा के फ़तहपुर के अधिवेशन में इस आशय का एक प्रस्ताव भी पास हुआ कि शीघ्र ही कमाण्डर-इन-चीफ़ की सेवा में कान्यकुब्जों का एक डेपुटेशन भेजा जाय। यहाँ के कान्यकुब्ज भी फूले नहीं समाए, क्योंकि यहाँ के बहुत से लोग फ़ौज के हैं। वे भी यहाँ के अधिवेशन में ख़ूब दिलचस्पी से सम्मिलित होते हैं। इस अधिवेशन में भी फ़तहपुर की तरह एक प्रस्ताव पास हुआ और डेपुटेशन को यथाशक्ति सहायता देना निश्चित हुआ। प्रस्ताव की बहस में एक महाशय ने यह संशोधन पेश किया कि यह घोषित कर दिया जाय कि यह सभा खान-पान की रुकावट को तोड़ चुकी है। इन महाशय का समर्थन भी हुआ। फ़ौजी भाइयों ने ज़ोरों से ताईद की। प्रस्ताव

अत्यधिक बहुमत से पास हो गया। उसी समय अगले वर्ष के लिए निर्वाचित नए सभापति ने यह घोषणा की कि आपने मुझे आज बड़ा आदर प्रदान किया है। अपने प्रस्ताव को अमली रूप देने के लिए मुझ अकिञ्चन के ग़रीबख़ाने पर भोजन के लिए आप सब भाई पधारिएगा। उसी समय सभा का आनन्द जाता रहा। अनेकों ने तो कहा कि हमने विरोध के हाथ उठाया था। ख़ैर दूसरे दिन सवेरे अध्यक्ष महाशय ने घोषणा कर देने पर भी सबों के घर पर जा-जाकर निमन्त्रण दिया।

नए अध्यक्ष इङ्गलैण्ड और जर्मनी आदि देशों से भ्रमण कर पी० एच० डी० आदि की उपाधियाँ लेकर अभी लौटे हैं। उन्हें इस जाति के छल-छिद्र का ज़रा भी पता नहीं था। सामाजिक सुधार की व्यावहारिक जानकारी अभी उनमें विशेष नहीं है। पर कान्यकुब्जों में उन जैसे स्थानीय दो-चार विद्वानों को ठुकराने में लोगों को किञ्चित लज्जा नहीं लगती। विद्वान डॉक्टर दुबे ने इस आशय का सूचना-पत्र निकाला था :—

"प्रिय भ्रातृगण,

आप लोगों ने सभा में कल कृपा कर सेवक को सभापति का पद देने का अनुग्रह किया, मैंने आप लोगों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए यह प्रार्थना की थी कि हमारे प्रस्ताव सिर्फ़ काग़ज़ पर ही न रहें, बल्कि कार्य-रूप में परिणत हों। इस पद को प्रदान करने के उपलक्ष में, मैंने आज के लिए सभी सदस्यों को निमन्त्रित किया था। जिसे आपने सहर्ष स्वीकार किया था। और आज रात को आठ बजे आने का वादा किया था। इसलिए, आपसे प्रार्थना है कि आप अपने कान्यकुब्ज इष्ट-मित्रों के साथ पधारने की कृपा करेंगे।

आपका विनीत सेवक,
विद्यासागर दुबे"

जब यह सूचना लोगों के पास आई, तब लोग बहुत घबड़ाए। कुछ लोग कहने लगे कि हम पूड़ियाँ तो खा सकते हैं, पर कच्ची खाने नहीं जायँगे। सभापति जी ने सभा में ही कच्चे भोजन की सूचना दे दी थी। अब सूचना पर दस्तख़त और नोट किए जाने लगे। एक शुक्ल जी ने लिखा :—"I am not prepared to take kachha food at yours if pakka I will अर्थात् मैं आपके यहाँ कच्चा भोजन करने के लिए तैयार नहीं हूँ, यदि पक्का होगा तो खाऊँगा।" इन्हीं शुक्ल जी का एक दीक्षित जी ने भी समर्थन किया। एक दुबे जी के घर के अन्दर से लिखा गया—"घर गए हुए हैं।" एक मिश्र जी ने लिखा—"चूँकि मैं मङ्गल का उपवास कई साल से करता हूँ, इसलिए किसी भी जगह भोजन करने में विवश हूँ।" एक एकाउण्टेण्ट ने लिखा—"मैं चन्द वजूहातों के सबब



श्री० एस० सदानन्द

आप 'फ्री प्रेस' के सर्वस्व हैं। विगत सत्याग्रह आन्दोलन में आपको तीन माह की क़ैद की सज़ा दी गई थी।

से उपस्थित नहीं हो सकता।" एक और महाशय ने लिखा—"मैं कई कारणों से आने में असमर्थ हूँ।" एक दूसरे शुक्ल जी ने लिखा—"मैं मुरेना जाने वाला हूँ, यदि न गया तो अवश्य ही उपस्थित होऊँगा।" एक तीसरे शुक्ल जी ने लिखा—"मैं अपने भाई के साथ आऊँगा, यदि वह दौरे पर न गए।" एक चौथे शुक्ल जी ने लिखा—"कार्यवश उपस्थित होने से लाचार हूँ।" एक दुबे जी ने लिखा—"मेरी तबीयत आज अच्छी नहीं है, इसलिए क्षमा-प्रार्थी हूँ—मैं उपस्थित नहीं हो सकता।"

एक आचार्य शुक्ल जी ने लिखा कि, "मैं इसके लिए क्षमा चाहता हूँ और कल आपसे स्वयं प्रार्थना कर चुका हूँ।" एक तिवारी जी ने लिखा कि "मैं बीमार होने की वजह से 'परहेज़ी' खाना खाता हूँ।" जिन एक महाशय के ज़ोर देने पर खान-पान का प्रस्ताव संशोधन द्वारा पास हुआ था, उन्होंने बड़े मज़े से लिखा—"मैं दर-असल कान्यकुब्ज के हाथ का न खाने का सवाल उठा खिलाई। जो खान-पान का ज़रा भी भेदभाव नहीं रखते हैं, उनकी इस कमज़ोरी का कान्यकुब्ज-समाज पर इतना घातक प्रभाव पड़ा कि उसका कुछ ठिकाना नहीं। सारा भोजन बर्बाद गया और इन पंक्तियों के लेखक के अलावा नए निर्वाचित प्रधान मन्त्री जी और अध्यक्ष केवल तीन मनुष्य खाने के लिए आगे आए। एक दीक्षित जी और आ गए थे। चार मनुष्यों ने वह भोजन



कलकत्ता की कुछ गत सत्याग्रही कार्यकर्त्रियाँ

माला हाथ में लिए अथवा पहिने हुए, बाईं ओर से (१) श्रीमती विमल प्रतिभा बैनर्जी (२) श्रीमती आशालता दास (३) कुमारी शान्ति दास, एम० ए० (४) कुमारी श्रीमनी (५) कुमारी सरस्वती (६) श्रीमती जोगेश्वरी।

चुका हूँ, मगर मैं कई वजह से भोजन करने के लिए मजबूर हूँ। इत्यादि-इत्यादि।" रात के आठ बजे का समय आया, यह आशा थी कि जिन फ़ौज वालों के लिए यह प्रस्ताव पास हुआ है वह तो अवश्य ही आवेंगे। मगर उनमें से बहुत थोड़े और बहुत घबड़ाए हुए आए। और कहने लगे कि हम कच्ची नहीं खाएँगे। यह देख कर सभापति जी ने मिठाई मँगवा कर उन सैनिकों को किया और बाक़ी सारा भोजन बर्बाद गया। इस प्रकार की भीरुता और कादरता यहीं के नहीं, सब स्थानों के कान्यकुब्ज प्रकट करते हैं। ऐसे लोग सभा-सोसाइटियों में रह कर क्या कर सकते हैं और जो इतना नैतिक साहस नहीं रखते उनसे यह आशा कि वे समय के अनुसार चलेंगे और अपने वचनों को भङ्ग न करेंगे। आजकल के ये द्विज-श्रेष्ठ मिथ्या बोलने में ज़रा भी लज्जित नहीं

होते। जिस जाति के युवक इस प्रकार लापरवाही दिखावें, उस जाति को होश में लाने का उपाय भीषण क्रान्ति के सिवा और क्या हो सकता है? और ये सभाएँ तभी सार्थक भी होंगी। आज इस समाज-संहारिणी मनोवृत्ति के कारण कान्यकुब्ज अन्य समाजों में अपनी हँसी और फ़ज़ीहत कराते हैं। इस नीति से समाज कभी फल-फूल नहीं सकता और न कभी सभ्य समाज में मुँह दिखलाने लायक़ ही बन सकता है। हमने जिन सत्य बातों का यहाँ पर वर्णन किया है, वह निन्दनीय प्रवृत्ति केवल कान्यकुब्जों के लिए ही नहीं, हिन्दू-मात्र के लिए लज्जा-जनक है।*

—शालिग्राम दुबे

* लेखक ने कनौजियों के विरोध करने पर भी एक बाल-विधवा से पाणिग्रहण किया है।

—सं० चाँद

जागृति-गीत

[श्री० सोहनलाल जी, द्विवेदी]

(१)

किस सुख की निद्रा में सोते, तम का अञ्चल तान?
जागो, वैभव लुटा तुम्हारा, जागो हुआ विहान!
हृदय शून्य है, अन्धकार है, लुटीं ज्ञान की मणियाँ,
'हाथ-पाँव' में पड़ी हुई हैं, जटिल रूढ़ि की कड़ियाँ!
ऋषियों की सन्तान,
जागो, हुआ विहान।

(२)

कहाँ साधना, कहाँ तपस्या, कहाँ तुम्हारा तेज?
कहाँ तुम्हारी पुण्य-प्रतिष्ठा की वह मधुमय सेज?
मुख की प्रात अरुणिमा पर है सन्ध्या का अँधियाला,
जागो, उजड़ा रम्य तपोवन, बुझी हव्य की ज्वाला!
ऋषियों की सन्तान,
जागो, हुआ विहान।

(३)

कितना गौरवमय, कितना उन्नत, था स्वर्ण अतीत?
मुकुटधारियों पर आश्रम वालों की सन्तत जीत।
यज्ञ-शिखाओं में अङ्कित उज्ज्वल इतिहास तुम्हारा,
जागो, तुममें छिपी हुई है, दिव्य ज्योति की धारा!
ऋषियों की सन्तान,
जागो, हुआ विहान।

(४)

सोने-चाँदी के टुकड़ों पर, बेच रहे हो बाल,
सरस्वती के लाल, पतन की ओर तुम्हारी चाल!
विधवाओं के नयन-नीर से घर का कोना गीला,
जागो, आज तुम्हारे जीवन के सुख का मुख पीला।
ऋषियों की सन्तान,
जागो, हुआ विहान।

(५)

रेखाओं में धर्म, चारु चन्दन में ही है कर्म,
तुम्हें सत्य के आँगन में आते—आती है शर्म।
जागो, जागो, ऐ सदियों के सोए हुए प्रकाश!
एक बार फिर तिमिर-वक्ष पर हो किरणों का रास।
ऋषियों की सन्तान,
जागो, हुआ विहान।

(६)

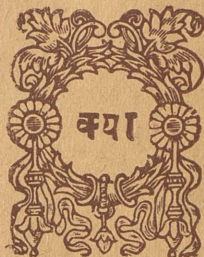
थोड़े से 'जल के किणकों' में थी, वह शक्ति अपार,
चरणों में आ शीश झुकाती थीं, अगणित तलवार।
जागो, जागो, ब्रह्मशक्ति के अधिनायक, हे वीर,
आज तुम्हारी ओर बढ़ रहे हैं, लोहे के तीर।
ऋषियों की सन्तान,
जागो, हुआ विहान।

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह !

["पागल"]

खण्ड ६

४



क्या सचमुच ही मैंने सरोज को देखा ? उसी सरोज को, जो मेरे हृदय में, मेरे ध्यान में, मेरे रोम-रोम में बसी हुई है ; जिस पर मैंने सारी दुनिया न्यौछावर कर रक्खी है ? जिससे मिलने के लिए घर-बार छोड़ कर मैं भागा था ? क्या उसी को देखा ? आह ! विश्वास नहीं होता था। अगर वही थी तो मैं वहाँ बैठा कैसे रह गया—दौड़ कर उसके चरणों से लिपट क्यों नहीं गया ? उसको कलेजे से इस तरह जकड़ क्यों नहीं लिया कि संसार उसे मुझसे फिर पृथक न कर सके ? नहीं-नहीं, वह नहीं हो सकती, यह अवश्य ही मेरे नेत्रों का भ्रम था या कल्पना का उत्पात। मैं बार-बार आँखें मल-मल कर पर्दे की ओर देख रहा था। मगर हाय ! अब वहाँ वह मूर्ति न थी। आँख भर कर देख भी न पाया कि दामिनी की दमक की तरह झलक-चमक कर अलोप हो गई।

बाहर से किसी के आने की आहट मालूम हुई, सर घुमा कर देखा सरकार साहब आ रहे हैं। मैं घबड़ा कर अपने काँपते हुए हाथों से उन्हें पत्र देकर उत्तर पाने की बिना प्रतीक्षा किए हुए चल दिया, क्योंकि दिमाग़ में खलबली और चित्त में घोर अशान्ति मची हुई थी।

यद्यपि मुझे पूर्णरूप से यह विश्वास न हो सका कि मैंने जिसे देखा था वह सरोज ही थी, तथापि अब मैं सरकार साहब के यहाँ जाने के लिए रातोदिन छटपटाया करता था। ईश्वर से यही दोआएँ मनाता था कि कब धर्मावतार साहब मुझे भेजें और कब मैं वहाँ जाऊँ। दो-एक बार मेरी उस कमरे तक फिर पहुँच हुई, मगर अब मैं उस झलक के लिए बराबर तरसता ही रहा। मैं सोचा करता था कि सरोज का ब्याह तो किसी राजा से हुआ था। वह रानी है। उसे किसी राजमहल में होना चाहिए। परन्तु वह सरकार साहब के यहाँ कैसे पहुँची ? क्या यही राजा हैं और यही मकान राजभवन है ? यह दोनों बातें मुझे कुछ असम्भव सी जान पड़ीं। क्योंकि सरकार साहब की उम्र उतार पर थी। रङ्ग-ढङ्ग से मुझे राजा नहीं, बल्कि केवल एक बड़े अफ़सर से प्रतीत होते थे। यह मकान भी बहुत बड़ा था सही, मगर महल सा नहीं जान पड़ता था। तब क्या इनके घराने पर उसकी कुछ ऐसी कृपा है कि वह इनके यहाँ मिलने आई हुई थी ? एकाएक मुझे ख़्याल आया कि कहीं यही तो मैनेजर नहीं हैं, जिनके विषय में मैं काशी में बहुत-कुछ सुन चुका था। यह विचार उठते ही मेरा कलेजा काँप गया और दिल में आग सी लग गई।

अब मैं जब कभी वहाँ जाने पाता था, तब वहाँ कुछ देर अटकने की कोशिश किया करता था। कभी अस्तबल में जाकर जानवरों को थपथपाता था, कभी नौकरों की बातचीत सुनने के लिए उनके पास बैठ जाता था। परन्तु दुर्भाग्यवश जब-जब मैं इस नियत से वहाँ बैठा, तब-तब उन लोगों में उस विषय पर बातें नहीं होती थीं, जो मैं जानना चाहता था। वहाँ लोगों की ज़बान पर सरकार साहब ही की धूम मची रहती थी। राजा या राजभवन का कभी भी प्रसङ्ग नहीं उठता था। उस पर मुसीबत यह हुई कि एक दिन मुझे इस तरह हाते में बैठे देख कर सरकार साहब ने मुझे वहाँ बैठने से मना कर दिया और इशारों में समझाया कि अगर वह मकान पर मौजूद न रहा करें तो उनके आराम-कमरे के बिस्तरे पर तकिए के गिलाफ़ में पत्र रख कर मैं चल दिया करूँ। इसलिए मुझे उस वक्त तक पता न चला कि राजा कौन है और राजभवन कहाँ है। जो पत्र मैं लाया और ले जाया करता था, उनको भी अब भलमनसाहत के नियमों को चूल्हे में झोंक कर चुपके से खोल-खोल कर मैं देखने लगा। मगर उनमें भी मुझे हताश होना पड़ा, क्योंकि वे प्रायः सङ्केत के हर्फ़ों में लिखे होते थे, जिनकी कुञ्जी बिना जाने पढ़ना असम्भव था।

एक दिन अपनी डायरी लिखने के लिए पुराने रजिस्टरों में सादा काग़ज़ ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मुझे डॉक्टर के नाम का बहुत दिनों का लिखा हुआ एक पत्र मिला। यह दारजिलिङ्ग से भेजा गया था और इस पर लिखने वाले का दस्तख़त वैसा ही था जैसा सरकार साहब के पत्रों में अक्सर रहा करता था। इससे जाना कि इसके लिखने वाले वही हैं। मगर यह सङ्केत के हर्फ़ों में न था। यहाँ की बातें मुझे दिन-बदिन रहस्यपूर्ण मालूम होने लगी राय देने की कोशिश की, तो इससे आपको यह न समझना चाहिए कि मैं अपनी टाँग अड़ा कर बराबरी का दावा करता हूँ। नहीं-नहीं, ऐसा कभी हो नहीं सकता। रियासत का इन्तज़ाम मेरे हाथ होने पर भी उसकी बागडोर आप ही के हाथ में है। मेरा काम बस आपके इशारों पर चलना है, कुछ अपनी हुकूमत जताना नहीं। मैंने आपकी राय पर जो अपने विचार लिखे थे, वह महज़ इसी ख़्याल से कि आप डॉक्टर हैं। आपका



श्रीमती कान्ती अवस्थी

आप लखनऊ की सुप्रसिद्ध कार्यकर्त्री हैं। विगत सत्याग्रह आन्दोलन में आप दो बार जेल जा चुकी हैं। यह आपकी दूसरी बार की गिरफ़्तारी का दृश्य है। राष्ट्रीय कार्य के सम्बन्ध में यू० पी० से जेल जाने वाली आप सर्व-प्रथम कान्यकुब्ज रमणी हैं।

थीं, इसलिए भेद की थाह लेने के लिए इन लोगों के पत्र पढ़ने में मुझे अब कुछ सङ्कोच नहीं होता था। और इसे मैं बेधड़क पढ़ने लगा :—

"प्रिय डॉक्टर साहब,

आप मुझसे नाहक़ ख़फ़ा हैं। आप जानते हैं कि मैं हमेशा ही आँख मूँदे आपका हुकुम मानता आया हूँ। अगर इस दफ़े मैंने आपके प्रस्तावों पर कुछ अपनी भी ध्यान इस ओर दिलाने से आप इस मुसीबत को जीतने की शायद कोई डॉक्टरी युक्ति सोच सकें, जिससे यह भेद दूसरों के हाथों में न जाए। ख़ैर, माफ़ कीजिएगा, मुझे मालूम नहीं था कि मानव-प्रकृति की प्रवृत्तियों को बदलने या स्थायी रूप से रोकने का कोई डॉक्टरी इलाज नहीं है। और परवश रोकने में भी बुराई है। क्योंकि तब इनकी व्याकुलता और बढ़ कर अपनी अस-

लियत बिना ज़ाहिर किए नहीं रह सकती। यह सब से बड़ा डर है। बेशक इनको शान्त रखने ही में कुशलता है। इन बातों को जान कर अब तो मैं यही कहूँगा कि जो कुछ आपने सोचा है, वही ठीक है। जवानी से लड़ना अच्छा नहीं है। हाँ, आपका यह भी कहना सच है कि जिसके मुँह में ज़बान ही न हो वह कम्बख़्त किसी से इस भेद का हाल कही क्या सकता है? और उस पर आप यह कहते ही हैं कि जहाँ पैरों में काँटा ज़्यादा चुभने लगेगा वहाँ उसको दूर करने का उपाय डॉक्टरी विद्या में बहुत है। इसलिए कृपया आप मेरी भूलों को क्षमा कीजिए। जो कुछ आप मुनासिब समझें, करें। सब मुझे मञ्ज़ूर है।

जिस काम के लिए ख़ास तौर से हम लोग यहाँ आए थे, वह सकुशल पूरा हो गया। बच्चा मरा हुआ था। मगर अभी रानी माँ चलने-फिरने क़ाबिल नहीं हुई हैं। जाड़ा अब यहाँ ज़्यादा पड़ने लगा। फिर भी उनकी तन्दुरुस्ती की ख़ातिर कुछ दिनों और रुकना पड़ेगा। मगर अब उनकी तबियत दुनिया से उचटी हुई मालूम होती है। कहती हैं, लौट कर अब घर नहीं जाऊँगी। तीर्थ करूँगी और जाकर काशी में रहूँगी। उनके विचारों में यह परिवर्तन जहाँ तक मैं समझता हूँ, इसी घटना से हुआ है। इसके लिए आप क्या हुक्म देते हैं?

हाँ, एक बात पर मैं आपकी राय ख़ास तौर से जानना चाहता हूँ। वह यह है कि बहूरानी अब बहुत सर चढ़ गई हैं। हालाँकि उन्हें आए हुए अभी इतने दिन भी नहीं हुए कि वह इस तरह मुँह खोलें। जब मैं वहाँ था तभी वह कई दफ़े पूछ चुकी थीं कि अन्नदाता जी मेरे पास क्यों नहीं आते। इसका हाल मैंने आपसे कहा भी था और आपने यह सलाह दी थी कि उन्हें अपने प्रेम से अपनाओ और कह दो कि अन्नदाता जी को एक बड़ी ही ख़राब छूत की बीमारी है, जिसका इलाज हो रहा है। मगर अब वह मारे ख़तों के फिर नाक में दम कर रही हैं। इस दफ़े तो उन्होंने बहुत सख़्ती के साथ लिखा है कि आकर अन्नदाता जी को फ़ौरन कलकत्ते से बुलवा लीजिए, तब आप रानी माँ के साथ जहाँ चाहिए तहाँ घूमिए। अब आप ही बताइए ऐसी हालत में क्या करना चाहिए! अगर आप बुरा न मानें तो मैं एक बात कहने की हिम्मत करूँ। वह यह कि अन्नदाता जी की एक शादी और कर दी जाय। इस तरह सौत पाकर बहूरानी का मिज़ाज आप ही ठिकाने लग जाएगा और दूसरे तब यह कहने का मौक़ा भी रहेगा कि वह अपनी



श्रीमती रामस्वरूप देवी

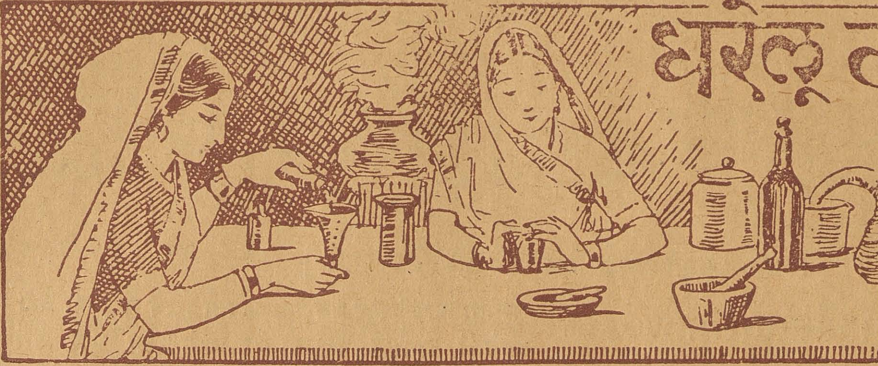
आप आमनौर स्टेट (ज़िला छपरा) के यशस्वी अध्यक्ष श्री० हरिमाधवप्रसाद सिंह जी की धर्मपत्नी हैं, जिन्होंने विगत राष्ट्रीय आन्दोलन में बड़े उत्साह से कार्य किया था। इस समय आप स्त्रियों का सङ्गठन-कार्य बड़े मनोयोग से कर रही हैं।

नई रानी के प्रेम में फँस गए। इनके साथ तो ऐसा ही करना चाहिए। आगे जैसी आपकी राय हो।"

इस पत्र को पढ़ कर तो मैं और चक्कर में पड़ गया। सर-पैर कुछ भी समझ में न आया।

(क्रमशः)

(*Copyright*)



सफ़ेद बाल काला

नीले रङ्ग के बोतल में नारियल के तेल को तीन घण्टे धूप में पका कर लगावे।

* * *

गुहेरी की दवा

छोहारे के बीज को घिस कर लगाने से तत्काल लाभ होता है।

* * *

पेट-दर्द

थोड़ी सी हींग में शक्कर मिला कर गर्म पानी के साथ खावे।

दूसरी विधि

पान के पत्ते के साथ काला नमक और मिर्च गर्म पानी से खावे।

—कुमारी लक्ष्मीदेवी, नबीगञ्ज, छपरा

* * *

बादी बवासीर

मुण्डी और जङ्गी हर्रें का चूर्ण खाना अत्यन्त लाभ-दायक है।

दूसरी विधि

आबदस्त लेने के समय बीच की उँगली को चक्कर देते हुए गुदा में प्रवेश करके मल निकाल दिया जाय। इसको 'गणेश-क्रिया' कहते हैं। अत्यन्त फलप्रद है।

* * *

धातुपात

प्रातःकाल बरगद का दूध बतासे में टपका कर खाने से धातुपात बन्द हो जाता है।

दूसरी विधि

चावल के माँड़ (पसावन) में नमक अथवा मिश्री डाल कर पीने से भी लाभ होता है।

तीसरी विधि

कच्ची तीसी का आटा शक्कर के साथ सेवन करे।

चौथी विधि

मड़ुआ के आटे को घी में भून कर शक्कर मिला कर खाने से भी लाभ होगा।

—चम्पावती देवी, श्रीवास्तव

* * *

कान बहने की दवा

बहते हुए कान को नीम की पत्ती उबाले हुए जल से, दिन में अच्छी तरह धो ले, फिर रात को सोने के समय, उसमें चौकिया सुहागा पीस कर भर दे। इस प्रकार केवल तीन दिन करने से बरसों से बहता हुआ कान बन्द हो जाता है। कान में पीड़ा हो, तो यह दवा नहीं डालनी चाहिए।

* * *

चेचक के दाग़ मिटाना

कच्चे नारियल के पानी से कुछ दिन मुँह धोने से चेचक के दाग़ मिट सकते हैं।

दूसरी विधि

सेमल का काँटा (नए वृक्षों में होता है) गाय के दूध में पीस कर प्रलेप लगाने से चेचक के दाग़ तथा मुहासे आदि अवश्य मिट जाते हैं।

—शुभङ्करी देवी






[श्री० मुन्शी नवजादिकलाल जी श्रीवास्तव]

ईरान का स्वाधीनता-संग्राम

ज़मीने-चमन गुल खिलाती है क्या-क्या,
बदलता है रङ्ग आसमाँ कैसे-कैसे !
न गोरे सिकन्दर, न है क़ब्रे दारा,
मिटे नामियों के निशाँ कैसे-कैसे !!

संसार-चक्र के उलट-फेर तथा उत्थान और पतन के करिश्मे ईरान ने भी ख़ूब ही देखे हैं। एक दिन वह संसार का सभ्य-शिरोमणि देश था। उसके डङ्के से ज़मीन-आसमान गूँज उठते थे। भारत से लेकर एशिया के अन्तिम छोर तक ईरान की सभ्यता की धाक थी। न्याय-निपुण ख़लीफ़ा हारूँरसीद की जन्मभूमि होने का गौरव उसे प्राप्त था। वहीं वह क़ारूँ पैदा हुआ था, जो यक्षराज कुबेर की तरह धनवान था और जिसके ख़ज़ाने की चाबियाँ, कहते हैं, हज़ारों (?) ऊँटों पर लदा करती थीं। ईरान की सभ्यता का इतिहास, उसका प्राचीन साहित्य, महाकवि हाकिम, फ़िरदौसी, शेख़-सादी और उमर ख़य्याम का ललित काव्य-सौरभ आज भी साहित्यिकों तथा इतिहास-प्रेमियों के दिलों में अपूर्व आनन्द का सञ्चार कर देता है। ईरान के गुलो-बुलबुल की हृदयग्राहिनी कहानी, बुतों की बेनियाज़ियाँ, लैला और मजनूँ की प्रेम-कथा, जुलेख़ा के इश्क़ की दास्तान; ईरान की अलौकिक सौन्दर्य-सम्पदा, उसकी शिक्षा-दीक्षा, धर्म और शिल्प-वाणिज्य का इतिहास आज भी हमें आश्चर्य-चकित कर डालता है। ईरान उस समय सभ्य और स्वतन्त्र था। वे ईरान के उत्थान के दिन थे।

इसके बाद पतन के दिन आए। ईरान की वह प्राचीन शोभा-सम्पद काल के गाल में समा गई। उसका समस्त विभव, शिल्प-वाणिज्य और कला-कौशल नष्ट-भ्रष्ट हो गया। भारत की तरह वह भी पाश्चात्य सभ्यता का शिकार बन कर अपना सब कुछ खो बैठा! इतने में रज़ाख़ाँ पहलवी का जन्म हुआ और उसने अपने अध्यवसाय और परिश्रम से ईरान की रक्षा की।

कहते हैं, किसी समय ईरान में 'ईरज' और 'तूरज' नाम के दो राजे रहते थे और अपने नामों के अनुसार इन्होंने 'ईरान' और 'तूरान' नाम के दो राज्यों की स्थापना की थी। परन्तु कुछ इतिहासकार कहते हैं कि 'आर्य' शब्द से भी ईरान का सम्बन्ध है। बादशाह होशङ्ग के पुत्र 'पारस' के नाम से इसका दूसरा नाम 'फ़ारिस' भी पड़ गया। अस्तु।

ईरान के उत्तर की ओर कास्पियन सागर, पश्चिम में तुर्किस्तान, दक्षिण में उमान और फ़ारिस की खाड़ियाँ हैं, पूर्व में बिलोचिस्तान और अफ़ग़ानिस्तान तथा पश्चिम में एशियाई रूम हैं। कुछ दिन पहले गुर्जिस्तान, आर्मीनिया और कुर्दिस्तान के कुछ हिस्से भी ईरान में शामिल थे, परन्तु आजकल उससे अलग हो गए हैं। ईरान की भूमि उपजाऊ है। समस्त देश की पञ्चमांश भूमि पर खेती-बारी होती है। सिंचाई के काम के लिए नहरें हैं, जिन्हें वहाँ वाले 'क़तान' कहते हैं। ख़रबूज़े और अङ्गूर यहाँ ख़ूब होते हैं। यहाँ की ख़ानों से फ़ीरोज़ा, गन्धक और नमक निकलता है। ईरान के कई पर्वतों से शिलाजीत की तरह एक प्रकार का तेल टपकता है, जिसे 'मोमयाई' कहते हैं। यह शिलाजीत ही की तरह कई रोगों की दवा है। बूशहर के पास मिट्टी के तेल का भी स्रोत है। तेहरान ईरान की राजधानी और प्रधान नगर है। प्राचीन काल में स्फ़हान यहाँ का प्रसिद्ध नगर और राजधानी था। हमदाम हकीम बूअली सीना की, तूस फ़िरदौसी की, शीराज़ शेख़ सादी की और बूशहर प्रसिद्ध ईरानी पहलवान रुस्तम की जन्मभूमि है। यज़्द में आज भी अग्नि-पूजक पारसी मौजूद हैं। मशहद शीया मुसलमानों का प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है। उस्तख़र के

खण्डहरों में एक मकान है, जिसे 'तख़्ते-जमशेद' कहते हैं। इसका दूसरा नाम 'चेहल-मीनार' भी है। यहाँ सङ्गमर्मर पर खुदाई का काम बहुत बढ़िया बना है। कहते हैं, एक बार शराब के नशे में सिकन्दर ने इसे फुँकवा दिया था, नहीं तो इसकी शोभा आज भी अपूर्व होती। ईरान में प्रधानतः ईरानी, तुर्क, यहूदी, कुर्द, अर्मन और तुर्कमान जाति के लोगों का निवास है। इस्लाम-धर्म के प्रभुत्व-विस्तार से पहले ईरानियों का वेश, भाषा और सभ्यता भी आर्यों के समान थी। उनकी पुरानी लिपि भी हमारी देवनागरी के समान ही है।

ईसा के पूर्व छठीं शताब्दी में ईरान एसिरियनों के अधीन था। उस समय यहाँ एक वीर पुरुष का आविर्भाव हुआ। उसका नाम 'साइरस' था।

साइरस स्वदेश-प्रेमी था। देश की पराधीनता उसे अच्छी नहीं लगती थी। उसने अपने देशवासियों को जाग्रत किया। परन्तु उसे सफलता नहीं प्राप्त हुई। देश अविद्या के अन्धकार में भटक रहा था। स्वतन्त्रता का महत्व हृदयङ्गम करना उसके लिए मुश्किल था। इधर साइरस भी उन्हें खुल्लमखुल्ला राजद्रोह के लिए उभाड़ नहीं सकता था, इसलिए राजा एस्टिया, जिसके हाथ उसने अपने को बेंच दिया—उसका ज़रख़रीद ग़ुलाम बन गया।

एस्टिया के राज-दरबार में रह कर साइरस ने बड़े मनोयोग के साथ विदेशियों की रीति-नीति तथा उनकी भीतरी कमज़ोरियों का भी अनुभव किया। इसके बाद उनके धनबल, बाहुबल और नीति-ज्ञान का भी पता लगाया। इसके साथ ही राजद्रोह और देशभक्ति का भी प्रचार आरम्भ कर दिया। राज-दरबार का आदमी होने के कारण किसी को उसकी नीयत पर सन्देह करने का मौक़ा नहीं मिलता था। राज-दरबार में भी उसका यथेष्ट सम्मान था। राजा स्वयं उसे अपना शुभचिन्तक समझते थे। अगर कोई राज-कर्मचारी उस पर सन्देह करता और उसकी शिकायत राजा के कानों तक पहुँच जाती, तो वह उन्हें समझा देता कि मैं जो कुछ करता हूँ, केवल राज्य की भलाई के लिए ही करता हूँ। राजा को उसकी बातों पर विश्वास हो जाता और शिकायत करने वाले को मुँह की खानी पड़ जाती।

अन्त में एक दिन भीषण दावानल की भाँति राजद्रोह की आग सारे देश में फैल गई। सुअवसर देख कर वीर साइरस ने खुल्लमखुल्ला राजद्रोह का झण्डा ऊँचा कर दिया। राजशक्ति ने विद्रोहियों को कुचल डालने की ख़ूब चेष्टाएँ कीं। हज़ारों देशभक्त शूली पर चढ़ा दिए गए। हज़ारों निर्दोष-निरीह कुपित राजसत्ता के शिकार बन गए। परन्तु अन्त में विजय-श्री राजद्रोहियों को प्राप्त हुई। वीरवर साइरस के स्वयंसेवकों ने विदेशियों को मार भगाया। साइरस ने स्वाधीनता की घोषणा की। उसका आत्म-त्याग सार्थक हुआ।



आप कलकत्ते के सुप्रसिद्ध श्री० सौभाग्यचन्द जी म्होणोत की १४ वर्षीय पोती हैं, जिन्हें विगत आन्दोलन में पिकेटिङ्ग ऑर्डिनेन्स के अनुसार ४ मास का कारावास-दण्ड दिया गया था।

इसके बाद इस्लाम-धर्म के उत्थान तक किसी विदेशी शक्ति ने ईरान की ओर नज़र नहीं उठाया। अन्त में हज़रत मुहम्मद का आविर्भाव हुआ। अरबों ने ईरान पर चढ़ाई कर दी। ईरान की धार्मिक स्वतन्त्रता सदा के लिए छिन गई। उसे बाध्य होकर इस्लाम-धर्म स्वीकार करना पड़ा। अग्नि-पूजकों को मुसलमान बनाने के लिए उन पर भीषण अत्याचार हुए। धर्म और ईश्वर

के नाम पर ख़ून की नदियाँ बह गईं। परम दयालु, समदर्शी (!!!) अल्लाहतालां के हुक्म से 'काफ़िरों' के रक्त से धरित्री का आँचल लाल हो गया! जान जाने के भय से ईरानियों ने अपना पैतृक धर्म छोड़ कर इस्लाम के रक्त-रञ्जित दामन में पनाह ली और कुछ कट्टर धर्मभीरु अपनी प्यारी जन्मभूमि को सदा के लिए 'अलविदा' कह कर भारत की शरण में चले आए! तब से आज तक ईरान पर इस्लाम का अखण्ड प्रताप



श्रीमती अम्बालाल साराबाई

आप गुजरात कॉङ्ग्रेस कमिटी की 'डिक्टेटर' थीं। विगत सत्याग्रह आन्दोलन में आपको एक हज़ार रुपए जुर्माने की सज़ा दी गई थी।

मौजूद है। इस्लाम ने उसकी सूरत ही बदल दी। ईरान का आर्यत्व और उसकी प्राचीन गौरव-गरिमा केवल इतिहास की सामग्री रह गई है।

विगत अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में यूरोपियन जातियों ने ईरान को अपना राजनीतिक क्रीड़ा-क्षेत्र बनाया, साथ-साथ भौगोलिक अवस्थान के कारण उसका महत्व भी अधिक बढ़ गया। इसलिए एक साथ ही कई यूरोपियन जातियों की लोलुप दृष्टि ईरान पर पड़ी। जिस समय का ज़िक्र हम कर रहे हैं, उस समय ईरान के तख़्त पर फ़तहअली शाह नाम का एक बादशाह था। राजनीतिक अपटुता के कारण उसे गोरों के हाथ का खिलौना बन जाना पड़ा। गोरों के पारस्परिक स्वार्थ-सङ्घर्ष के कारण ईरान की अवस्था बड़ी ही विचित्र हो गई। इतिहास-पण्डितों का कथन है कि दूरदर्शी सम्राट नेपोलियन की साम्राज्य-गठन-प्रतिभा के कारण ही पाश्चात्य जातियों की दृष्टि में ईरान का महत्व बढ़ गया। नेपोलियन की इच्छा, ब्रिटिश साम्राज्य की प्रधान शक्ति भारत को हस्तगत करने की थी, इसलिए वह अफ़ग़ानिस्तान के अमीर को भारत पर चढ़ाई करने के लिए उत्तेजित करने लगा। ठीक उसी समय लखनऊ के नवाब वाजिदअली शाह तथा कतिपय हिन्दू-नरेश अफ़ग़ानिस्तान से मिल कर अङ्गरेज़ों के विरुद्ध साज़िश करने में लगे थे। चतुर अङ्गरेज़ इस साज़िश का हाल जान गए और इसे विफल कर डालने की इच्छा से उनके ईरानी रेज़ीडेण्ट ने फ़तहअली शाह को अफ़ग़ानिस्तान के ख़िलाफ़ उभाड़ा। साथ ही शाह से प्रतिज्ञा करा ली गई कि फ़्रान्स को ईरान से दूर ही रखना होगा, अफ़ग़ानिस्तान और ईरान में मित्रता न हो सकेगी और ब्रिटिश वाणिज्य के लिए ईरान में काफ़ी सुविधा कर दी जाएगी।

शाह ने अङ्गरेज़ों की उपर्युक्त शर्तें स्वीकार कर लीं। परन्तु वे अधिक दिनों तक उनका निर्वाह न कर सके। सन् १८०४ में जार्जिका नामक स्थान के लिए ईरान और रूस में झगड़ा छिड़ा तो अङ्गरेज़ तटस्थ रहे, परन्तु फ़्रान्स ने शाह की सहायता की। इसलिए वह अङ्गरेज़ों को छोड़ कर फ़्रान्स के मित्र बन गए। सन् १८०७ में फ़्रान्स और ईरान में एक सन्धि हुई। निश्चय हुआ कि फ़्रान्स और ईरान मिल कर रूस का विरोध करेंगे। फ़्रान्स से एक रण-पण्डित महोदय ईरानी सिपाहियों को सामरिक शिक्षा प्रदान करने के लिए ईरान आए। इसी समय से ईरान के राजनीतिक रङ्ग-मञ्च पर नित्य नए पट-परिवर्तन होने लगे। यूरोपियनों ने ईरानियों के दिलों में कितनी ही नवीन आशाओं का सञ्चार किया। इस समय ईरान की विचित्र दशा थी, वह अपने को भूल कर सम्पूर्ण रूप से यूरोपियनों के हाथ का खिलौना बन गया था। ब्रिटेन ईरान को अपनी मुट्ठी में करने का

मौक़ा ताक रहा था और फ्रान्स उसे अपनी मुट्ठी में कस रहा था। इसी खींचातानी में सात वर्ष बीत गए। सन् १८१७ में अङ्गरेज़ों ने ईरान को पन्द्रह लाख रुपए वार्षिक कर देना स्वीकार किया और बदले में उससे प्रतिज्ञा कराई गई कि वह अपने देश में किसी भी गोरी जाति को अपनी सामरिक शक्ति न बढ़ाने देगा।

इसके बाद सन् १८२५ ईस्वी में रूस ने ईरान का गोक्चा नामक स्थान छीन लिया। ईरान और रूस में भयङ्कर समर छिड़ा और तीन वर्षों तक चलता रहा। इस संग्राम में ईरान को भयङ्कर रूप से क्षतिग्रस्त होना पड़ा। बहुत से ईरानी योद्धा मारे गए। आर्थिक हानि भी उठानी पड़ी। अन्त में सन्धि-सभा बैठी। ईरान को तीस लाख पौण्ड क्षति-स्वरूप देना पड़ा। एवं ईरेवान और नाक्चीवान आदि कई प्रदेशों से भी हाथ धोना पड़ा। इसके सिवा रूस-सरकार को कितनी ही अभ्यन्तरीय सुविधाएँ भी मिलीं। अभागा ईरान सैकड़ों वर्षों के लिए निर्वीर्य हो गया। ईरान में रूस के ज़ार की तूती बोलने लगी। रूस के आधिपत्य के कारण इङ्गलैण्ड और फ्रान्स को ईरान से अपना बोरिया-बँधना समेट लेना पड़ा। रूस की सरकार ने ईरान की सरकार को भारत-सरकार के विरुद्ध ऐसा पाठ पढ़ाया कि वह लगातार पचीस वर्षों तक अफ़ग़ानिस्तान के साथ झगड़ता रह गया। इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे ईरान को अपनी सारी शक्ति खो देनी पड़ी।

सन् १८३३ ईस्वी में ईरान के फ़तहअली शाह ने अफ़ग़ानिस्तान के हिरात प्रदेश पर आक्रमण किया। परन्तु थोड़े दिनों के बाद ही उनकी मृत्यु हो गई, इसलिए इस आक्रमण का कोई नतीजा नहीं निकला। फ़तहअली के बाद मुहम्मद शाह ईरान का बादशाह हुआ। उसने १८३७ में फिर हिरात पर चढ़ाई की। अङ्गरेज़ों ने बाधा दी और रूस उत्साह प्रदान करने लगा। परन्तु अन्त में मुहम्मद को विफल मनोरथ होकर लौट जाना पड़ा। मुहम्मद और उसके मन्त्री की निर्बुद्धिता के कारण ईरान की बड़ी क्षति हुई। जिस समय वह मरा उस समय समस्त ईरान में भयङ्कर विशृङ्खलता फैली हुई थी। ख़ज़ाना ख़ाली पड़ा हुआ था, फ़ौज की तनख़्वाह तीन महीने से लेकर पाँच वर्ष तक की बाक़ी पड़ी थी, घुड़सवार सेना इस्तीफ़ा देकर घर चली गई थी। और विद्रोह का धुँआ सारे देश में छा गया था।

मुहम्मद शाह की मृत्यु के बाद उसका सोलह वर्ष का लड़का नसीरुद्दीन ईरान के तख़्त पर बैठा। उसी समय 'बाबी' सम्प्रदाय वालों ने विद्रोह की घोषणा कर दी। नसीरुद्दीन की सरकार ने उन्हें निर्दयतापूर्वक कुचलना आरम्भ किया। सारे देश में असन्तोष फैल गया। परन्तु इससे ईरानियों का उपकार भी हुआ। सैकड़ों वर्षों के बाद ईरान में एक बार फिर जाग्रति के लक्षण दृष्टि-गोचर



श्रीमती सी० कुन्ती कावे

आप कालीकट काँङ्ग्रेस की सुप्रसिद्ध कार्यकर्त्री हैं, जो विगत राष्ट्रीय आन्दोलन में जेल गई थीं।

होने लगे। गोरों की चालबाज़ियों ने भी इसे मदद दी, ईरानी धीरे-धीरे अपनी परिस्थिति को समझने लगे।

सन् १८५० में यूरोपियन राजनीति में विशेष रूप से परिवर्त्तन हुआ। रूस ने ईरान को तुर्किस्तान के विरुद्ध अस्त्र धारण करने की सलाह दी, किन्तु मन्त्रियों की सलाह से नसीरुद्दीन ने फ्रान्स और ब्रिटेन के साथ मेल रखना उचित समझा। मन्त्रियों ने बताया कि अगर फ्रान्स और ब्रिटेन से दोस्ती रहेगी तो रूस ने ईरान का जो भू-भाग हड़प लिया है, उसे भविष्य में फिर उसके

हाथों से छीन लेने का अवसर मिल सकेगा। परन्तु अङ्गरेज़ों और फ़्रान्सीसियों ने उसे सम्पूर्ण रूप से निरपेक्ष रहने का ही परामर्श दिया। अपनी कमज़ोरी के कारण ईरान को भी यही सलाह मान लेनी पड़ी। परन्तु यह दोस्ती केवल पाँच ही वर्ष तक रह सकी। सन् १८५५ में तेहरान को लेकर अङ्गरेज़ों और ईरान में फिर मतान्तर हो गया। अङ्गरेज़ों ने ख़फ़ा होकर बूशहर में सेना एकत्र करना आरम्भ कर दिया, और थोड़े दिनों के बाद ही ईरान के एक भू-भाग पर अपना क़ब्ज़ा भी कर लिया।



श्रीमती सेमुअल ऐरन

आप कालीकट काँग्रेस की सुप्रसिद्ध कार्यकर्त्री हैं। विगत सत्याग्रह आन्दोलन में आपको कारावास दण्ड मिला था।

इस समय अङ्गरेज़ों को भारत की रक्षा की बड़ी चिन्ता थी। इसलिए उन्होंने शीघ्र ही ईरान से सन्धि भी कर ली। फ़्रान्स और इङ्गलैण्ड ने दया करके ईरान को स्वाधीन राज्य स्वीकार किया। इसके बदले में अङ्गरेज़ों को अफ़ग़ानिस्तान और ईरान के बीच मध्यस्थ बनने का अवसर प्राप्त हो गया। इतिहासकारों का कहना है कि इस सन्धि से अङ्गरेज़ों का विशेष उपकार हुआ। क्योंकि इसके कुछ दिन बाद ही भारत में सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह की आग धधक उठी थी और इस विद्रोह को दमन करने के लिए उन्होंने ईरान से अपनी सारी सेना वहाँ बुला ली थी। उस समय अगर अफ़ग़ानिस्तान और ईरान में पारस्परिक मनमुटाव न होता और अङ्गरेज़ इस झगड़े में पक्ष न होते, तो भारत के सिपाही-विद्रोह का कुछ और ही परिणाम होता।

शाह नसीरुद्दीन की मृत्यु से पहले समस्त मध्य एशिया पर रूस की प्रधानता थी। इसी समय उसने काकेशिया पर दख़ल जमाया था। इसके बाद वह सनीचर की भाँति अफ़ग़ानिस्तान की खोपड़ी पर आ धमका। अङ्गरेज़ घबरा उठे। कहीं यह सनीचर एक दिन उनकी सोने की चिड़िया—भारत को न फाँस ले।

इस समय ईरान की हीनावस्था पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी थी। सुअवसर देख कर रूस ने उसके उत्तरी प्रदेश पर अपना क़ब्ज़ा कर लिया। अङ्गरेज़ भी निश्चिन्त न थे, उन्होंने दक्षिणी ईरान को अपने चङ्गुल में दबाया। भारत की रक्षा के लिए ईरान को मुट्ठी में रखने की उन्हें सख़्त ज़रूरत थी। रूस की अनधिकार चेष्टा के उत्तर में अङ्गरेज़ों ने ईरान में अपने लिए काफ़ी सुविधा कर ली। ईरानियों के प्रबल प्रतिवाद की परवाह न कर, ईरान और भारत के बीच तारबर्क़ी जारी हो गई। फ़ारस की खाड़ी में उनका जहाज़ी बेड़ा रहने लगा, 'कोरन' (Kaurn) नदी में जहाज़ चलाने का अधिकार मिल गया और मिल गया ईरान में ब्रिटिश व्यापार के विस्तार का अलभ्य अवसर। इसके बाद 'मालपुए पर चीनी' के अनुसार शाह नसीरुद्दीन ने अङ्गरेज़ों को अपना बैङ्क स्थापित करने और 'नोट' चलाने का भी अधिकार दे दिया।

परन्तु इसका परिणाम बहुत अच्छा न हुआ, ईरान में अङ्गरेज़ों के विरुद्ध असन्तोष का सञ्चार होने लगा। सन् १८९० में, जब शाह ने अङ्गरेज़ों को तम्बाकू की खेती का अबाध अधिकार दे दिया, तो यह असन्तोष की आग और भी धधक उठी। ख़ास करके 'हुक़्क़ेबाज़' बहुत ही नाराज़ हो गए। धर्माचार्य हाजी मिर्ज़ा हसन शीराज़ी ने 'फ़तवा' दिया कि 'काफ़िरों' का पैदा किया हुआ तम्बाकू पीना 'हराम' है। सारे देश में बहिष्कार-आन्दोलन आरम्भ हो गया। इसके साथ ही स्थान-स्थान पर ख़ून-ख़राबी और मार-पीट होने लगी। शाह ने विद्रोहियों के भय से अङ्गरेज़ों का बहुत सा अधिकार छीन लिया। परन्तु अङ्गरेज़ों ने इसके बदले में पाँच

लाख पौण्ड शाह से वसूल कर लिए। उस समय ईरान के लिए यह अर्थ-दण्ड अतीव कठोर साबित हुआ। देश ने मानो पाँच लाख पौण्ड देकर अपने लिए दरिद्रता ख़रीद ली।

इसके बाद ईरान, रूस और इङ्गलैण्ड की चक्की में दिन-रात पिसने लगा। नसीरुद्दीन की बादशाहत के वे अन्तिम दिन थे, बुढ़ौती का ज़माना था। शासन-शक्ति क्षीण हो चली थी। वह अपने दरबारियों के हाथ का खिलौना बन गया था। इसलिए समस्त राज्य में विषम विश्रृङ्खलता उपस्थित हो गई। ठीक समय पर वेतन न मिलने के कारण फ़ौज के सिपाहियों ने घर की राह ली। धनागार और अस्त्रागार शून्य होने लगे। राज्य-कर्मचारियों की उच्छृङ्खलता के कारण प्रजा भी विद्रोही हो उठी। किसी गुप्त-घातक ने एक दिन नसीरुद्दीन को गोली मार दी।

अत्याचार जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है, तो उसका परिणाम यही होता है। उस समय एक साधारण रस्सी भी सर्प बन जाती है। शाह नसीरुद्दीन की हत्या इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। उसे मारा था एक साधारण—निरीह दूकानदार ने। जब अत्याचार से उसकी आत्मा खलबला उठी तो एक दिन दूकान-दौरी उठा कर वह राजद्रोही बन गया। जिस शहर में उसकी दूकान थी, वहीं एक क्रान्तिकारी सरदार रहता था। दूकानदार ने उसका शिष्यत्व स्वीकार किया और देश को अत्याचार के हाथों से मुक्त करने के लिए जान पर खेल गया! उसका नाम मिर्ज़ा रज़ा था, उसे फाँसी की सज़ा दी गई।

नसीरुद्दीन के बाद रूसी और अङ्गरेज़ मन्त्रियों ने शाहज़ादा मुज़फ़्फ़रुद्दीन को तख़्त पर बैठाया। वह मुँहचोर, डरपोक और बेवक़ूफ़ था। दिन-रात ज़नानख़ाने में छिपा बैठा रहता था। ईरानियों ने नाराज़ होकर उसका नाम 'बहन मुज़फ़्फ़र' रख छोड़ा था!

परन्तु राजनीतिक परिवर्तन की दृष्टि से शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन का शासन-काल विशेष महत्वपूर्ण था। क्योंकि उसीके समय में, वहाँ 'राष्ट्रीय शासन-विधान' पहली बार पढ़ा गया था और स्वेच्छाचार-मूलक शासन-प्रणाली की नींव हिली थी। बल्कि सच पूछिए तो उसीके समय से ईरान में विप्लव-युग का प्रारम्भ हुआ था। सिंहासनारूढ़ होकर मुज़फ़्फ़र ने सब से पहले धनागार की पूर्त्ति की ओर ध्यान दिया। प्रजा पर कई नए-नए कर लगाए गए। अपनी विलास-वासना की पूर्त्ति के लिए बहुत सा रुपया विदेशियों से ऋण लिया। ऐसे ही और भी कई कारणों से प्रजा अत्यन्त असन्तुष्ट हो उठी। परन्तु धार्मिक कट्टरता के कारण इस असन्तोष का कोई परिणाम नहीं निकला। रूढ़ियों की ग़ुलामी ने नवीन संस्कारों के पथ में विशेष रुकावटें डालीं। प्रजा अपनी वर्तमान परिस्थिति से ऊब करके भी प्रतिकार की कोई



श्रीमती श्यामरानी देवी साहनी

आप लखनऊ कॉङ्ग्रेस कमिटी की चौथी डिक्टेटर थीं, जिन्हें विगत सत्याग्रह आन्दोलन में ६ मास का कारावास-दण्ड और २००) रु० जुर्माने की सज़ा दी गई थी।

तदबीर न सोच सकी। इसी समय सय्यद जलालुद्दीन नाम के एक वीर पुरुष का आविर्भाव हुआ। जाति का अधःपतन और अधिकारियों का अनाचार देख कर उसकी अन्तरात्मा विचलित हो उठी। यौवन-काल के आरम्भ में ही वह मातृभूमि को ग़ुलामी के बन्धन से विमुक्त करने के लिए व्याकुल हो उठा। परन्तु प्रतिकूल परिस्थिति के कारण उसे सफलता नहीं प्राप्त हुई। इसलिए उसने विदेशों में भ्रमण कर प्रचार-कार्य करने का

विचार किया। सब से पहले अफ़ग़ानिस्तान पहुँचा और 'अफ़ग़ान' उपाधि से विभूषित होकर भारतवर्ष की सैर की। इसके बाद तुर्किस्तान तथा यूरोप का भ्रमण कर ईरान आया। इस लम्बी यात्रा में उसने कई तरह के अनुभव प्राप्त किए और इस सिद्धान्त पर पहुँचा कि जब तक देशवासी सामाजिक और धार्मिक ग़ुलामी से विमुक्त न होंगे, तब तक राजनीतिक पराधीनता से छुटकारा पाना सम्भव नहीं है। यही सोच कर, उसने स्ताम्बोल में अपना निवास-स्थान बनाया और अपने को 'सुन्नी' विघोषित कर, सबसे पहले धार्मिक रूढ़ियों का मूलोच्छेद करना आरम्भ किया। उसकी वाणी में शक्ति थी, उसके तर्क अकाट्य होते थे। मुल्ले-मौलवी उसे नास्तिक, धर्म-द्रोही और पागल की पदवी से विभूषित करने लगे। हज़ारों नवयुवक उसके शिष्य बन गए। जन-साधारण पर उसका अखण्ड प्रभाव देख कर शाह की सरकार भी विचलित हो गई। उसने उसे देश से निकल जाने की आज्ञा प्रदान की। वह यूरोप के कई देशों में भ्रमण करता हुआ इङ्गलैण्ड पहुँचा और वहीं से ईरान की दक़ियानूसी सरकार के विरुद्ध प्रचार करने लगा। वहीं ईरान का विख्यात विद्रोही नेता मक़लम ख़ाँ भी मौजूद था। दोनों ने मिल कर 'क़ानून' नाम का एक पत्र निकाला और ज़ोर-शोर से प्रचार-कार्य करना आरम्भ कर दिया। सारे देश में विप्लव का बीज वपन हो गया। विद्रोहियों की संख्या दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ने लगी। इसी समय जापान ने रूस को पछाड़ा था और उसकी उस असाधारण विजय ने समस्त एशिया में आशा का सञ्चार कर दिया। ईरान की आँखें भी खुल गईं। स्वदेश-प्रेम की शीतल, स्निग्ध-धारा से सारा देश विप्लवी हो गया। इसी समय सरकार के विरुद्ध 'मस्त' नाम का निष्क्रिय प्रतिरोध आन्दोलन आरम्भ हुआ। और थोड़े ही दिनों में वह इतना शक्तिशाली हो उठा कि बेचारा मुज़फ़्फ़र शाह घबरा उठा। उसने राष्ट्रीय नेताओं को बुला कर 'मजलिस' नाम की एक जातीय महासभा की स्थापना की। ईरान युगों की ग़ुलामी से मुक्त हो गया। सारे देश में प्रतिनिधि-निर्वाचन की धूम मच गई। गत १९०६ ईसवी की ७वीं अगस्त को ईरान की जातीय पार्लामेण्ट का प्रथम अधिवेशन हुआ। स्वयं शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन ने आकर सभा का उद्घाटन किया।

इस शुभ घटना के ठीक साल भर बाद शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन ने शरीर-त्याग किया और उसकी जगह तख़्त-नशीन हुआ उसका उत्तराधिकारी शाह मिर्ज़ा मुहम्मद-अली। इसने सिंहासनारूढ़ होते ही ईरान की जातीय जाग्रति को दबा डालने की चेष्टा की। 'मजलिस' की कोई प्रतिष्ठा न रही। यहाँ तक कि तख़्तनशीनी के उत्सव में भी उसके सदस्यों को निमन्त्रण नहीं दिया गया। जातीय आन्दोलन को कुचलने के लिए विपुल अर्थ स्वाहा होने लगा। हज़ारों प्रचारक राजसत्ता की तारीफ़ करने के लिए देहातों में भेजे गए और जिस तरह आजकल भारतवर्ष में जगह-जगह 'शान्ति-सभा' और 'प्रेम-सभा' की धूम है, उसी तरह वहाँ भी ख़ुशामदियों की बन आई। सरकारी भाड़े के टट्टुओं ने मूर्ख जनता को 'मजलिस' राष्ट्रीय आन्दोलन के विरुद्ध उभाड़ना आरम्भ कर दिया। अशिक्षित जनता इन मायावियों के माया-जाल में फँस कर राष्ट्रीयता का विरोध करने लगी।

शाह मुहम्मदअली पक्का कूटनीतिज्ञ था। एक ओर तो वह जातीय 'मजलिस' का आनुगत्य स्वीकार करता और दूसरी ओर उसे गुप्त रूप से ध्वंस कर डालने की चेष्टा करता। उसने असग़रअली नाम के एक आदमी को अपना प्रधान-मन्त्री नियुक्त किया था। यह व्यक्ति पक्का राजतन्त्रवादी और शाह नसीरुद्दीन का मन्त्री रह चुका था। जनता इसे अच्छी तरह पहचानती थी। इसलिए उसकी नियुक्ति से सारे देश में घोर असन्तोष फैल गया। लोगों ने खुल्लमखुल्ला विरोध भी किया। परन्तु शाह मुहम्मद के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी। अन्त में एक विप्लववादी नवयुवक ने असग़रअली को गोली मार दी। शाह मुहम्मद अली को बाध्य होकर असग़र-अली के स्थान पर नासिरुलमुल्क नाम के एक नव-युवक को मन्त्री बनाना पड़ा। नासिर ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय का ग्रेजुएट और पक्का राष्ट्रवादी था। परन्तु शाह के आगे उसकी एक भी चलती न थी। इस समय ईरान की अवस्था बड़ी विचित्र थी। राजसत्ता और प्रजातन्त्र में भयङ्कर द्वन्द्व चल रहा था। शाह मजलिस को ध्वंस कर डालने की चेष्टा में था और प्रजा उसे सुदृढ़ बनाने के प्रयत्न में लगी थी। मुहम्मद शाह के अत्याचार ने ईरान में विप्लववादियों की जड़ जमाने में अच्छी सहायता की। ईरान के सभी प्रमुख स्थानों में

'अञ्जुमन' नाम की विप्लव-समितियाँ स्थापित हो गईं। गुप्त रूप से बड़े ज़ोरों से विप्लव-मन्त्र का प्रचार होने लगा। देश के नवयुवक मानो स्वतन्त्रता के लिए मतवाले हो उठे। असंख्य पत्र-पत्रिकाओं का प्रचार होने लगा। गुप्त समितियों की शाखाएँ देहातों में भी स्थापित हो गईं। विप्लववादियों ने गुप्त रूप से प्रचुर युद्ध-सामग्री भी एकत्र कर ली। जब शाह को इन बातों की ख़बर लगी तो वह अत्यन्त भयभीत हुआ।

इसी समय इङ्गलैण्ड ने अपने चिर-शत्रु रूस से सन्धि कर ली। निश्चय हुआ कि आधे ईरान का तत्वावधान रूस की सरकार करेगी और आधे की ब्रिटिश सरकार। वही कहावत हुई कि "जिसकी ज़मीन उसे ख़बर ही नहीं, डोमों ने गाँव बाँट लिया।" मध्य का थोड़ा सा स्थान मानो स्वतन्त्र ईरान की स्मृति-स्वरूप छोड़ दिया गया! इस 'एङ्गलो-रशियन सन्धि' के कारण सारे ईरान में खलबली मच गई। विदेशियों के विरुद्ध खुल्लमखुल्ला द्वेष-भाव का प्रचार आरम्भ हो गया। इधर मुहम्मद शाह राष्ट्रीय दल को कुचल डालने की अनवरत चेष्टा करने लगा। उसने अपनी प्रजा के उभड़ते हुए राष्ट्रीय भावों के दमन के लिए रूस से सहायता ली। रूसी सेनापति लियाकफ़ अपनी क़ज़्ज़ाक़ वाहिनी के साथ ईरान की छाती पर आ धमका। गोलों के आघात से मजलिस-भवन ढा दिया गया! उसके साथ ही एक मसजिद का भी ख़ातमा हो गया, बारह स्वयंसेवक जान से मारे गए। 'अञ्जुमन' के सदस्यों ने बड़ी दिलेरी के साथ क़ज़्ज़ाक़ों का मुक़ाबला किया, परन्तु दुर्भाग्यवश अन्त तक नहीं ठहर सके। क़ज़्ज़ाक़ों ने तेहरान शहर लूट लिया। इस तरह ईरान की जातीय जाग्रति के मूल पर कुठाराघात कर दिया गया। लोगों ने समझा, विप्लव की सदा के लिए मृत्यु हो गई; शाह मुहम्मद के पथ का कण्टक दूर हो गया। परन्तु किसी ने ठीक हो कहा है कि "जाको राखै साइयाँ, मारि सकै नहिं कोय; बार न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय!" क़ज़्ज़ाक़ों का घोर अमानुषिक अत्याचार भी विप्लव की अन्तिम चिनगारी को नहीं बुझा सका। उपयुक्त ईंधन पाकर वह फिर सुलगने लगी। निर्वासित नेताओं ने फ़्रान्स के पेरिस नगर में अपना अड्डा बनाया। अञ्जुमन के बचे हुए सदस्यों ने उनका साथ दिया। वहीं से प्रचार-कार्य आरम्भ हुआ। विख्यात विप्लवी सरदार असद उन दिनों पेरिस में था। उसने वहीं से आग भड़काना शुरू कर दिया। काकेशिया से भी बहुत से विद्रोही आ पहुँचे। देश के गुण्डे और बदमाशों ने भी जातीय दल का साथ दिया। इस्फ़हान के बख़्तियारी सम्प्रदाय के लोग भी राजद्रोही हो उठे। गवर्नर मार डाला गया! तेब्रिज नामक स्थान जातीय दल वालों का प्रधान केन्द्र-स्थल बन गया। विराट विप्लव मानो शेषनाग की तरह सहस्र फण फैला कर राजसत्ता को निगल जाने के लिए तैयार हो गया। शाह ने रहीम



श्री० हनुमान प्रसाद जी बागड़िया

आप कलकत्ते के सुप्रसिद्ध व्यापारी हैं। पुलिस के अत्याचारों के विरुद्ध व्याख्यान देने के कारण आप १२४-अ के अनुसार गिरफ़्तार कर लिए गए थे, किन्तु गाँधी-इर्विन समझौते के कारण छोड़ दिए गए।

ख़ाँ नाम के एक विख्यात डाकू को पाँच सौ घुड़सवारों के साथ तेब्रिज भेजा। उसने वहाँ जाकर भीषण अत्याचार किया। परन्तु अन्त में तेब्रिज-वासियों ने उसे मार भगाया। इसके बाद शाह ने अपने सेनाध्यक्ष आईनुद्दौला को तेब्रिज भेजा। उसने विपुल वाहिनी द्वारा सारा शहर घेर लिया। उस समय एक अमेरिकन और एक अङ्गरेज़ राष्ट्रीय दल के स्वयंसेवकों को सामरिक शिक्षा प्रदान कर रहे थे। इन दोनों वीरों की सहायता

से राष्ट्रीय दल वालों ने एक दिन अचानक शत्रुओं पर हमला कर दिया। भीषण संग्राम आरम्भ हो गया। देशभक्तों के रक्त से पृथ्वी लाल हो गई। वह वीर अमेरिकन शिक्षक भी खेत रहा, और भी बहुत से वीर धराशायी हुए। अन्त में सन्ध्या हो जाने के कारण जातीय दल वाले वापस लौट पड़े।

इस चढ़ाई में तेब्रिज की अवस्था बड़ी ही शोचनीय हो गई थी। साल भर तक सारा शहर शाही फ़ौज से घिरा रहा। कितने ही नर-नारियों ने खाद्याभाव के कारण प्राण विसर्जन किए, कितनों ने घास खा-खाकर जीवन धारण किए। राष्ट्रीय दल ने अदम्य उत्साह और अलौकिक वीरता का परिचय दिया। उनके असीम त्याग और दृढ़ता की कहानी सारे देश में साश्रु नेत्रों से सुनी गई। अन्त में रूसियों और अङ्गरेज़ों के दबाव डालने के कारण शाह ने अपनी फ़ौज हटा ली। तेब्रिज सम्पूर्ण रूप से विद्रोहियों के अधिकार में आ गया। इस घटना से सारे देश के विप्लवी उत्साहित हो गए। रेस्ट से लेकर इस्फ़हान तक के विप्लववादियों का ज़बरदस्त सङ्गठन हुआ। आरमेनियन विप्लवी एफ़्रायम इस विराट वाहिनी का नेता बना। विद्रोहियों ने सब से पहले काज़विन नामक शहर पर चढ़ाई की और वहाँ की शाही सेना को मार कर उस पर अपना क़ब्ज़ा कर लिया। इसी समय असद ख़ाँ भी अपने स्वयंसेवकों के साथ एफ़्रायम के दल में आ मिला। मानो स्वर्ण में सुगन्ध आ गई। सरदार असद के बड़े-बड़े धनवान सौदागर मददगार थे। उसने बड़े ज़ोर-शोर से प्रचार-कार्य आरम्भ किया। इसके बाद तेहरान पर आक्रमण करने की घोषणा कर, विद्रोहियों तथा शाह की फ़ौज में घोर संग्राम आरम्भ हुआ। अन्त में विद्रोहियों की विजय हुई। तेहरान पर राष्ट्रीय पताका फहराने लगी और शाह को सपरिवार रूस की शरण लेनी पड़ी। राष्ट्र की साधना सफल हुई। ईरान के नौजवानों ने इस अवसर पर जिस वीरता का परिचय दिया था, उसका वर्णन करना हमारे लिए कठिन है।

इसके बाद शीघ्र ही शाह मुहम्मद के सिंहासनच्युत होने की घोषणा की गई। सरदार सिपहदार ख़ाँ समर-सचिव नियुक्त हुए। असद ख़ाँ ने अभ्यन्तरीन शासन-विधान का भार लिया। एफ़्रायम पुलिस का प्रधान अफ़सर बनाया गया। शाह मुहम्मद का लड़का, सुलतान अहमद ईरान का बादशाह बनाया गया। शाही महल 'मजलिस' भवन के रूप में परिणत हुआ।

इतने दिनों के बाद ईरान में वास्तविक नवयुग की प्रतिष्ठा हुई। राष्ट्रीय दल ने शासन-सूत्र ग्रहण किया। दक़ियानूसी क़ानून और व्यवस्था में परिवर्तन आरम्भ हुआ। मुल्ले-मौलवी घबरा उठे और जिस तरह काशी के कुछ 'पण्डित' नामधारी विलक्षण जीवों ने काँङ्ग्रेस के विरुद्ध व्यर्थ प्रयास आरम्भ किया है, उसी तरह ईरानी मुल्लाओं ने भी कुछ बेवक़ूफ़ों तथा अशिक्षितों का एक दल बना कर राष्ट्रीय दल के मार्ग में रोड़े अटकाना आरम्भ किया। परन्तु राष्ट्रीय दल को सब से अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा अर्थाभाव के कारण। शाह नसीरुद्दीन के ज़माने से ही ईरान के बादशाह विलासी तथा अमितव्ययी हो गए थे। हमारे देशी नरेशों और बड़े-बड़े ज़मींदारों की तरह वे भी प्रचुर अर्थ स्वाहा करके लन्दन और पेरिस की सैर किया करते थे। मानो 'बाल-डान्स' के मज़े लूटना ही उनके जीवन का उद्देश्य था। इसका परिणाम यह हुआ कि शाही ख़ज़ाने में एक कौड़ी भी नहीं रह गई थी। इसके सिवा शुल्क-विभाग की उन्नति तथा नवीन विधि-व्यवस्था के मार्ग में यूरोपियन शक्तियाँ भी रोड़े डालने लगीं। राष्ट्रीय दल को बाध्य होकर रूस और इङ्गलैण्ड से ऋण के लिए प्रार्थना करनी पड़ी। परन्तु इन दोनों शक्तियों ने इसके बदले में कुछ ऐसी शर्तें स्वीकृत करानी चाहीं, जो नितान्त अपमानजनक थीं, इसलिए स्वाभिमानी ईरान ने उनसे ऋण लेना उचित नहीं समझा। दोनों शक्तियाँ नाराज़ हो गईं। इङ्गलैण्ड ने लिखा कि हमारे वाणिज्य के लिए दक्षिण ईरान में अपने ख़र्च से सारी सुविधाएँ कर दो। हमारे लिए रास्ते निष्कण्टक कर दो। राष्ट्रीय दल ने जर्मनी के क़ैसर को लिखा कि इसके प्रतिकार का कोई उपाय सोचिए। परन्तु जर्मनी और रूस में इससे पहले ही एक समझौता हो चुका था। इसलिए क़ैसर ने इस सम्बन्ध में दस्तन्दाज़ी करने से साफ़ इन्कार कर दिया। बल्कि रूस और इङ्गलैण्ड के साथ ही वह भी ईरान का ख़ून चूसने की तदबीर सोचने लगा।

फलतः अत्याचारी राजसत्ता से परित्राण पाने पर साम्राज्य-लोलुप यूरोपियनों ने ईरान की राष्ट्रीयता को पनपने नहीं दिया। समय-समय पर धमकियाँ देकर

तथा अन्यान्य अमानुषिक उपायों से उन्होंने 'मजलिस' को कमज़ोर बना दिया ! आए-दिन के अड़ङ्गों के कारण उसे अपनी उन्नति करने का अवसर ही नहीं प्राप्त हुआ। यह घटना सन् १९१४ के पूर्व की है; अभी यूरोप का महासमर नहीं छिड़ा था। उस समय रूस मानो हाथ धोकर ईरान के पीछे पड़ गया था। उसकी इच्छा थी, उठते हुए राष्ट्र को कुचल कर उसे पराधीनता के कठोर शिकञ्जे में कस डालने की। उसने तरह-तरह के अत्याचार आरम्भ कर दिए। वह चाहता था कि राष्ट्रवादी घबरा कर 'मजलिस' तथा ईरान-सरकार को उसके हाथों में सौंप दें। इसके लिए भयङ्कर साज़िश की गई। 'मजलिस' तथा सरकार के ख़िलाफ़ ख़ूब प्रचार होने लगा। कुछ दिनों के बाद ही रूस की मनोकामना पूरी होने के लक्षण दिखाई देने लगे। मजलिस के अन्दर ही एक दल ऐसा तैयार हो गया, जो अपनी इच्छा से अपनी स्वतन्त्रता खो देने को तैयार था। उस समय ईरान की असूर्यम्पश्या पर्दानशीन स्त्रियों ने कमाल किया। राष्ट्र को इस घोर अपमान से बचाने के लिए उन्होंने कमर कस लिया। 'मजलिस' का अधिवेशन हो रहा था। उसे रूस के हाथों में सौंप दिया जाय या नहीं, यही आज की बैठक का प्रधान विषय था। सदस्यगण गम्भीर मुद्रा बनाए बैठे थे। ऊँचे आसन पर मजलिस के अध्यक्ष महोदय विराजमान थे। उनके प्रशस्त ललाट पर चिन्ता की रेखाएँ प्रत्यक्ष दिखाई दे रही थीं। इसी समय सैकड़ों वीर-बालाओं ने मजलिस में प्रवेश किया। उनके हाथों में पिस्तौल थे। वे सीधे 'प्रेज़िडेण्ट' के आसन की ओर बढ़ीं। सदस्यों ने विस्मय-विमूढ़ दृष्टि से उनकी ओर देखा। इन देवियों के तेज़ से मानो सारा भवन जगमगाने लगा। देवियाँ प्रेज़िडेण्ट के पास एक क़तार से खड़ी हो गईं। उन्होंने अपने हाथों के पिस्तौल ऊँचे किए। इसके बाद उनकी 'प्रधाना' ने प्रेज़िडेण्ट को सम्बोधन करके कहा—"ख़बरदार, अगर मजलिस रूस के अधिकार में दी गई, तो हमारे पिस्तौलों से निकली हुई गोलियाँ मजलिस के सदस्यों के हृदय छेद डालेंगी !"

राष्ट्र अपमानित होने से बच गया ! एकाएक शत-शत कण्ठों से यह ध्वनि निकल पड़ी—"कदापि नहीं, हम मर मिटेंगे, परन्तु अपनी स्वतन्त्रता नहीं खोएँगे !"



श्री० सेठ रामजी भाई

आप कराची के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता हैं। आपने कराची-काँङ्ग्रेस की स्वागतकारिणी सभा के सहायक प्रधान मन्त्री की हैसियत से प्रशंसनीय कार्य किया है।

इसके बाद रूस ने बलपूर्वक मजलिस तोड़ दी ! फिर कुछ दिनों के लिए राष्ट्रीय दल बलहीन हो गया। इसी समय महासमर छिड़ा। रूस ने अपना मतलब निकालने के लिए कठोरता की बागडोर कुछ ढीली कर दी। बहुत दिनों के बाद एक बार फिर मजलिस बैठी !

उसने घोषणा की, कि इस युद्ध में हम निरपेक्ष रहेंगे। परन्तु इतने पर भी ईरान को यूरोपियन राजनीति का लील-क्षेत्र बनना ही पड़ा। अङ्गरेज़ों ने ईरान का सुप्रसिद्ध बन्दरगाह बसरा और अहवाज़ अपने क़ब्ज़े में कर लिया! यह मानो उसकी निरपेक्षता का पुरस्कार था। अस्तु।

सन् १९१७ में जब ज़ारशाही का ध्वंस करके रूस के वीरों ने बोलशेविज़्म की दुन्दुभी पीटी, तो ईरान के भाग्य ने भी पलटा खाया। एक दिन एकाएक लोगों ने सुना कि रूस की सेना उत्तर ईरान छोड़ कर चली गई। परन्तु दक्षिण ईरान पर अङ्गरेज़ों का क़दम जमा ही रहा। बल्कि सच पूछिए तो रूस के हट जाने से उनकी और भी बन आई। वे इस अवसर से लाभ उठा कर सारे ईरान को हड़प जाने की तदबीर सोचने लगे। सन् १९१९ में ऐङ्गलो-ईरान सन्धि का माया-जाल फैला कर ईरान की बरायनाम स्वतन्त्रता स्वीकार की गई और अहमदशाह को कठपुतली बना कर आजन्म ईरान को चूसते रहने की व्यवस्था कर ली गई। परन्तु ईरान स्वतन्त्रता का स्वाद पा चुका था। अङ्गरेज़ों की इस चालबाज़ी ने फिर उसके हृदय में असन्तोष का सञ्चार किया। समाचार-पत्र तथा वक्तृता-मञ्च पर अङ्गरेज़ों की इस गढ़ी नीति की कड़ी आलोचना होने लगी। हाहाकार ने फिर भीषण मूर्त्ति धारण की। राज-कोष में चूहे दण्ड पेलते थे, परन्तु शाह बहादुर पेरिस की सुन्दरियों के साथ 'बाल-डान्स' के मज़े ले रहे थे। थैलियों का मुँह खोल दिया गया था। पानी की तरह रुपए बहाए जा रहे थे। इस समय ईरान की दुर्गति मानो सीमा पार कर जाने की तैयारी कर रही थी।

परन्तु शाह रज़ा ख़ाँ पहलवी ने उसे बचा लिया। इसकी वीर वाणी ने एक बार फिर ईरानी नवयुवकों के दिलों में आशा का सञ्चार किया। एक बार फिर समस्त ईरान में देश-प्रेम की लहर उठी और एक बार फिर ईरान अपने ग़ुलामी के बन्धनों को तोड़ फेंकने के लिए तैयार हो गया!

ईरान के त्राता शाह रज़ा ख़ाँ एक सामान्य किसान के लड़के हैं। इनका बाल्य-जीवन प्रकृति माता की गोद में ही बीता है। उन्नीस वर्ष की उमर में ये रूस की क़ज़्ज़ाक़ सेना में एक रङ्गरूट के रूप में भर्ती हुए थे। परन्तु कुछ दिन के बाद ही रज़ा ख़ाँ एक होनहार सिपाही साबित हुए। शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन की मृत्यु के बाद जब ईरान में विषम विशृङ्खलता उपस्थित हुई तो रज़ा ख़ाँ फ़ौज की एक टुकड़ी के ऑफ़ीसर नियुक्त होकर ईरान आए। यहाँ इन्हें ईरान के भाग्य-चक्र का उलट-फेर देखने का काफ़ी मौक़ा मिला, और उसी समय से स्वदेशोद्धार की एक मधुर कल्पना भी इनके मस्तिष्क में नृत्य करने लगी। उसी समय डॉक्टर ज़ियाउद्दीन ने 'रआद' (Raad वज्र) नाम का एक क्रान्तिकारी पत्र-प्रकाशित करना आरम्भ किया। रज़ा उस पत्र के नियमित पाठक थे। उसके अग्नि-गर्भ लेखों को पढ़ कर आशा और उमङ्ग से रज़ा ख़ाँ का दिल नाच उठता था। क्रान्ति की कमनीय मूर्ति उनकी आँखों के आगे नाच उठती थी। "अहा! देश में क्रान्ति मचती और मैं भी उसमें भाग ले सकता। क्या वे मनोहर दिन कभी देखने को न मिलेंगे?" ऐसी कितनी ही लालसाएँ रज़ा ख़ाँ के दिल में उठतीं और विलीन हो जातीं।

एक दिन रज़ा ख़ाँ की चिरसञ्चित अभिलाषा पूरी हुई। सन् १९२१ के जाड़ों में उन्हें अपनी सेना के साथ काज़विन से तेहरान जाने की आज्ञा मिली। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी, सारा प्रान्त तुषारपात से ढक गया था, तुहिन-शीतल वायु के तीक्ष्ण झोंके बर्छों की तरह कलेजे में चुभ जाते थे। परन्तु रज़ा को इसकी कोई परवाह न थी। धैर्य और साहस उनके चिर-सहचर थे। उन्हें न तुषार-वर्षा रोक सकती थी और न अग्नि-वर्षा! बिना विराम और विश्राम के एक दिन अतर्कित भाव से रज़ा ख़ाँ सदल-बल तेहरान पहुँच गए। स्वार्थवश, देशद्रोही शाह के तरफ़दार और मददगार बन्दी कर लिए गए। अङ्गरेज़ों द्वारा अनुमोदित शिथिल राजतन्त्र बात की बात में भहरा पड़ा! शाह के सिंहासनच्युत हो जाने की घोषणा की गई। स्वयं रज़ा ख़ाँ ने सेनापति का पद ग्रहण किया। डॉक्टर ज़ियाउद्दीन प्रधान-मन्त्री बने। परन्तु कुछ दिन के बाद ही प्रजा ने ज़ोर देकर रज़ा ख़ाँ को शाह की पदवी से विभूषित कर दिया। अब वह 'शाह रज़ा ख़ाँ पहलवी' हैं। उन्होंने ईरान की काया-पलट कर दी है। राज्य की अभ्यन्तरीन व्यवस्था में उन्होंने समयोपयोगी व्यवस्था की है। पहाड़ी सरदारों का दमन करके उन्हें देशभक्ति

की शिक्षा प्रदान की है। आज रज़ा ख़ाँ की बदौलत ईरान एक स्वतन्त्र, सभ्य और उन्नतिशील राष्ट्र के रूप में परिणत हो गया है।

यद्यपि ईरान की वर्तमान अवस्था का अधिकांश श्रेय शाह रज़ा ख़ाँ पहलवी को प्राप्त है, परन्तु उसके गत शताब्दी के इतिहास के सिंहावलोकन से प्रतीत होता है, कि इस जाग्रति की सच्ची नींव आज से प्रायः अर्द्ध शताब्दी पहले ही पड़ गई थी। उसी समय ईरानी युवकों और युवतियों ने प्राचीन रूढ़ियों के विरुद्ध बग़ावत का झण्डा बुलन्द किया था। उसी समय पहले-पहल एक ईरानी युवती ने अपना 'नक़ाब' उतार कर 'मर्दों की अङ्क पर' डाल दिया था। उसके बाद और भी कितनी ही पुर-महिलाओं ने उसका अनुकरण किया। उसी समय से ईरान ने सङ्गठित और दलबद्ध होना सीखा था। साम्राज्यवादी यूरोपियन राष्ट्रों ने उसे और भी सचेत कर दिया। उसे धीरे-धीरे आत्म-शक्ति पर विश्वास होने लगा। अब वह बड़ी सरगर्मी से अपनी अभ्यन्तरीन दशा सुधारने में लगा है। वह उन्नति-रथ की एक-एक गुत्थी को उठाता और सुलझाता है। उसकी उन्नति की चेष्टाएँ शतमुखी, सर्वदेशव्यापी और बीसवीं शताब्दी की अनुयायिनी हैं। अब ईरान एशिया का एक उन्नतशील राष्ट्र है।



अजमेर की राष्ट्रीय कार्यकर्त्री महिलाओं का ग्रूप

यह ग्रूप उस समय का है, जब ये सारी देवियाँ अजमेर के पं० गौरीशङ्कर भार्गव की धर्मपत्नी श्रीमती गोमती देवी और पुत्री कुमारी प्रसन्नता देवी का स्वागत करने के लिए एकत्र हुई थीं, जो हाल ही में जेल से मुक्त होकर आई थीं। इन देवियों ने इन माँ-बेटियों को एक चाँदी की तकली भेंट की थी। बीच में माला पहिने माँ बेटियाँ बैठी हैं।





'चाँद' कार्यालय के कुछ कर्मचारियों का चित्र, जो श्री० सहगल जी की जेल से रिहाई होने पर उनके स्वागत के समय लिया गया था।



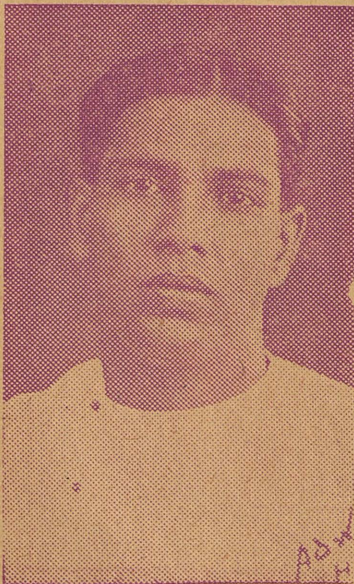
कुँअर राघवेन्द्र प्रतापसिंह जी

आप मनकापुर (गोंडा) के राजकुमार हैं, जिन्हें १४४ दफ़ा के निरादर करने के कारण ६ मास का कठिन कारावास-दण्ड दिया गया था।



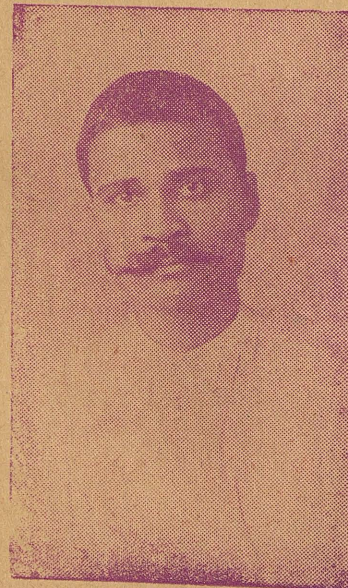
स्वामी शिवानन्द जी संन्यासी

आप कराची के "हिन्दू-जाति" नामक राष्ट्रीय पत्र के सम्पादक हैं, जो पुलिस के लाठी-प्रहार से बुरी तरह घायल हुए थे।



श्री० गुरुराज उदयपिथर

आप धारवाड़ और हुबली काँङ्ग्रेस कमिटियों के 'डिक्टेटर' थे। आपको ६ मास का कठिन कारावास-दण्ड मिला था।



श्री० नारायणराव हम्पासागर

आप धारवाड़ के सुप्रसिद्ध चित्रकार हैं। आपको ३ मास का कठिन कारावास-दण्ड दिया गया था।



श्रीमती भक्तिलक्ष्मी गोपालदास
आप कैरा ज़िले की 'वार-कौन्सिल' की सर्व-प्रथम महिला 'डिक्टेटर' हैं। आपको छः मास का कारावास-दण्ड और २००) रु० जुर्माने की सज़ा दी गई थी।



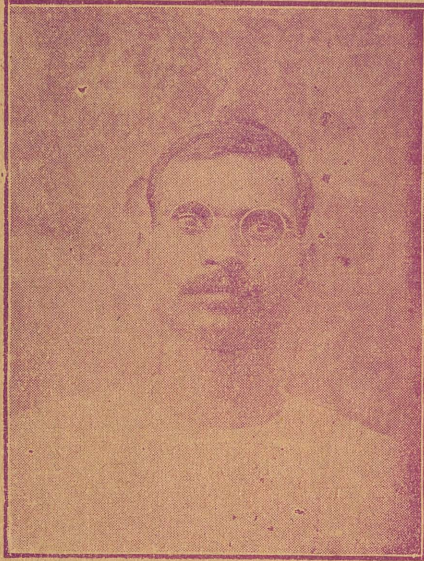
श्रीमती गङ्गाबाई चौबे
आपने लगभग १९ हज़ार जन-समूह का नेतृत्व ग्रहण करके, नागपुर ज़िले में दो बार जङ्गल-क़ानून तोड़ा है। हाल ही में आप जेल से मुक्त हुई हैं।



श्रीमती दुर्गा देवी
आप कलकत्ता की 'मारवाड़ी रिलीफ़ सोसाइटी' के वैद्य पण्डित हरिदत्त शर्मा की धर्मपत्नी हैं। राष्ट्रीय कार्यों में आप विशेष भाग लेती हैं।



श्रीमती लक्ष्मी देवी पुष्करणा
आप राष्ट्र-सेवा के उपलक्ष में जेल-यात्रा करके लौटी हैं और कलकत्ता के 'भारतीय नारी-उत्थान-मण्डल' की सभानेत्री चुनी गई हैं।



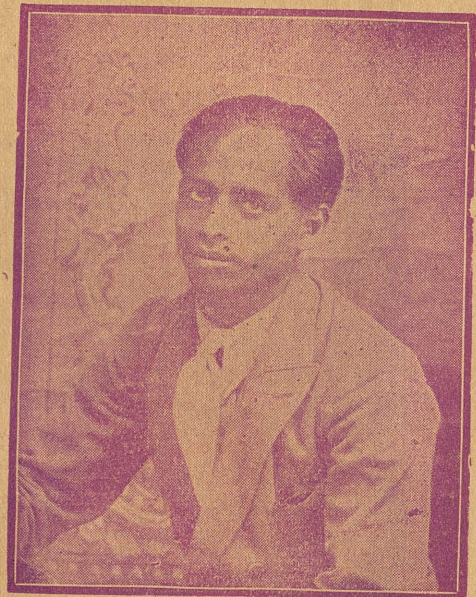
पण्डित सीताराम जी शुक्ल
आप बस्ती काँङ्ग्रेस कमिटी के सभापति हैं, जो तीसरी बार हाल ही में जेल से छूटे हैं।



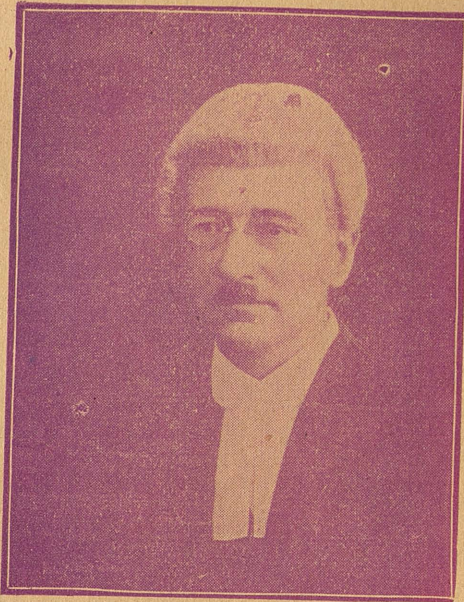
श्री० रङ्गीलदास एम० कपाडिया
आप बम्बई के सुप्रसिद्ध पत्रकार हैं, जो सत्याग्रह आन्दोलन में सात मास का कारावास-दण्ड भुगत चुके हैं।



श्री० देवेन्द्रनाथ गुप्त
आप मुज़फ़्फ़रपुर के प्रमुख काँङ्ग्रेस कार्यकर्ता हैं, जो हाल ही में जेल से मुक्त हुए हैं।

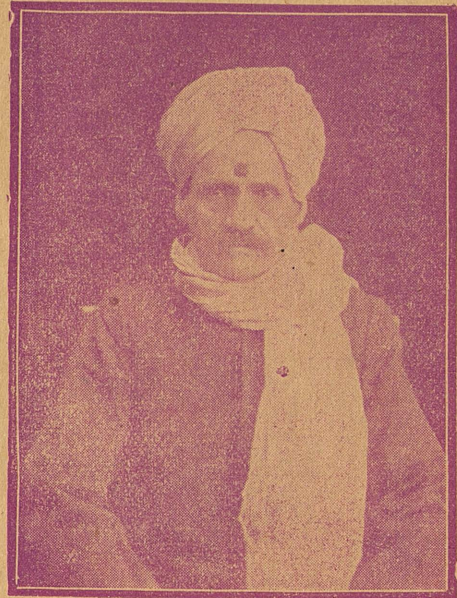


पं० हरिकृष्ण गौड़
आप देहरादून के उत्साही काँङ्ग्रेस कार्यकर्ता हैं। वर्तमान आन्दोलन में आपको तीन माह की क़ैद की सज़ा दी गई थी।



जस्टिस ई० बेनेट

आप इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज हैं, जो इस हाईकोर्ट के स्थायी जज नियुक्त हुए हैं।



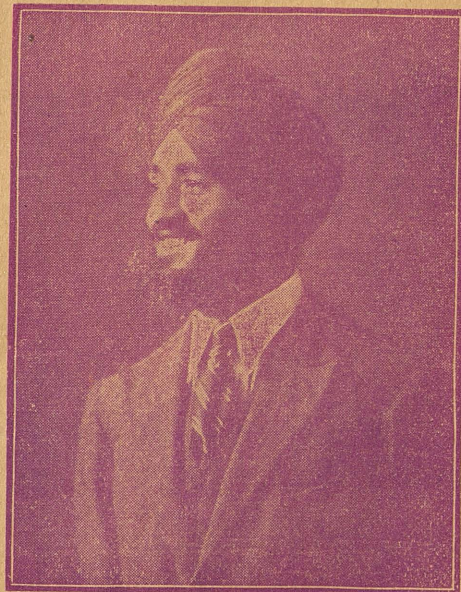
पं० काशीराम जी, एम० ए०, विद्यारत्न

आप हाल ही में लाहौर में होने वाली अखिल भारतवर्षीय सारस्वत कॉन्फ्रेन्स के सभापति चुने गए थे।



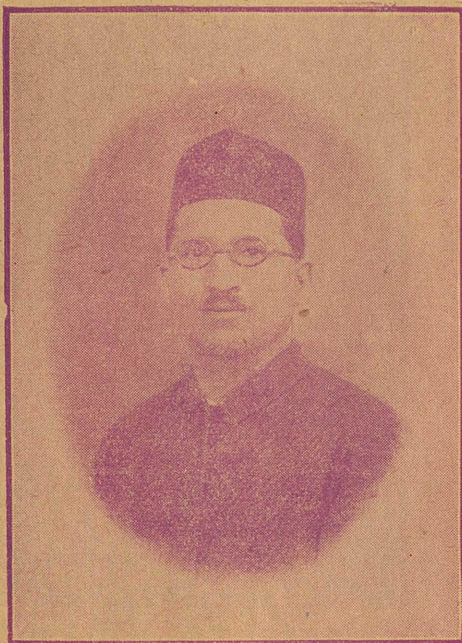
विद्वान अविनव सरस्वती कृष्णमाचार्य स्वामी

जिन्हें कामकोटि पीठ के शङ्कराचार्य ने 'उपचार पत्रिका' प्रदान की है और जो 'वङ्ग मुख रत्न कोष' की उपाधि से विभूषित किए गए हैं।



श्री० एच० एम० मलिक, आई० सी० एस०

आप स्यालकोट (पञ्जाब) के डिपुटी कमिश्नर हैं, जो हाल ही में लन्दन के सहकारी 'ट्रेड कमिश्नर' नियुक्त हुए हैं।



प्रोफ़ेसर डॉक्टर बी० एल० आत्रेय, एम० ए०, डी० लिट्०

आप काशी विश्वविद्यालय के दर्शन-शास्त्र के प्रतिभाशाली प्रोफ़ेसर हैं।



दीवान बहादुर श्री० के० एम० जावेरी

आप बम्बई के समाज-सेवी सङ्घ की ओर से नियुक्त जेल-मुक्त क़ैदियों की शिकायतों की जाँच करने वाली कमिटी के सभापति हैं।



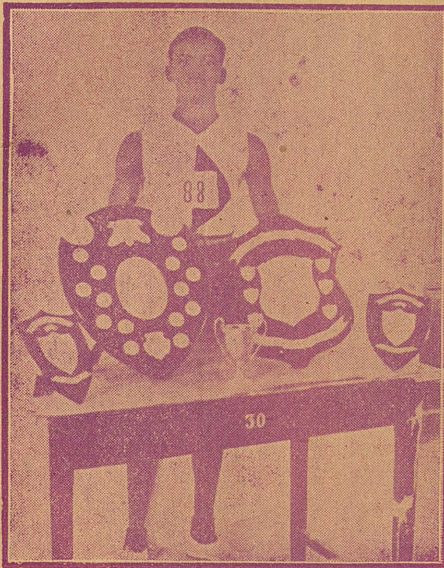
डॉक्टर जे० आर० चितामबर

आप लखनऊ क्रिश्चियन कॉलेज के प्रिन्सिपल हैं, जो कानपुर में होने वाली पादरी-परिषद के 'बिशप' नियुक्त हुए हैं।



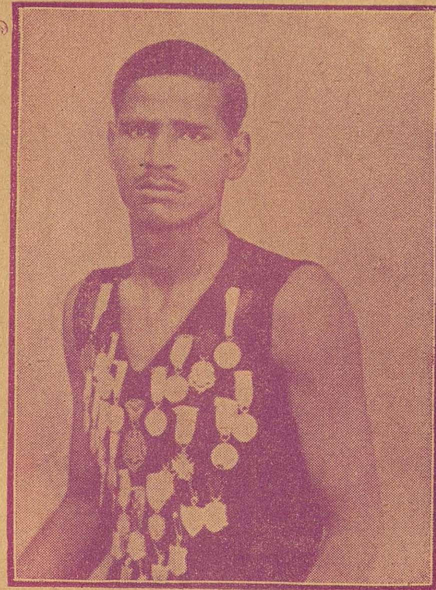
डॉक्टर रामसरन दास

आपको इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से गत उपाधि-वितरण उत्सव में डी० एस-सी० (साईन्स के प्रवीण) की उपाधि प्राप्त हुई है।



श्री० ई० टी० एस० राव

आप सेन्ट जोन्स कॉलेज, आगरा के प्रतिभाशाली छात्र हैं। आप कई बार खेल कूद के लिए पुरस्कृत हो चुके हैं।



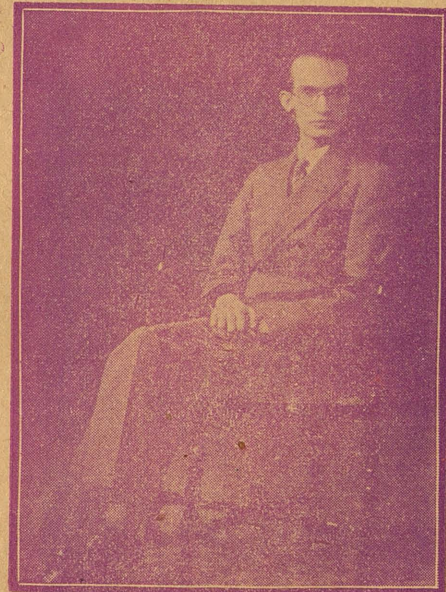
श्री० मुहम्मद हुसन

आप इन्दौर हाई-स्कूल के एक प्रतिभाशाली छात्र हैं। खेल-कूद में आपने देशवासियों को चकित कर दिया है। १०० गज़ की दौड़ में समस्त-भारत में आप अद्वितीय सिद्ध हुए हैं।



श्री० मिर्ज़ा तुफ़ैल बेग

आप निज़ाम हैदराबाद स्टेट फ़ोर्स के कमाण्डर-इन-चीफ़ के पोते हैं, जिन्हें निज़ाम सरकार ने छात्रवृत्ति देकर उच्च शिक्षा के लिए विलायत भेजा है।



श्री० मौलवी नसीरुद्दीन हाशमी

आप निज़ाम हैदराबाद द्वारा पुरातत्व की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विलायत भेजे गए थे, जो सफल होकर हाल ही में लौटे हैं।



श्री० ठाकुर गोपालशरणसिंह

आप नईगढ़ी (रीवाँ) के चीफ़ और हिन्दी के विख्यात कवि हैं। अपने ख़ान्दान में एक पुत्र के होने के उपलक्ष में आपने अपनी प्रजा को ५० हज़ार रुपए बक़ाया लगान माफ़ कर दिया है।



श्री० एस० सी० रे चौधरी

आपने भारतीय इञ्जीनियरी-विभाग में सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त की है। कलकत्ता कॉरपोरेशन ने आपको अपना इमारत-सम्बन्धी प्रधान इञ्जीनियर नियुक्त किया है।



'राम लक्ष्मण'

इन दो बालकों को बैलारी की शिशु-प्रदर्शिनी तथा वस्त्र-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार दिया गया है।



लुनावाड़ा स्टेट के अधिपति

आपको हाल ही में राज्याधिकार सौंपा गया है।



[श्री० बी० एल० शर्मा, मेडिकल ऑफ़िसर, चुनार]

सर्प-चिकित्सा के कुछ घातक दोष

साधारण जनता में अन्धविश्वास का बड़ा ज़ोर है और इसी कारण हमारे यहाँ की सर्प-चिकित्सा अत्यन्त दोषपूर्ण है। सर्प-दंशन से अनेक मनुष्यों की असामयिक मृत्यु होते देख, मैं इस विषय पर अपने विचार और अनुभव प्रकट करने के लिए बाध्य हुआ हूँ। मैं साहसपूर्वक कह सकता हूँ कि केवल अशिक्षितों ही में नहीं, वरन् शिक्षितों में भी ऐसे लोग हैं, जिनका यह विश्वास है कि झाड़-फूँक से या काटे हुए स्थान पर ज़हर-मुहरा रखने से अथवा काटे हुए स्थान को चूसने व जलाने से साँप का विष दूर हो सकता है। देश के कुछ भागों में उदाहरणार्थ हरोती (राजपूताने) में लोगों का यह विश्वास है कि यदि साँप के काटने के बाद मनुष्य शीघ्र ही 'तेजाजी' देवता के नाम पर कपड़े का एक टुकड़ा अपनी गर्दन में बाँध ले और सावन के महीने तक, जिस महीने में इस देवता का वार्षिकोत्सव मनाया जाता है, बाँधे रहे, तो वह केवल जीवित नहीं, बल्कि पहले की भाँति स्वस्थ भी रहेगा। वार्षिकोत्सव के दिन इस देवता के मन्दिर के समीप एक मेला लगता है, जहाँ इस प्रकार के मनुष्य चिकित्सा के लिए उपस्थित होते हैं।

उस दिन देवता के पुजारी उनकी गर्दन में बँधे कपड़े को छुरी से काट डालते हैं और उनमें से प्रत्येक से सात बार मन्दिर की परिक्रमा कराते हैं। बाद में थोड़ा सा दूध उसके चेहरे पर छिड़क दिया जाता है और वह स्वस्थ होकर घर चला जाता है। कहा जाता है कि यह दूध उसी दूध का बचा हुआ भाग है, जिसका उस देवता ने, जो स्वयं सर्प के रूप में है, व्यवहार किया था!

केवल अशिक्षित मनुष्य ही झाड़-फूँक का प्रयोग नहीं करते, मैंने तो अच्छे-अच्छे शिक्षित लोगों को भी इस चक्कर में देखा है। लोगों को झाड़-फूँक के चक्कर में फँसाने वाले १०० मील की दूरी से ही साँप के काटे हुए मनुष्य को आराम पहुँचाने की धृष्टता करते हैं। इस विषय की एक घटना अभी तक मेरी आँखों के सामने नाच रही है। एक बार मेरे एक शिक्षित और धनी मित्र ने मुझे एक मनुष्य को देखने के लिए बुलाया! उसे साँप ने काट खाया था। वहाँ पहुँचने पर मैंने एक वीभत्स दृश्य देखा। देखा कि एक मृत शरीर गोबर के नीचे २४ घण्टे से पड़ा हुआ है। शरीर की रक्षा के लिए वह गोबर के नीचे रख दिया गया था, किन्तु वह सड़ चला था। बात यह थी कि एक दिन पहले जब वह मनुष्य साँप के काटने से मर चुका था, मेरे मित्र ने उसके शरीर को सड़ने से बचाने के लिए गोबर के नीचे रख दिया था और १०० मील से भी अधिक की दूरी पर मुरादाबाद में रहने वाले अपने पुरोहित महाशय को झाड़-फूँक करने के लिए तार देकर बुलाया था। मेरे मित्र को आशा थी कि उनके पुरोहित अपने मन्त्र-बल से सर्प का विष निकाल देंगे और वह मनुष्य जी उठेगा। पुरोहित महाशय मृत शरीर को इसी प्रकार गोबर के नीचे रखवा कर अपने मन्त्र-बल से उसमें प्राण डाल देने

के लिए प्रसिद्ध हैं। दुख तो इस बात का है कि ये पुरोहित महाशय स्वयं एक शिक्षित व्यक्ति हैं। जब उनके मन्त्र से कुछ लाभ न हुआ तब मैं बुलाया गया। मैंने शव के दाह-संस्कार की सम्मति दे दी।

मैंने कितनी ही बार, झाड़-फूँक के निष्फल प्रमाण स्वयं अपनी आँखों से देखे हैं। डॉक्टरों की पुकार उस समय मचती है जब ख़ूब झाड़-फूँक होने के अनन्तर मनुष्य मर जाता है अथवा मनुष्य की दशा भयङ्कर रूप धारण कर लेती है। एक बार ऐसा ही एक मनुष्य मेरे पास लाया गया, जिसकी दशा बिगड़ चुकी थी। आने के ५ मिनट बाद ही जिस समय उसे इन्जेक्शन लगाने के लिए मैं पिचकारी में दवा भर रहा था, उसकी मृत्यु हो गई। गत वर्ष मैं एक ऐसी ही स्त्री को देखने के लिए बुलाया गया। उस स्त्री को साँप ने तीन बजे काटा था और मैं बुलाया गया ६ बजे रात को! इन ६ घण्टों तक झाड़-फूँक होती रही। क्या यह बात शोचनीय नहीं है? यह अवैज्ञानिक चिकित्सा क्या बर्बरता की निशानी नहीं है? और क्या क़ानून के अनुसार इस प्रकार की अवैज्ञानिक चिकित्सा के विरोध का कोई उपाय नहीं किया जा सकता? मेरे इस लेख का प्रधान उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि ये अवैज्ञानिक चिकित्साएँ बराबर असफल रही हैं और इन पर विश्वास करना रोगी के प्राण लेने से कम नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि पाठकगण मुझे उनके पुराने विश्वासों पर आक्षेप करने के लिए क्षमा करेंगे। यह युग विज्ञान का है और अवैज्ञानिक वस्तुओं के लिए यहाँ स्थान नहीं है।

यह समझने के लिए कि ज़हरमुहरा मुँह से चूसने, झाड़-फूँक करने अथवा देवता के नाम पर कपड़ा गले से बाँधने से मनुष्य के शरीर से साँप का विष खींचा जा सकता है या नहीं। हमें पहले यह समझ लेना चाहिए कि साँप का काटना है क्या चीज़। जिस प्रकार डॉक्टर पिचकारी से मनुष्य के शरीर में दवा भर देता है, ठीक उसी प्रकार साँप काटने के समय अपने तेज़ और खोखले दाँतों से मनुष्य के शरीर में विष भर देता है। साँप का विष-दन्त ज़रा टेढ़ा होने के कारण उसका विष तिरछेपन से मनुष्य के शरीर में प्रवेश करता है। यह भी जानना आवश्यक है कि जीवित शरीर के स्नायु नरम और सिकुड़ने वाले होते हैं, इस कारण साँप का विष-दन्त मनुष्य के शरीर से बाहर निकते ही ये स्वभावतः सिकुड़ जाती हैं और विष को सूक्ष्म परिमाण में शरीर के भीतर खींच लेती हैं।

साँप का विष किस प्रकार मनुष्य के शरीर में प्रवेश करता है, यह विचारणीय है। वह चार प्रकार से काटता है :—

(१) चमड़े के नीचे तक।

(२) चमड़े के नीचे की स्नायुओं तक। इसमें नं० (१) की अपेक्षा विष अधिक गहराई तक पहुँच जाता है।

(३) पट्ठों तक—इसमें नं० (१) और (२) दोनों की अपेक्षा विष अधिक भीतर तक जाता है।

(४) रगों में—यह सब से अधिक ख़तरनाक है। क्योंकि इसमें विष सीधा रक्त से मिल जाता है और इस कारण मृत्यु तुरन्त हो जाती है।

उपर्युक्त प्रकार से विष का शरीर में प्रवेश करना साँप के विष-दन्त के आकार पर निर्भर है। यदि शरीर का काटा हुआ अङ्ग कपड़े आदि से ढका न हो तो साँप का विष-दन्त जितना ही बड़ा होगा, विष भी उतनी ही गहराई तक पहुँचेगा। अब यह विचार करना चाहिए कि यह विष झाड़ने-फूँकने से, ऊपर लगाने की किसी औषधि के प्रयोग से या रक्त चूसने से दूर हो सकता है या नहीं। उपर्युक्त प्रकार से जो विष शरीर में प्रवेश करता है वह अफ़ीम अथवा कोकेन के इन्जेक्शन से आसानी से निकाला जा सकता है।

पाठकों के हृदय में यह शङ्का अवश्य उत्पन्न होती होगी कि यदि उपर्युक्त अवैज्ञानिक उपायों से कोई लाभ नहीं होता, तो इन उपायों से लोग आराम होते कैसे देखे जाते हैं? उसका उत्तर—इस प्रकार दिया जा सकता है :—

(१) साँप बिना विष का भी हो सकता है। सभी साँप विषैले नहीं होते और यदि काटने वाला साँप विषैला न भी हो तो भी रोगी बेहोश हो सकता है, और विषैले साँप के काटने के लक्षण उसमें दिखाई दे सकते हैं। कभी-कभी घबराहट के कारण भी मृत्यु हो जाती है।

(२) यदि साँप विषैला हुआ और शरीर का काटा हुआ अङ्ग मोटे कपड़े से ढका हो या वहाँ घने

बाल उगे हों या कोई अन्य वस्तु साँप के दाँत और काटे हुए अङ्ग के बीच पड़ गई हो तो साँप का विष-दन्त शरीर के भीतर अच्छी तरह प्रवेश नहीं कर सकता और इस कारण पर्याप्त मात्रा में विष भी प्रवेश नहीं कर सकता।

(३) यदि काटे हुए स्थान पर चर्बी अधिक हो तो भी विष का असर बहुत कम होता है, और इस कारण मनुष्य बच सकता है। चर्बी की अधिकता के कारण ही सुअर प्रायः साँप के काटने से बचते देखे जाते हैं।

(४) यह भी सम्भव है कि साँप ने एक मनुष्य को काटने के पहले किसी दूसरे मनुष्य या जानवर को काटने में अपना विष ख़र्च कर दिया हो, और इस कारण उसमें विष की इतनी मात्रा न रह गई हो जो उस मनुष्य को मार सके।

(५) कभी-कभी साँप बुढ़ापे के कारण या केंचुल के कारण अन्धा हो जाता है और इस कारण अपने और मनुष्य के बीच की दूरी का ठीक-ठीक ज्ञान न हो सकने के कारण अच्छी तरह नहीं काट सकता।

(६) ऐसा भी हो सकता है कि साँप के काटने के समय मनुष्य फ़ुर्ती से हट गया हो, और अपना मुँह अच्छी तरह बन्द न कर सकने के कारण साँप पूरी मात्रा में विष न छोड़ सका हो।

(७) यह भी सम्भव है कि साँप का विष-दन्त उत्पन्न न हुआ हो या वह छोटा बच्चा हो या बुढ़ापे के कारण उसमें बहुत थोड़ा विष रह गया हो और या उसका विष-दन्त छोटा हो।

(८) यह भी हो सकता है कि साँप का विष-दन्त बिगड़ गया हो, अर्थात् विष-दन्त की नोंक नीचे की ओर झुकी हुई न होकर ऊपर को उठी हुई हो, और इस कारण शरीर में विष छोड़ने के अयोग्य हो।

साँप के काटने के जितने उदाहरण पाए जाते हैं, उनमें केवल २५ फ़ीसदी ही वास्तविक होते हैं। इस विषय में एक अमेरिकन सर्प-विद्या के जानकार के अनुभवों से मेरे अनुभव मिलते-जुलते हैं। और उन साँप के रोगियों की गणना जो अवैज्ञानिक चिकित्सा से अच्छे किए हुए समझे जाते हैं, ७५ फ़ी सदी रोगियों में की जा सकती है, जो बिना किसी चिकित्सा के नीरोग हो सकते हैं।

उपर्युक्त बातें अवैज्ञानिक चिकित्सा की निस्सारता बतलाने के लिए पर्याप्त हैं। अब मैं साधारण जनता के लाभ के लिए साँप का विष दूर करने की कुछ वैज्ञानिक चिकित्साओं का वर्णन करता हूँ। डॉक्टरों की चिकित्सा-प्रणाली का वर्णन मैं यहाँ पर नहीं करूँगा।

सब से पहले मैं इस बात पर ज़ोर देता हूँ कि जहाँ डॉक्टरी सहायता मिल सकती है, वहाँ उसका उपयोग अवश्य करना चाहिए। परन्तु यदि डॉक्टरी चिकित्सा अलभ्य हो तब निम्न उपायों के अवलम्बन से साँप का विष दूर करने में बहुत सहायता मिल सकती है।

१—काटे हुए स्थान को बाँधना—सर्प-चिकित्सा का यह सब से पहला और सब से अधिक महत्वपूर्ण अङ्ग है। बाँधने के महत्व को जानने के लिए पहले यह जानना चाहिए कि मनुष्य-शरीर में दो प्रकार की रक्त-वाहिनी शिराएँ होती हैं। एक आर्टरीज़ (Arteries) हैं जो शरीर के पोषण के लिए हृदय से ताज़ा रक्त लेकर उसे प्रत्येक भाग में पहुँचाती हैं, और इसलिए इनकी गति हृदय से बाहर होती है। ये नसों की अपेक्षा अधिक गहराई में होती हैं और दूसरी नसें हैं जो शरीर के प्रत्येक भाग से दूषित रक्त को साफ़ करने के लिए हृदय में पहुँचती हैं। इसलिए इनकी गति हृदय तक है। आर्टरीज़ नामक नाड़ियों की गति ऊपर से नीचे की ओर और नसों की गति नीचे से ऊपर की ओर होती है। नए आर्टरियों से अधिक ऊपर होती हैं।

चमड़े के नीचे दिखाई पड़ने वाली नीली रेखाएँ नसें हैं। ऊपर होने के कारण इन्हीं शिराओं में साँप आसानी से काट सकता है। इन्हीं के द्वारा साँप का विष हृदय तक पहुँचता है। इसलिए बाँधने का उद्देश्य विष को हृदय तक पहुँचने से रोकना है।

मुझे विश्वास है कि अब पाठकों को इस बात का पता लग गया होगा कि बन्धन किस स्थान पर देना चाहिए। जहाँ साँप ने काटा हो उससे कुछ ऊपर के स्थान को किसी मज़बूत डोरी या और किसी चीज़ से, जो वहाँ मिल सके, दृढ़तापूर्वक बाँधना चाहिए। इसके अतिरिक्त एक और बन्धन, पहले बन्धन से कुछ ऊपर हट कर, देना चाहिए, जिसमें वहाँ की नाड़ियों के रक्त-वेग एकदम रुक

जाय। यदि बाँधने के लिए रबर की नली (Rubber tube) मिल सके तो वह सर्वोत्तम है। यदि काटे हुए अङ्ग को ऊपर बताए हुए नियमों के अनुसार मज़बूती से बाँधा जाय तो वहाँ के रक्त की गति बिलकुल रुक जायगी और बाद में रोगी किसी अनुभवी मनुष्य के पास चिकित्सा के लिए भेजा जा सकता है।

यदि कोई चिकित्सक प्राप्त न हो सके तो निम्न उपायों का प्रयोग करना चाहिए। इस बात का ध्यान रहे कि जब तक रोगी पूर्णरूप से स्वस्थ न हो जाय, बन्धन ढीला नहीं करना चाहिए।

२—काटे हुए स्थान को चीरना—बाँधने के बाद काटे हुए अङ्ग को चीर देना साधारण मनुष्यों के लिए महत्वपूर्ण उपचार है। क्योंकि यदि बन्धन ढीला रह गया तो ख़ून के साथ मिल कर विष के समस्त शरीर में फैल जाने की सम्भावना है। इसलिए साँप के काटे हुए अङ्ग को बाँधने के बाद तुरन्त चीर देना चाहिए। किसी तेज़ चाक़ू या उस्तरे से काटे हुए अङ्ग पर दो इञ्च लम्बी, आध इञ्च गहरी चार सीधी रेखाएँ खींच दे फिर ¼ इञ्च की दूरी पर चार आड़ी रेखाएँ खींच दे।

इस प्रकार वह अङ्ग चीर देने के पश्चात् चीरे हुए अङ्ग को या तो गर्म पानी से भरी हुई एक बटलोई में डुबा देना चाहिए या उसके ऊपर से गर्म पानी कुछ समय तक छोड़ना चाहिए, जिससे वहाँ का ख़ून निकल जाय। यदि 'पर्मेगनेट ऑफ़ पोटाश' प्राप्त हो सके तो उसे गर्म पानी के साथ मिला देना चाहिए, और थोड़ा चीरे हुए स्थान में भी अच्छी तरह रगड़ देना चाहिए। चीरने के लिए एक प्रकार की छुरी मिलती है, जिसमें पोटाश भरने के लिए स्थान बना होता है। इसका दाम बहुत थोड़ा है और हर एक अङ्गरेज़ी दवा की दूकान पर प्राप्त हो सकती है। प्रत्येक मनुष्य को यह औज़ार पोटाश के साथ रखना चाहिए। नीचे दिए हुए दो उदाहरणों से चीरने के महत्व का पता चल सकता है :—

(१) एक बार किसी स्त्री के अँगूठे में साँप ने काटा। उसे देखने के लिए मैं बुलाया गया। मैंने जाकर देखा कि वह स्त्री कुछ बेहोशी की दशा में है। अँगूठा कस कर बाँधा गया था, और वह दो स्थानों पर चीर भी दिया गया था। किन्तु ख़ूब गहराई तक नहीं चीरा गया था। मैंने अँगूठे को ख़ूब गहराई तक चार स्थानों में चीर दिया, और उसे पोटाश के तेज़ लोशन (Lotion) में डुबा दिया। कुछ ही मिनटों के बाद वह स्त्री होश में आ गई।

(२) एक बार मैं रेल-यात्रा कर रहा था। मेरे एक सम्बन्धी ने, जो एक स्टेशन पर काम करते थे, मुझे बीच ही में उतरने के लिए बाध्य किया। ज्योंही मैं उनके डेरे पर पहुँचा, मुझे मालूम हुआ कि एक मील की दूरी पर किसी ग्राम में एक स्त्री को साँप ने काट खाया है। मैं शीघ्र ही वहाँ गया और मैंने उस स्त्री को बेहोशी की दशा में पाया। उसकी वह उँगली जिसमें साँप ने काटा था ख़ूब कस कर बाँध दी गई थी ; और क़रीब दो घण्टे से झाड़-फूँक हो रही थी। मैंने उसी क्षण उस उँगली को चीर डाला और गर्म पानी में डुबा कर उसका विषाक्त रक्त निकाल दिया। १५ मिनट के भीतर ही वह स्त्री होश में आ गई। मैं उस स्त्री को स्टेशन पर ले आया और सारी रात उसकी देख-रेख करता रहा ; क्योंकि उसे रात भर क़ै और मिचली आती रही। उँघाई भी उसे बराबर आती रही। उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में रोगियों के शरीर पर साँप के दाँतों के निशान साफ़ दिखाई पड़ते थे। जिस स्त्री के सम्बन्ध में ऊपर कहा गया है उसे गेंहुमन साँप ने काटा था। साँप उसी समय मार डाला गया था। सफलता के लिए साँप के काटने के बाद ही उस स्थान को कस कर बाँधना और उसे ख़ूब गहराई तक चीरना आवश्यक है।

(३) रोगी को जगाए रहना और उससे बातचीत करते रहना चाहिए। किन्तु साथ ही रोगी को पूरा आराम मिलना आवश्यक है। उसकी देख-रेख बड़ी सावधानी से करनी चाहिए। यदि हो सके तो उसे गर्म पानी की भरी हुई बोतलों के द्वारा गर्म रखना चाहिए। यदि ऐसा न हो सके तो ईंटों को गर्म कर उन्हें उसके शरीर से सटा कर रखना चाहिए। ईंटों को कपड़े से लपेट देना चाहिए, जिससे रोगी के अङ्ग न जलें। गर्म काफ़ी या चाय बराबर देते जाना चाहिए, जिससे हृदय की शक्ति बनी रहे। यदि साँस लेने में कष्ट हो तो कृत्रिम उपायों द्वारा साँस लेने का प्रबन्ध करना चाहिए।

(शेष मैटर १२७ पृष्ठ में देखिए)



[सम्पादक तथा स्वरकार—श्री०
किरणकुमार मुखोपाध्याय
—नीलू बाबू]

मिश्र भैरवी ३ ताल

[शब्दकार— 'हरीदास'

स्थायी—हरी मोरी नइया लगाओ पार।
भवसागर को भवँर कठिन है,
डूबत हौं मझधार॥

अन्तरा १— छोटी नाव वज़न है भारी,
मूरख खेवनहार।
पाँच चोर हैं साथ हमारे
तिनकी करहु सम्हार॥

अन्तरा २— तात मात भ्राता बन्धु सुत
मौन रहे सब धार।
शरण गहो 'हरीदास'
तिहारी लीजो हमही उबार

१				×				३				०			
क	क			क	क				क		कक				क
नि़	स	ग	म	गम	पध	प	म	रे	ग	म	गर	स	—	—	रे
ह	री	मो	री	नइ	इइ	या	ल	गा	आ	ओ	ओओ	पा	—	—	र
						क		क		क		क	क		
सं	सं	सं	—	सं	सं	रें	सं	नि	सं	नि	सं	ध	नि	प	—
भ	व	सा	—	ग	र	को	ओ	भ	वँ	र	क	ठि	न	है	—
		क	क		क				कक	क		क	कक		क
म	प	ध	नि	प	ध	म	प	मप	धनि	धप	मप	गम	गरे	स	रे
डू	ऊ	ब	त	हो	ओ	म	झ	धाआ	आआ	आआ	आआ	आआ	आआ	आ	र

अन्तरा

क				क		क	क	क				क	क		
ध	—	म	—	ध	—	ध	नि	ध	सं	सं	—	रें	नि	सं	—
छो	—	टी	—	ना	—	व	व	ज़	न	है	—	भा	आ	री	—
क		क	क	क				क		क	क				
नि	—	नि	नि	नि	—	सं	सं	रें	सं	नि	ध	प	—	—	—
मू	—	र	ख	खे	—	व	न	हा	आ	आ	आ	आ	—	—	र
०						क		क		क		क	क		
स	—	सं	सं	—	सं	रे	सं	नि	सं	नि	सं	ध	नि	प	—
पाँ	—	च	च	—	र	है	प	सा	आ	थ	ह	मा	आ	रे	—
		क	क		क				क क	क		क	क क		क
म	प	ध	नि	प	ध	म	प	मप	धनि	पध	मप	गम	गरे	स	रे
ति	न	की	ई	क	र	हु	सं	हा आ	आ आ	आआ	आआ	आआ	आ आ	आ	र

(१२५ पृष्ठ का शेषांश)

लेख समाप्त करने के पहले साँप के काटने के साधारण लक्षणों के विषय में कुछ कहना अनुचित न होगा।

गेहुमन और करैत के काटने की पहचान

इन साँपों के काटने की पहचान यह है कि काटे हुए स्थान पर ½ इञ्च के अन्तर पर दाँत के दो चिह्न दिखाई पड़ते हैं, जिनसे पतला रक्त बहता हुआ जान पड़ता है। उस स्थान पर बहुत दर्द और जलन मालूम होती है। वह स्थान शून्य हो जाता है और यह शून्यता दूसरे अङ्गों में फैलती जाती है। एक घण्टे के अन्दर रोगी के सिर में चक्कर आने लगते हैं। उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है और वह चलने-फिरने में असमर्थ हो जाता है। उसे क़ै और मिचली आने लगती है; वह ऊँघने लगता है; उसका शिर झुक जाता है। बोलने और साँस लेने में कष्ट मालूम होने लगता है। शरीर ऐंठने लगता है और ३० घण्टे के अन्दर, साँस रुक जाने से रोगी की मृत्यु हो सकती है। परन्तु नस में काटा हो तो रोगी उसी समय मर जाता है। इन सर्पों के विष-दन्त छोटे होते हैं, जो साधारणतया मोटे कपड़े आदि को नहीं छेद सकते। इस कारण इनका वार प्रायः खुले अङ्गों (जैसे हाथ, पैर, उँगली, अँगूठे आदि) में होता है।

'वाईपर' नामक सर्प के काटने की पहचान

इस साँप के काटने पर दो दाँतों के निशान मालूम पड़ते हैं। उनसे बराबर ख़ून निकलता रहता है। काटा हुआ स्थान फूल जाता है और वहाँ पर बड़ी पीड़ा होती है; मिचली और क़ै आने लगती है, थोड़े ही समय के भीतर शरीर ठण्डा होने लगता है, और निर्बलता आ जाती है। नाड़ी की गति क्षीण हो जाती है, बेहोशी आ जाती है, और हृदय की गति रुक जाने से मृत्यु हो जाती है। यदि रोगी को होश आ गया तो सम्भव है कि उसके मुँह, नाक, आँख और पेशाब के रास्ते से ख़ून निकले। आँखों की सफ़ेदी के नीचे से ख़ून निकलने के कारण आँखें बहुत लाल हो जाती हैं। शरीर के चमड़े से भी ख़ून निकलने लगता है। इस साँप के काटने से २ से ७ दिन के अन्दर मृत्यु हो सकती है। किन्तु यदि साँप ने नस में काटा हो तो मनुष्य तुरन्त मर जाता है। मैंने एक घटना ऐसी देखी है जिसमें एक मनुष्य साँप के काटने के कुछ ही क्षणों के पश्चात् मर गया। एक दूसरी ऐसी ही घटना में एक दूसरा मनुष्य साँप के काटने के तीन दिन बाद मर गया। इस बीच में उन्हें क़ै, मिचली और उँघाई बराबर आती रही थी।

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द विरूपाक्ष]

वास्तव में सरकार ने हमारे पूज्य दादा पण्डित मदनमोहन मालवीय को, आगामी गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स में पधारने का निमन्त्रण देकर, बड़ी मुश्किल में डाल दिया है। सुनते हैं, जब से निमन्त्रण मिला है, तब से दादा जी दिन-रात धर्म-भक्ति और देश-प्रेम के 'टग ऑफ़ वार' की डोरी हो रहे हैं।

धर्म सनेह उभय मति घेरी,
भई गति साँप-छुछुन्दर केरी।

❀

मगर श्रीजगद्गुरु के एक गुस्ताख़ चेले का, जो कविता-कामिनी के उद्धारार्थ पिङ्गल घोख रहा है, कहना है कि यह उपमा बिलकुल ठीक नहीं है। उसके कथनानुसार दादा जी की दशा उस भाग्यशाली सनातन धर्मावलम्बी की सी हो रही है, जिसने धर्म की रक्षा के लिए दो बीवियों के साथ शादी की थी। इनमें एक बीबी नीचे रहती थी और दूसरी ऊपर—कोठे पर। एक दिन पतिदेव ऊपर वाली के पास जा रहे थे, इतने में नीचे वाली ने पैर पकड़ कर खींचना आरम्भ किया। इसकी ख़बर जब ऊपर वाली को मिली तो उसने भी झपट कर चोटी पकड़ ली और फिर तो जो 'रस्सा खिंचौअल' आरम्भ हुई कि ख़ुदा की पनाह!

❀

ख़ैर, यह तो अपनी-अपनी सूझ है—"जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।" परन्तु समस्या बड़ी ही विकट है, जनाब अगर दादा जी राउण्ड टेबिल कॉन्फ्रेन्स में नहीं गए तो निश्चय ही उसका 'रिकार्ड' अधूरा रहा जाएगा। क्योंकि आपके सिवा वहाँ और होगा कौन जो शैतान की आँत को मात करने वाली लम्बी स्पीचें देकर दादा मुग्धानल देव को विमुग्ध कर देगा? और अगर किसी ने लम्बी स्पीच दे भी दी तो, यह तो आपको मानना ही पड़ेगा कि बोलते-बोलते अश्रु-विसर्जन तो किसी के बाप के बूते भी नहीं पड़ेगा। फलतः अगर पण्डित जी राउण्ड टेबिल कॉन्फ्रेन्स में नहीं गए तो 'व्याख्यानिक' 'ट्रेजिडी' और 'कॉमेडी' की लज्ज़तदार खिचड़ी का मज़ा ही जाता रहेगा।

❀

और अगर देश-प्रेम के फन्दे में फँस कर दो-चार पीपे गङ्गाजल लेकर चले गए तो यह निश्चय है कि हिज़ मैजेस्टी दी यमराज की सरकार बिगड़ जायगी और अन्तिम समय में वैतरणी पार के लिए 'पासपोर्ट' ही न देगी। उधर सनातन-धर्म के उत्तराधिकारियों का दल अलग बिगड़ेगा। आश्चर्य नहीं कि महामहोपाध्याय पण्डित लक्ष्मण शास्त्री आदि पण्डित जी के विरुद्ध 'वोट ऑफ़ सेन्सर' पास कर दें या धर्म की तौहीन से नाराज़ होकर पण्डित जी को बैकुण्ठ से वञ्चित करने के लिए सनातनियों का एक डेपुटेशन लेकर धर्मराज की सेवा में उपस्थित हो जायँ।

❀

क्योंकि यह विलायत-यात्रा पण्डित जी का दूसरा अपराध होगा। याद रहे इससे पहले अछूतों को 'ओ३म् नारायण' मन्त्र का उपदेश देकर आपने सनातन-धर्म को विशेष क्षतिग्रस्त किया है। यह तो कहिए कि बेचारे के भाग्य से पण्डित अखिलानन्द और सनातन-धर्म के 'सोल प्रोप्राइटर' पण्डित कालूराम शास्त्री मौजूद थे और दोनों सज्जनों ने पण्डित जी को उसी समय भर पेट कोस दिया, नहीं तो बेचारे सनातन-धर्म के लिए वही बात होती कि—

'ढूँढ़ती फिरती क़ज़ा थी मैं न था!'

❀

हिज़ होलीनेस को विश्वस्त सूत्र से पता लगा है कि पण्डित जी के कोई मालदार मित्र उन्हें बुढ़ौती में विलायत भेज कर 'पतित' (!!!) कर देने के लिए जी-जान से तुले हुए हैं और धर्मपूर्वक विलायत जाने के लिए एक 'अनटच्ड बाई असनातनी' जहाज़ की भी व्यवस्था कर देने वाले हैं और कहते हैं, कि लौटने पर स्वर्गीय लोकमान्य की तरह प्रायश्चित्त कर लीजिएगा। इसलिए पण्डित अखिलानन्द जी से हमारा नम्र निवेदन है कि झटपट एक 'लीडर........गर्जनम्' महाकाव्य लिख डालें। क्योंकि पण्डित जी के विलायत-यात्रा से लौटने पर धर्म को रसातल-यात्रा से बचाने के लिए उसकी नितान्त अवश्यकता पड़ेगी।

❀

"एक वीर उठा रिसिआय, चारि जुगव चौवा भर जाय, अस्सी कोस जमुना का तीर, कितने दिन में पहुँचा वीर?" इस पहेली का उत्तर ढूँढ़ने से पहिले आपको मालूम होना चाहिए कि काशी की 'महिला-समिति' उर्फ़ 'लेडीज़ क्लब' भी इसी 'ऐरोप्लेनी' प्रगति के साथ अपने ध्येय की ओर अग्रसर हो रही या हो रहा है। क्योंकि "क्लब की स्थापना १९२९ में हुई थी,....... क्रम से सदस्यों की संख्या बढ़ती गई और इस समय (१९३१ में) २८ है!" अब बताइए कि पहले वह रिसियाया हुआ वीर 'जमुना-तीर' पहुँचेगा या काशी का लेडीज़ क्लब अपने ध्येय पर। इस सम्बन्ध में जिसका उत्तर ठीक आएगा, उसे श्रीजगद्गुरु की ओर से 'उड़न-खटोले' की उपाधि दी जाएगी!

❀

परन्तु कवियों ने स्त्रियों को 'गजेन्द्र गामिनियों' की उपाधि दी है। जैसे, "गावत चलीं सिन्धुरा-गामिनि।" हाथी की तरह धीर-स्थिर भाव से पाद-विक्षेप करना ही उनकी शोभा है और ऐसी मन्दगामिनियों को शास्त्रकारों ने सुलक्षणा भी बताया है। क्षिप्रता, चञ्चलता, उतावलापन और तेज़ी उनके लिए अवगुण हैं। लेहाज़ा यह प्रसन्नता की बात है कि काशी की उपर्युक्त महिला-क्लब ने बड़ी सावधानी और सतर्कता से अपने को उन शास्त्र-कथित अथवा "वैदिक" दुर्गुणों से बचा रक्खा है। इसके सिवा जो धीरे-धीरे चलता है, वह अवश्य ही एक रोज़ मञ्ज़िले मक़सूद तक पहुँच जाता है और जो उतावलेपन से काम लेता है, वह ठोकर खाकर गिर पड़ता है।

❀

ख़ैर, रुपए ख़र्च करने में इस समिति की सदस्याओं ने अपने 'गृहिणीपन' का ख़ासा परिचय दिया है; बल्कि यों कहिए कि महात्मा गाँधी द्वारा प्रशंसित डॉ० अन्सारी की गृहिणी को भी मात कर दिया है। ख़ुलासा यह कि इन दो वर्षों में समिति की आय ५४३।) रही, जिसमें ३६॥।-) ख़र्च हुए और ५०६।≡) मौजूद हैं! और एक हैं, अपने रामजी की श्रीसीता जी, जो हाथ डालते ही 'कोठिले का धान भूसी' कर देती हैं। बूटी के पैसे माँगे तो तुरन्त टाट उलट कर रख देती हैं और सूद में दो-चार फ़बतियाँ कस देती हैं, सो अलग!

❀

सोचा था कि 'सारदा एक्ट' के कारण ब्रिटिश भारत में, दादा सनातन-धर्म की बूढ़ी कमर को जो भयङ्कर ठेस लगी थी, उसकी मरहम-पट्टी देशी रियासतों में हो जाएगी, परन्तु कहते हृदय विदीर्ण होता है कि ग्वालियर दरबार ने भी एक ऐसा ही धर्मध्वंसी क़ानून पास कर डाला है। ख़ैरियत इतनी है कि उसने बच्चे बच्चियों के पिता-माता बनने की अवस्था बजाय १८ और १४ वर्ष के, १६ और १२ वर्ष निर्दिष्ट की है। आशा है, इससे 'साँप भी मर जाएगा और लाठी भी न टूटेगी। अर्थात् धर्म की भी जान बच जाएगी और सनातन-धर्मियों को शीघ्रातिशीघ्र पौत्र-सुख-दर्शन भी हो जाएगा।

❀

पाँच तथा सात वर्ष के कतिपय बच्चे और बच्चियों को पवित्र वैवाहिक बन्धन में आबद्ध करने के लिए मैसोर की अदालत ने कई धर्म-धुरन्धरों को जुर्माने की सज़ा दी। परन्तु इनमें एक वर का पिता होशियार आदमी था। इसने जुर्माना देने से पहले ही अदालत को अँगूठा दिखा कर सुरधाम की यात्रा कर दी। हमारे ख़्याल में ऐसे धर्मघाती क़ानूनों के प्रतिकार का यह सर्वोत्तम उपाय है। आशा है, अन्यान्य सनातनी भी उपर्युक्त वर के पिता जी का अनुकरण करेंगे। माशा अल्लाह ऐसा लाजवाब नुसख़ा है कि दस-पाँच जगह इसका प्रयोग होते ही सरकार को झख मार कर इस क़ानून को रद्द कर देना पड़ेगा।

लतखोरीलाल (प्रोटेक्टिङ्ग कवर का नमूना) Regd. No. A—1154



प्रकृति की अनोखी छटा; हास्यरस का अपूर्व आनन्द तथा विद्यार्थी-जीवन की अद्भुत लीलाएँ देखना हो तो इस कौतूहलपूर्ण पुस्तक को एक बार अवश्य पढ़िए ! सचित्र तथा सजिल्द, मू० ४) स्था० ग्रा० से ३)

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

Printed and Published by Tribeni Prasad B. A.—Editor—at The Fine Art Printing Cottage
28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahabad

CSDS gratefully acknowledges the enterprise of the following savants/ institutions in making the digitzation possible:

Historian, Writer and Editor Priyamvad of Kanpur for the Hindi periodicals (Bhavishya, Chand, Madhuri)

Mr. Fuwad Khwaja for the Urdu weekly newspaper Sadaqat, edited by his grandfather and father.

Historian Shahid Amin for faciliating the donation.

British Library's Endangered Archives Programme (EAP-1435) for funding the project that involved rescue, scan, sharing and metadata creation.

ICAS-MP and India Habitat Centre for facilitating exhibitions.

Digital Upload by eGangotri Digital Preservation Trust.



